नवम्बर '96–फरवरी '97 • पन्द्रह रुपये

दायित्वबोध

उन बुद्धिजीवियों की पत्रिका जिन्होंने जनता का पक्ष चुना है

अक्टूबर क्रान्ति की वर्षगाठ, एंगेल्स, स्तालिन और माओ की जन्मतिथि और सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के तृतीय दशाब्दी वर्ष के अवसर पर

समाजवाद के सिद्धान्त और प्रयोग, समस्याओं और चुनौतियों पर *विशेष सामग्री*

• सांस्कृतिक क्रान्ति के कुछ ऐतिहासिक दस्तावेज़ और लेख • माओ के अवदान • स्तालिन का मूल्यांकन • रूसी क्रान्ति पर रोज़ा लक्ज़मबर्ग • यथार्थवाद के बारे में एंगेल्स के विचार • क्रान्ति का विज्ञान • माओ और पाब्लो नेरुदा की कविताएं • चीन में मज़दूर किसान संघर्ष : कल और आज • पुस्तक चर्चा : 'सिस्टर्स - कॉमरेड्स' • आर्थिक प्रगति और मानव विकास

माओ त्से-तुङ के जन्मदिवस (26 दिसम्बर) के अवसर पर

परिस्थितियां हमेशा बदलती रहती है, तथा अपने विचारों को नई परिस्थितयों के अनुरूप ढालने के लिए अध्ययन करना आवश्यक है। जो लोग मार्क्सवाद को अपेक्षाकृत अच्छी तरह आत्मसात कर चुके है तथा जिनका सर्वहारा रुख अपेक्षाकृत अधिक मजबूत है, उन्हें भी अपना अध्ययन लगातार जारी रखना होगा, नई-नई बातों को आत्मसात करना होगा तथा नई-नई समस्याओं का अध्ययन करना होगा। - *माओ त्से-तुङ*

'चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रचार-कार्य सम्बन्धी राष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण'

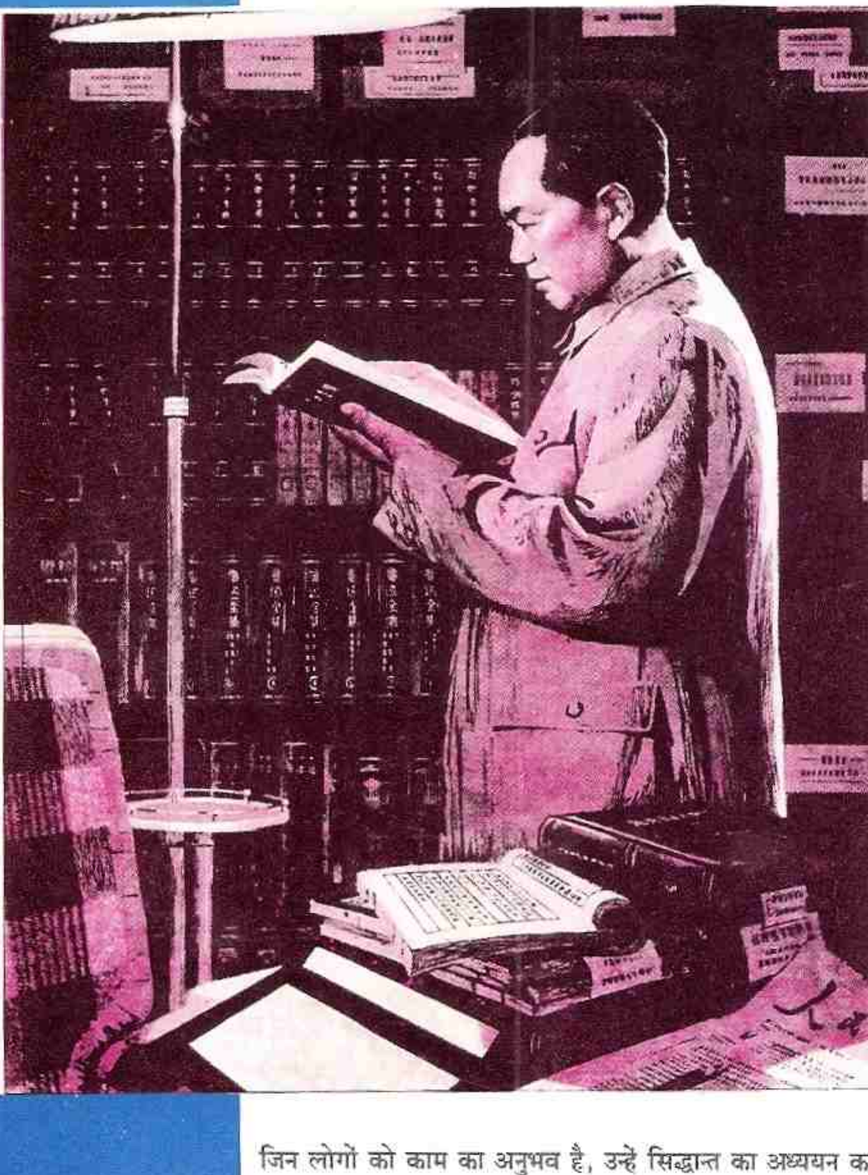

भले ही हमारे पास सही सिद्धान्त मौजूद हो, लेकिन अगर हम उसका महज जाप करते रहेंगे, उसे उठाकर ताक पर रख देंगे और उसे अमल में नहीं लाएंगे, तो उस सिद्धान्त का, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों हो, कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। - *माओ*

- 'व्यवहार के बारे में'

जिन लोगों को काम का अनुभव है, उन्हें सिद्धान्त का अध्ययन करना चाहिए और गम्भीरता से पढ़ना चाहिए ; सिर्फ तभी वे लोग अपने अनुभव को व्यवस्थित और समन्वित कर सकेंगे तथा उसे सिद्धान्त के स्तर तक ऊंचा उठा पाएंगे, सिर्फ तभी वे लोग अपने आंशिक अनुभव को सर्वव्यापी सच्चाई समझने के भ्रम में नहीं पड़ेंगे तथा अनुभववादी गलती से बच सकेंगे। - *माओ*

- 'पार्टी की कार्यशैली में सुधार करो'

दायित्वबोध

विशेष संयुक्तांक

वर्ष–4 अंक–1-2 नवम्बर '96 – फरवरी '97

प्रधान सम्पादक
विश्वनाथ मिश्र
सहायक सम्पादक
अरविन्द सिंह
संयुक्त सम्पादक
ओमप्रकाश सिन्हा
सत्यम वर्मा
व्यवस्था प्रभारी
मीनाक्षी
प्रसार प्रभारी
आदेश कुमार
आवरण
रामबाबू

आवरण का चित्र
रूसी पेंटिंग *'शिशिर प्रासाद पर धावा'*

सम्पादकीय कार्यालय :
3/274, विश्वास खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226 010

सम्पादन एवं संचालन
पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

स्वत्वाधिकारी विश्वनाथ मिश्र द्वारा एम. डब्ल्यू 6/221, बेनीगंज, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित

कम्पोजिंग
कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ–10

इस अंक का मूल्य : 20 रुपये
(आवरण पहले प्रकाशित हो जाने के कारण उस पर मूल्य 15 रुपये ही अंकित है, पृष्ठ बढ़ जाने के चलते हमें अंक का मूल्य बढ़ाना पड़ा)
वार्षिक : 90 रुपये   आजीवन : 1000 रुपये

•

समस्त पत्रव्यवहार केवल सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही करें।

इस अंक में

अक्टूबर क्रान्ति की वर्षगांठ, फ्रेडरिक एंगेल्स, स्तालिन और माओ त्से–तुङ की जन्मतिथि और सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के तीसरे दशाब्दी वर्ष के अवसर पर

समाजवाद के सिद्धान्त और प्रयोग, समस्याओं और चुनौतियों पर

विशेष सामग्री

अपनी बात
जिन्होंने फिर भी एक बेहतर दुनिया की उम्मीद नहीं छोड़ी है.......5

•

आर्थिक प्रगति और मानव विकास – *विश्वनाथ मिश्र*.......9
विश्व खाद्य सम्मेलन–भूख और मुनाफे की नूरांकुश्ती – *प्यारे लाल, बी.के.सिंह, डी.के सचान*.......10

•

विशेष लेख
माओ के अमर अवदान और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की युगांतरकारी शिक्षाएं.......12
• स्तालिन – एक मूल्यांकन.......31
• स्तालिन के समय में सोवियत समाजवाद.......34
• रूसी क्रांति का मूलभूत अभिप्राय – *रोजा लक्जेमबर्ग*.......40

•

चुने हुए लेख और दस्तावेज – एक
सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति क्या, क्यों और किस प्रकार.......21
• सोलह सूत्री सर्कुलर.......23
• सांस्कृतिक क्रांति के सैद्धान्तिक आधार के बारे में – *जार्ज थामसन*.......28

•

साहित्य चिन्तन
विचारधारात्मक अन्तर्वस्तु और यथार्थवाद – *फ्रे. एंगेल्स के दो पत्र*.......44
कलात्मक कृति में यथार्थ चित्रण की समस्या और मार्क्स–एंगेल्स के विचार – *बी. क्रिलोव*.......46

•

क्रांति का विज्ञान– अध्याय तीन
सर्वहारा अधिनायकत्व : मार्क्सवाद की कसौटी – *लेनी वुल्फ*.......59

•

पाब्लो नेरुदा की कविता – जीतों के दिन की शान में गीत.......41
माओ त्से–तुङ की दस कविताएं.......48

•

पुस्तक चर्चा
'बहनो, कामरेडो!' पुस्तक की विचारोत्तेजक सारवस्तु का एक परिचय.......63

•

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त
अध्याय दस/ साम्राज्यवाद सर्वहारा समाजवादी क्रांति की पूर्ववेला है.......69

आपकी बात

'दायित्वबोध' जैसी सचेतन और जीवित अभिव्यक्ति देने वाली पत्रिका के लिये धन्यवाद स्वीकारें। इसे निश्चित रूप से दायित्वपूर्वक पढ़ूंगा। फिलहाल 'मृत्यु के संस्मरण' से बहुत प्रभावित हुआ। 'पूंजीवाद के घृणित क्षुद्र रहस्य' में बहुत कुछ छिपा हुआ है। सरसरी तौर पर अनुवादों की अधिकता दीखती है। समयानुकूल होते हुए भी अनुवाद, अनुवाद ही होते हैं, इससे जो प्रभाव पड़ता है, वह कहीं न कहीं परदे में रोती-बिलखती औरत की चीख की तरह ही होता है। फिलहाल आपके कुशल और दायित्वपूर्ण संपादन से मेरी कोई शिकायत नहीं, वरन ईर्ष्यालु होता जा रहा हूं। जाने कहां-कहां से इतनी सामग्री इकट्ठा कर लेते हैं आप लोग।

- रामनाथ शिवेन्द्र, सं० 'असुविधा', ग्रा० खड्ई, पो०-पन्नूगंज, सोनभद्र

आज की बदली हुई राजनीतिक व सांस्कृतिक स्थिति में आपकी प्रतिबद्धता एक मिसाल है।

- डा. रवि रंजन, टीचर्स फ्लैट्स, सेंट्रल युनिवर्सिटी कैम्पस, हैदराबाद

'दायित्वबोध' का मार्च-अगस्त' 96 अंक मिला। हालांकि मैंने दिल्ली में श्रीराम सेन्टर से भी खरीद लिया था।

पत्रिका सार्थक एवं सामग्री विचारोत्तेजक है। अपने समय की जरूरी पत्रिका है जो सोचने-समझने और करने के लिए प्रेरित करती है। कात्यायनी के दोनों आलेख, डेविड मैक्नेली का लेख पहली ही फुरसत में पढ़ डाले।

'दायित्वबोध' के पिछले अंक उपलब्ध करवाएं।

- हम्माद फारूकी, दून स्कूल, देहरादून

'दायित्वबोध' (मार्च-अगस्त '96) अंक अच्छा है। सम्पादकीय 'आने वाले समय की चुनौतियों की पहचान के लिए वर्तमान राजनीतिक संकट की पड़ताल जरूरी है' विचारोत्तेजक है। हावर्ड फास्ट के उपन्यास 'द अमेरिकन' के अंशों की तरह ऐसी ही दूसरी साहित्यिक सामग्री भी प्रकाशित करें। कविताएं भी प्रकाशित होती रहें, तो अच्छा।

'दायित्वबोध' जैसी 'सर्वहारा' पत्रिकाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार तभी होगा, जब देश में सर्वहारा के संघर्ष आगे बढ़ेंगे। आज जरूरत है कि जनता को उनके बुनियादी संघर्षों के लिये आंदोलित किया जाए। उसके बाद ही अधिकाधिक लोगों में विचार को जानने की उत्सुकता होगी, अर्थात सिद्धान्त और व्यवहार में संतुलन होना सर्वहारा क्रांति के लिए आवश्यक है।

- सुधाकर, द्वारा पी०एस०रौतेला, जवाहरलाल नेहरू अस्पताल, उधमसिंहनगर

लम्बे अरसे बाद कहीं से 'दायित्वबोध' की प्रति देखने को मिली। जिज्ञासा हुई नियमित रूप से पढ़ने की ।

'दायित्वबोध' के नियमित प्रकाशन पर आपको तथा इससे जुड़े सभी साथियों को बहुत-बहुत धन्यवाद ।

- के.एम. राय, 189, फेज-II, वसंत विहार, देहरादून

'दायित्वबोध' की प्रतियां नियमित भेजते रहिए। नेपाल के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की गतिविधि, पेरू की कम्युनिस्ट पार्टी (शाइनिंग पाथ) और टुपाक अमारू संगठन की गतिविधियों के बारे में प्रकाशित करें तो बेहतर होगा।

- जलजला पुस्तक सदन, धमबोजी, चौक, नेपालगंज, बांके, नेपाल

'दायित्वबोध' को नियमित करना बहुत जरूरी है। यहां पाठकगण मुझसे मांग करते रहते है। जिन पाठकों ने एक बार दायित्वबोध पढ़ा है, वे सभी हमेशा मुझे टोकते हैं कि पत्रिका का नया अंक क्यों समय से नहीं आया।

- राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, सोनभद्र

'दायित्वबोध' का मार्च-अगस्त अंक मिला। पुस्तकालय के अधिकतर सदस्यों ने इसे सराहा है। इसे नियमित कीजिए।

- रामेन्द्र सिंह, सर्वहितैषी पुस्तकालय, ग्रा. पो. तेलभर, नालन्दा

'दायित्वबोध' मेरे प्रकाशक ने मुझे दिया। देखकर अनायास ही मेरा विगत वर्तमान बनने लगा। मित्रों के गेट और शिक्षा संस्थानों के प्रांगण स्मरण हो आये।

- सुदर्शन पानीपती, बी-39, गणेशनगर बी, न्यू सांगानेर रोड, सोडाला, जयपुर

जिन्होंने फिर भी एक बेहतर दुनिया की उम्मीद नहीं छोड़ी है!

नादरगंज, लखनऊ के 17 रोलिंग मिलों के मालिकों की ओर से डेढ़ हजार से अधिक मजदूरों का दीपावली का उपहार बोनस के बजाय तालाबंदी के रूप में मिला।

ये मजदूर बिना किसी सुरक्षा–प्रबंध के तपती भटठी जैसे तापक्रम में शरीर पर बोरे लपेटकर लोहा गलाते हैं और सरिया, गर्डर आदि ढालते हैं। इनमें से 75 प्रतिशत से भी अधिक दिहाड़ी पर खटते हैं। जितने घण्टे काम, उतने की मजदूरी। छुट्टी, बीमा, दवा-इलाज — कोई भी सुविधा नहीं। दीपावली के दिन कारखाना गेटों पर धरने पर बैठे ये मजदूर बुझी–बुझी निगाहों से मिलमालिकों के बाल-बच्चों को पटाखे छुड़ाते देख रहे थे। बाद में पुलिस ने इन्हें इसलिए गिरफ्तार कर लिया ताकि कारखानों में जाम पड़ा उत्पादित माल मालिक बाजारों में पहुंचा सकें। इसके बाद हाईकोर्ट ने भी इस आशय का निर्देश देकर मालिकों का काम आसान कर दिया।

यह अकेले लखनऊ के रोलिंग मिलों की ही कहानी नहीं है। कलकत्ता के **विक्टोरिया, कानोड़िया और टीटागढ़** जूट मिलों के मजदूरों के लम्बे संघर्ष ने जूट उद्योग की स्थिति और लाखों मजदूरों की रोजी–रोटी के संकट को दो वर्ष पहले ही पूरे देश के सामने ला दिया था। **कानपुर** और **आगरा** के 80 प्रतिशत परम्परागत उद्योग बंद हो चुके हैं। **अहमदाबाद** और **बंबई** के पुराने उद्योगों में लगी पूंजी निकालकर उद्योगपति उन्नत तकनोलॉजी और कम मजदूरों से काम लेने वाले उद्योगों में निवेश कर रहे हैं। सरकारी उपक्रमों को एक के बाद एक करके निजी क्षेत्र को सौंपा जा रहा है और तरह–तरह की तिकड़मों से मजदूरों की छंटनी का जा रही है। रिटायर होने वाले मजदूरों की जगह नई भरती नहीं की जा रही है।

राजधानी को पर्यावरण–प्रदूषण से बचाने के नाम पर **दिल्ली** के 168 उद्योगों की 1200 इकाइयों ने सुप्रीम कोर्ट के आदेश का पालन करते हुए 30 नवंबर को उत्पादन बंद कर दिया। 50 हजार मजदूर बेकार हो गये। अब स्थिति यह है कि 90 प्रतिशत उद्योग मालिक अपने कारखाने दिल्ली क्षेत्र के बाहर ले जाकर लगाने के बजाय राजधानी की बेशकीमती जमीन का व्यावसायिक इस्तेमाल करके भारी मुनाफा कमाने की योजना बना रहे हैं। ऐसा तो वे पहले ही करना चाहते थे, पर श्रमिकों के संगठित दबाव और आंदोलन के खतरों के कारण यह संभव नहीं था। अब न्यायपालिका ने राजधानी की हवा–पानी को साफ करने के नाम पर उनका यह काम आसान कर दिया। बेशक पर्यावरण–प्रदूषण समाप्त किया जाना चाहिए, पर कारखाने बंद कराने वाली व्यवस्था को 50 हजार मजदूरों के रोजगार के बारे में भी तो सोचना चाहिए था। पर यह तो पूरी दुनिया की आज की रीति हो चली है। पर्यावरण तो तबाह होता है मुनाफे की ऊंची हवस से और इसकी कीमत चुकाते हैं आम लोग। उल्टे साम्राज्यवादी देशों की मदद से काम करने वाली स्वयंसेवी संस्थाएं गरीबों को ही पर्यावारण ठीक रखने का पाठ पढ़ाती हैं।

निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों की मार से हैण्डलूम, पावरलूम आदि परम्परागत छोटे–छोटे उद्यमों से जुड़ी करोड़ों की आबादी या तो उजड़ती जा रही है या विदेशों के बाजार तक पहुंच रखने वाले बिचौलियों–दलालों की आक्टोपसी जकड़ में फंसकर निकृष्टतम कोटि के उजरती गुलाम में तब्दील होती जा रही है। गांवों में पहले से ही प्रविष्ट हो चुकी पूंजी के प्रसार और पैठ की अभूतपूर्व तेजी ने पुराने रहे–सहे प्राक्‌पूंजीवादी अवशेषों को भी समाप्त करने या उनकी अंतर्वस्तु को बदल देने की रफ्तार को विगत करीब पंद्रह वर्षों, और खासकर पिछले पांच वर्षों के दौरान बहुत अधिक तेज कर दिया है। आबादी का ध्रुवीकरण तेज हो गया है। एक ओर पूंजीवादी सत्ता के नये भागीदार फार्मर और कुलक मजबूत हुए हैं और दूसरी ओर, अपनी जगह–जमीन से उजड़े हुए करोड़ों लोग सर्वहारा की कतारों में जा शामिल हुए हैं।

और यह सब कुछ केवल भारत की ही कहानी नहीं है। **यह एक भूमण्डलीय दुश्चक्र है। यही आज की नई विश्व–व्यवस्था है।**

मेक्सिको, ब्राजील, चिली, अर्जेण्टीना, इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलीप्पीन्स आदि एशिया–अफ्रीका–लातिन अमेरिका के पिछड़े गरीब देश ही नहीं, इस दुश्चक्र की मार तो अपेक्षतया समृद्ध **कोरिया**, **ताइवान** जैसे तीसरी दुनिया के देशों और चीन जैसे नकली समाजवादी देशों से लेकर **रूस** तथा **पूर्वी यूरोप** के देशों की मेहनतकश आबादी भी झेल रही है। अब इसकी आंच समृद्ध पश्चिम के शीर्ष केन्द्रों तक भी महसूस की जा रही है। मंदी के साथ–साथ बेरोजगारी वहां भी असाध्य है। पर

जाहिरा तौर पर संकट का अधिक दाब कमजोर कड़ियों पर है, निर्धन विपन्न तीसरी दुनिया पर है। अपने संकट का पूरा बोझ भी साम्राज्यवादी चौधरी इन्हीं देशों की जनता पर डाल रहे है और इस प्रक्रिया में इन गरीब देशों के पूंजीपति शासक भी भागीदार हैं। मात्र विश्व-स्तर पर निचोड़े जा रहे अधिशेष में अपने हिस्से का प्रतिशत बढ़ाने के लिए वे कभी–कभी धनी देशों के अन्याय के खिलाफ गरमागरम बातें बोलते हैं और स्वदेशी की गुहार लगाते हैं। वरना उनकी आम नीति है, जूनियर पार्टनर के तौर पर साम्राज्यवादी ताकतों के साथ सहकार।

अब दिक्कत की बात यह है कि पूंजी की प्रचुरता के अपने संकट को हल करने के लिए साम्राज्यवादी जो निवेश कर रहे हैं और मुनाफे की ऊंची से ऊंची दर हासिल करने के लिए जो गलाकाटू होड़ कर रहे हैं उससे उनका वही संकट फिर और अधिक बढ़कर सामने आ रहा है –– यानी पूंजी की प्रचुरता का संकट ! ज्यादा से ज्यादा मुनाफे के लिए वे उन्नत से उन्नत तकनोलाजी का इस्तेमाल करके काम करने वालों को बेकार बना रहे हैं, उनका श्रम सस्ता से सस्ता खरीद रहे हैं और सबसे अहम बात यह कि अनुत्पादक वित्तीय क्षेत्र, खासकर सट्टेबाजी में ज्यादा से ज्यादा रकम लगा रहे हैं। नतीजतन, अनिश्चितता बढ़ती जाती है और 1987 के काले सोमवार जैसे संकट के कभी भी घहरा पड़ने की संभावनाए बनी रहती हैं। आज पूरी दुनिया में जगह–जगह क्षेत्रीय युद्धों और गृहयुद्धों की जो आग लगी हुई है, वह भी दरअसल पूंजी निवेश का एक नया सिलसिला शुरू करने का ही जरिया है। गरीबों के कल्याण के नाम पर स्वयंसेवी संस्थाओं का जो पूरा मकड़जाल दुनिया भर में फैला हुआ है, उनके पीछे अन्य गहरे साजिशाना सियासी मकसद तो हैं ही, उनका एक मुख्य काम साम्राज्यवादी पूंजी निवेश की जमीन तैयार करना भी है।

दुनिया की अस्सी फीसदी आबादी बुनियादी मानवीय जरूरतों तक से वंचित जीवन बिता रही है। विज्ञान तकनोलॉजी की अधुनातन उपलब्धियों का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं है। यदि है तो सिर्फ इस रूप में कि उनका श्रम या तो और अधिक सस्ती दरों पर निचोड़ा जाने लगता है या फालतू घोषित कर दिया जाता है। दुनिया में भौतिक प्रगति की तमाम संभावनाएं अछूती पडी हैं, बहुसंख्यक आबादी को इनकी जरूरत भी है। मुनाफे की ऊंची से ऊंची दर को बनाये रखने के लिए दशकों पहले अस्तित्व में आ चुकी तकनोलॉजी को भी इस्तेमाल में नहीं आने दिया जाता। और फिर लोगों, उनकी श्रमशक्ति को–– दुनिया की तमाम भौतिक सम्पदा की निर्मात्री शक्ति को ही, बेकार, फालतू घोषित कर दिया जाता है। यह सब कुछ इसलिए कि उत्पादन मुनाफे के लिए होता है न कि सबके उपभोग की जरूरतों को ध्यान में रखकर।

गत छः वर्षों के भीतर करोड़ों भारतीयों की रोजी उन्नत तकनोलॉजी और सस्ता श्रम प्रतियोगिता की भेंट चढ़ चुकी है। इस सदी के अंत तक तस्वीर अत्यंत भयावह होगी। **नई विश्व–व्यवस्था ने, बाजार व्यवस्था की लहर के इस चरम उफान ने लोगों को ही फालतू, अनावश्यक, रद्दी, कूड़ा बना दिया है।**

जो व्यवस्था स्वयं फालतू, अनावश्यक और रद्दी है और जिसे उठाकर इतिहास की कूड़ेदानी पर फेंक देना लोगों का काम है, वह लोगों को ही फालतू, अनावश्यक, रद्दी और कूड़ा बता रही है। शायद इसलिए कि लोगों को उसकी असलियत न पता चले। इसलिए उसके सभी प्रचारक चीख रहे हैं, सभी कलमनवीस कलमें घिस रहे हैं, सभी आंकड़ेबाज ग्राफ, चार्ट और टेबुल बना रहे हैं, सभी सिद्धांतकार सिद्धांतों–थीसिसों–परिकल्पनाओं की कै और कुल्ली कर रहे है। सभी बताने की कोशिश कर रहे हैं कि पूंजीवाद का कोई विकल्प नहीं, विदेशी पूंजी का कोई विकल्प नहीं, बेरोजगारी असाध्य है, आबादी बढ़ाने के लिए लोग दोषी हैं, पर्यावरण–तबाही के लिए लोग दोषी हैं, समाजवाद असफल हो गया, अतः....'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहना।' सिद्धांतकार ढाई हजार वर्षो का ज्ञात इतिहास झुठला रहे हैं। क्रान्तियों को असंभव–अव्यवहारिक बता रहे हैं।

पर सचाई का दूसरा पहलू यह भी है कि **हमारा समय भी ऐसे सिद्धान्तकारों–प्रचारकों को झुठला रहा है।** चीन में 'बाजार–समाजवाद' के विरुद्ध तैयार होती जनचेतना **माओ** की स्मृतियों की ओर मुड़ रही हैं और उनके सिद्धान्तों की ओर भी। **रूस** में सड़कों पर जुलूसों के हाथों में **लेनिन** और **स्तालिन** के सिर्फ पोस्टर ही नहीं दीख रहे हैं, बल्कि ज्युगानोव की नकली कम्युनिस्ट पार्टी से अलग वहां कई सर्वहारा क्रान्तिकारी संगठन सक्रिय हैं। **पेरू** में संघर्ष अभी भी जारी है और **मेक्सिको में चियापास** प्रांत के किसानों के संघर्ष से लेकर **इण्डोनेशिया** के जनउभार तक –– स्वतःस्फूर्त जन संघर्षों की एक नई लहर नई विश्व व्यवस्था के खिलाफ खड़ी दिखाई दे रही है।

फिर भी यह सच है कि आज, अभी, पूंजीवादी संसदीय राजनीति, सुधारों और रैडिकल पेटी-बुर्जुआ संघर्षों के दायरों–परिधियों के बाहर सर्वहारा वर्ग की सुचिन्तित क्रान्तिकारी विचारधारा और उससे लैस क्रान्तिकारी केन्द्र के इर्दगिर्द साम्राज्यवाद–पूंजीवाद विरोधी शक्तियों का ध्रुवीकरण होता नहीं दीख रहा है। हमारे देश में कठिन दुरवस्था, सघन संकट और विकट अंधकारमय भविष्य के बावजूद सच्चाई यही है कि आज की व्यवस्था के सामने सम्भावनासम्पन्न चुनौती प्रस्तुत करने में क्रान्तिकारी शक्तियां सर्वथा अक्षम बनी हुई हैं।

आज से ठीक पचास वर्षों पहले जब विश्वयुद्ध की मार से जर्जर ब्रिटिश साम्राज्यवाद विश्व स्तर पर चौधरी का पद अमेरिका को सौंप रहा था और जनउभारों का भारी दबाव उसे भारत से भी हटने के लिए विवश कर रहा था, ठीक उसी समय,

1946 में भारत के किसान–मजदूर जैसे सहसा उठ खड़े हुए थे। तेभागा, तेलंगाना और पुनप्रा–वायलार के किसान संघर्षों ने घोषित कर दिया था कि किसान राष्ट्रीय जनवाद के संघर्ष में पूंजीपति वर्ग के साथ नहीं, बल्कि मजदूर वर्ग के साथ हैं। देश भर के 75 फीसदी संगठित उद्योगों के मजदूर हड़ताल पर थे। गौरवशाली **नाविक विद्रोह** के साथ ही वायु सैनिकों के विद्रोह भी जगह–जगह शुरू हो चुके थे और थल सेना में भी भारी असंतोष व्याप्त था। **गांधी–नेहरू–पटेल–आजाद–जिन्ना** –– ये सभी नेता इन सैनिक विद्रोहों के खिलाफ बयान दे रहे थे और इन्हें दबा देने की (कुछ खुली, कुछ दबी जुबान से) पैरवी कर रहे थे। पर यह नाविक विद्रोह **'बैटलशिप पोटेमकिन'** की विश्वप्रसिद्ध घटना की पुनरावृत्ति नहीं कर सका। कांग्रेस के कुशल–कुटिल बुर्जुआ नेतृत्व से वैचारिक तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व पहलकदमी छीन नहीं सका। विद्रोह क्रान्ति में रूपांतरित नहीं हो सका। राजनीतिक आजादी मिली, पर राज्यसत्ता भारतीय पूंजीपति वर्ग को मिली, जिसे साम्राज्यवादी विश्व ऐतिहासिक युग में विकृत बाधित पूंजीवादी विकास के मार्ग पर घिसटते–लंगड़ाते हुए, साम्राज्यवादी पूंजी, तकनोलाजी और सहकार की मदद से ही आगे बढ़ना था और विश्व पूंजीवादी तंत्र का एक छुटभैया बनकर ही जीना था। कम्युनिस्ट पार्टी **रणदिवे** के निकृष्ट अतिवामपंथी अवसरवाद, **डांगे गुट** के दक्षिणपंथी अवसरवाद और **अजय घोष** आदि के मध्यमार्ग के बीच उलझकर रह गई और **तेलंगाना संघर्ष** की पराजय के बाद पूरी तरह पतित होकर पूंजीवादी संसदीय राजनीति के खेल में शामिल हो गई।

साम्राज्यवाद संरक्षित समर्थित भारतीय पूंजीवादी "विकास मार्ग" की नियति–परिणति साठ के दशक के सामने आ चुकी थी। इस समय तक क्रान्तिकारी कतारों की निगाह में यहां का संसदीय कम्युनिस्ट नेतृत्व भी पूरी तरह नंगा हो चुका था। देश भर में जनउभार फूटने लगे थे। 1966 में **नक्सलबाड़ी किसान उभार** से एक नई शुरुआत हुई। चुनावी वामपंथियों से पके–ऊबे कार्यकर्ता पूरे देश स्तर पर इस ओर आकृष्ट हुए। नये क्रान्तिकारी केन्द्र के निर्माण की संभावनाएं प्रबल हो उठीं। पर जल्दी ही सभी आशाएं–संभावनाएं–आकांक्षाएं वामपंथी दुस्साहसवाद के गंभीर भटकाव की बलि चढ़ गईं। जो इस अतिवामपंथ का विरोध कर रहे थे, वे भी अपने वैचारिक अधकचरेपन और भारतीय क्रान्ति के बारे में कठमुल्लेपन से भरी समझ के कारण कोई विकल्प नहीं प्रस्तुत कर सके। अंततोगत्वा वे भी उसी गतिरोध और बिखराव के शिकार हुए जो गत तीस वर्षों तक लगातार चलता रहा है और आज भी जारी है।

यद्यपि आज भी आम क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं की बहुसंख्या इन्हीं कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों से जुड़ी हुई है, पर इनमें से अधिकांश का नेतृत्व आज "वामपंथी" लफ्फाजी करते हुए दक्षिणपंथी अवसरवादी दांवपेंच का खेल खेल रहा है। नई परिस्थितियों को पुराने विश्लेषणों के सांचे–खांचे में ठूंस–ठूंसकर फिट करने का काम पहले से भी अधिक जोर–शोर से हो रहा है। संगठनों के बोल्शेविक ढांचे और कार्यप्रणाली के प्रश्न को जैसे एजेण्डा से ही हटा दिया गया है। कुछ एक आज भी आतंकवादी लाइन और जनदिशा की खिचड़ी पका रहे हैं तो कुछ सामाजिक–जनवादी राजनीति के पैंतरों में भाकपा–माकपा से भी आगे निकलकर क्रान्तिकारी खेमे से ही बाहर हो गये हैं। और बचे हुए कुछ, बौद्ध भिक्षुओं की तरह घण्टा डोलाये जा रहे हैं, लकीर पीटे जा रहे हैं।

जबकि समय धारा के विरुद्ध तैरने की मांग कर रहा है, बहुतेरे ऐसे हैं जो "बदलती परिस्थितियों के अनुरूप सिद्धान्तों और रणनीति में बदलाव लाने" की दुहाई देते हुए धारा के साथ तैरने में यकीन रखने लगे हैं। कभी–कभी कुछ सामाजिक–जनवादी "मार्क्सविद्याविद" अकादमीशियन भी कुछ मार्के की बात कर जाते हैं, जैसे कि एलेन मीक्सिन्स वुड का यह कहना है कि :

"The critique of captitalism is out of fashion - and here there is a curious convergence, a kind of unholy alliance, between capitalist triumphalism and socialist pessimism.. the tiumph of the right is mirrored on the left by a sharp contraction of socialist aspirationss- Left intellectuals, if they are not actually embracing capitalism as the best of all possible worlds, have little hope for anything more than a bit more space within the interstices of capitalism; and they look forward, at best, to only the most local and particular resistances. And there is another curious effect of all this. capitalism is becoming so universal, so much taken for granted, that it is becoming invisible.

Now clearly we have plenty to be pessimistic about. Recent and current events have us plenty of cause. but there is somthing curious about the way many of us are reacting to all this. If capitalism has indeed triumphed, you might think that what we need now more than ever is a critique of capitalism. why is this the right moment to embrace modes of thought which seem to deny the the very possibility not only of surpassing capitalism but even of critically understanding it?"

(Ellen Meiksins Wood : What to the Post Modernist Agenda\ (Monthly Review, July-August 1995)

और हम समझते हैं कि ज़रूरत सिर्फ यही नहीं है कि सिर्फ पूंजीवाद की आलोचना की जाये और इसके विकल्प की संभावना/अवश्यंभाविता को सैद्धान्तिक धरातल पर रेखांकित किया जाये। जरूरत इस बात की है कि इस दिशा में

सक्रिय चेष्टाएं भी की जायें। यही आज के नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन का कार्यभार है। सचमुच यह धारा के विरुद्ध तैरने का काम है, क्योंकि बेशक यह समय सामाजिक क्रान्ति के पक्षधर लोगों के लिए बेहद कठिन है। कोई शार्टकट नहीं हो सकता।

जिन लोगों ने फिर भी एक बेहतर दुनिया की उम्मीद नहीं छोड़ी है, उन्हें सुस्त, अराजक ढंग से नहीं; चुस्त, आवेगमय, तूफानी और अनुशासित ढंग से काम करना होगा। उन्हें आज की दुनिया को, भूमण्डलीय उत्पादन और विनिमय के तंत्र को, इसकी राजनीतिक–सांस्कृतिक अधिरचनात्मक अट्टालिका को, अपने देश के गांवों और शहरों के वर्ग–संबंधों को और समग्र राजनीति और संस्कृति को, इनके बदलाव की आंतरिक गति एवं अंतर्संबंधों को भली–भांति समझना होगा। इसके लिए उन्हें न सिर्फ अतीत के सभी संघर्षों का समाहार करना होगा, बल्कि विचारधारा की गहरी समझ हासिल करनी होगी। एक 'आइडियोलॉजिकल ब्रेक थ्रू' की जरूरत है और यह इसी लम्बी श्रमसाध्य प्रक्रिया में होगा।

जिन लोगों ने फिर भी एक बेहतर दुनिया की उम्मीद नहीं छोड़ी है, उन्हें क्रान्ति की विचारधारा और नक्शा लेकर उनके बीच जाना होगा जो सारी सम्पदा के निर्माता हैं और फिर जिनके एक बड़े हिस्से को फालतू अनावश्यक और रद्दी करार दे दिया गया है। उन्हें जब यह समझा दिया जायेगा कि जो व्यवस्था उन्हें फालतू, अनावश्यक और रद्दी बता रही है, वस्तुतः वह खुद ही फालतू, अनावश्यक और रद्दी हो चुकी है तो वे लोग इस व्यवस्था को इसके उचित स्थान पर ले जाकर रख आयेंगे –– यानी इतिहास की कचरागाड़ी पर।

1946 के नाविक विद्रोह मजदूर उभार और तेलंगाना–तेभागा–पुनप्रा–वायलार के विस्फोट के बाद पचास वर्ष बीत चुके हैं और नक्सलबाड़ी किसान उभार के तीस वर्ष बीत चुके हैं। हालात का तकाजा है कि इंकलाबी बदलाव की ताकतें एक बार फिर उठ खड़ी हों। हमें अतीत के इन गौरवशाली संघर्षों से सीखना होगा। प्रेरणा लेनी होगी। **यह याद भी रखना होगा कि 1946 या 1966 फिर से दुहराया नहीं जा सकता।**

एक नया दौर शुरू हो चुका है। साम्राज्यवाद साम्राज्यवाद ही है, पर इसका यह एक नया दौर है। उपविनेवशवाद और नवउपनिवेशवाद का दौर बीत चुका है। यह आर्थिक नवउपनिवेशवाद का दौर है। तीसरी दुनिया के देश ही आज भी साम्राज्यवाद की कमजोर कड़ियां और भावी क्रान्तियों की संभावित रंगस्थली हैं। पर इन क्रान्तियों के चरित्र में बदलाव आ गया है। इन देशों के छोटे–बड़े सभी पूंजीपति विश्व पूंजीवादी तंत्र से, साम्राज्यवाद के जूनियर पार्टनर के रूप में जुड़ गये हैं। 'स्वदेशी' का नारा पुराना पड़ गया है। अब स्वेच्छा से इन देशों के शासक वर्गों –– पूंजीपतियों, व्यापारियों, फार्मरों आदि ने विदेशी पूंजी और सहकार के लिए दरवाजे खोल दिये हैं। सुदूरवर्ती गांवों तक में पूंजी के प्रसार ने पहले एक क्रमिक प्रक्रिया और फिर एक उछाल के साथ, प्राक्पूंजीवादी आर्थिक–सामाजिक संबंधों को बदल डाला है। जहां स्वरूप पुराना है, वहां भी अंतर्वस्तु नयी है।

आर्थिक नवउपनिवेशवाद के इस नये दौर में भारत जैसे देशों में साम्राज्यवाद–पूंजीवाद विरोधी नई क्रान्तियों का सवाल एजेण्डे पर है। नई समाजवादी क्रान्ति का सवाल एजेण्डे पर है। '46 या '66 को दुहराया नहीं जा सकता। इनकी अगली कड़ी बनानी है। त्रासदी को भी दुहराने की कोशिश की जाये तो प्रहसन बन जाती है।

नये युग की नई क्रान्तियों की रणनीति नई होगी। इन पर सोचना तथा अतीत की क्रान्तियों का और आज की दुनिया का अध्ययन करना जरूरी है, पर अध्ययन कक्षों, पुस्तकालयों में कैद होकर नहीं बल्कि सामाजिक प्रयोगों में लगकर, आम जनों की रोजमर्रे की लड़ाइयों में शामिल होकर।

●

''..मानव जाति के पूरे विकास ने जो संस्कृति पैदा की है उसकी सूक्ष्म जानकारी तथा उसके रूपांतरण के आधार पर ही हम एक सर्वहारा संस्कृति का निर्माण कर सकेंगे। सर्वहारा संस्कृति ऐसी वस्तु नहीं है जो शून्य से पैदा हो गई हो, वह इन लोगों का आविष्कार नहीं है जो अपने को सर्वहारा संस्कृति का विशेषज्ञ बताते हैं ये सब मूर्खता की बातें हैं। पूंजीवादी, सामंती तथा नौकरशाही समाज के जुए के नीचे रहते हुए मानव जाति ने जो ज्ञान-राशि संचित की है; सर्वहारा संस्कृति अनिवार्य रूप से उसका तार्किक विकास होगी। जिस तरह मार्क्स द्वारा पुनर्रचित राजनीतिक अर्थशास्त्र ने हमें यह बतलाया है कि मानव समाज अनिवार्य रूप से कहां पहुंचेगा; वर्गसंघर्ष की तरफ, सर्वहारा क्रांति की शुरुआत की तरफ वह कैसे आगे बढ़ेगा उसी तरह ये तमाम रास्ते भी सर्वहारा क्रांति की दिशा में बढ़ते आये हैं और बढ़ते जायेंगे।

लेनिन (युवक संघों के कार्य, 2 अक्टूबर, 1920, सम्पूर्ण ग्रंथावली, खण्ड 31 पृत्र 283-99)

आर्थिक प्रगति और मानव विकास

आज सारी दुनिया में पूंजीवाद के ''भूमण्डलीकरण'' का रथ दौड़ रहा है और उसका मीडिया-तंत्र बड़े जोर-शोर से प्रचार कर रहा है कि दुनिया एक ''भूमण्डलीय गांव'' के रूप में ''एकीकृत'' हो रही है, कि दुनिया की विकसित और विकासशील - सभी अर्थव्यवस्थाएं एक ''संघीय अर्थव्यवस्था'' (फेडरल इकॉनमी) का रूप लेती जा रही हैं।

यह तो है मीडिया-तंत्र का कमाल जो आज स्वयं में ''भूमण्डलीकृत'' है। परन्तु इसकी असली अन्तर्कथा क्या है? दुनिया के उत्तर-दक्षिण विभाजन की खाई और तेजी से चौड़ी होती जा रही है : एक तरफ उत्तर के विकसित देश समृद्धि की नयी-नयी ऊंचाइयां छूते जा रहे हैं, तो दूसरी तरफ, दक्षिण के विकासशील देश कंगाली की अतल खाइयों में डूबते जा रहे हैं -- उत्तर की उत्तरोत्तर समृद्धि की कीमत चुकाते हुए। ''भूमण्डलीकरण'' का यही असली चरित्र है। उसकी ''एकीकरण'' और ''संघीय अर्थव्यवस्था'' की मुहिम बस तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं में बहुराष्ट्रीय पूंजी की लूट के लिए ''लेवल प्लेयिंग फील्ड'' तैयार करना है, जबकि स्वयं बहुराष्ट्रीय पूंजी के प्रभाव क्षेत्रों को ''संरक्षणवाद'' की घेरेबंदी से सुरक्षित करना है -- नाफ्टा, यूरोपीय संघ और एपेक इसी के उदाहरण हैं।

इस विश्वव्यापी परिदृश्य के चलते आज स्थिति यह है कि मुट्ठी भर बहुराष्ट्रीय पूंजी के धनी विकसित देश आर्थिक विकास के केन्द्र में हैं, जबकि बहुसंख्यक विकासशील, तीसरी दुनिया के देश हाशिये पर तेजी से फेंके जा रहे हैं। यही कारण है कि विश्व की एक-चौथाई से अधिक आबादी (*1.6* अरब) उन विकासशील देशों में रह रही है जिनकी औसत आय पिछले एक दशक के दौरान वास्तव में गिरी है। इसके विपरीत, बमुश्किल *1.4* अरब से कुछ ही अधिक आबादी उन देशों में रह रही है जिसकी औसत आय वास्तव में बढ़ी है। यही उत्तर-दक्षिण विभाजन का परिदृश्य है। इससे भी बड़ी वीभत्स सच्चाई यह है कि *70* विकासशील (दक्षिण के) देशों में प्रति व्यक्ति औसत आय सन *'80* में प्रति व्यक्ति औसत आय से भी कम हो चुकी है, और इनमें से *43* देश (जिनमें से कई अफ्रीकी देश है) ऐसे है जिनमें प्रति व्यक्ति औसत आय सन् *'70* में प्रति व्यक्ति औसत आय से भी नीचे चली गयी है। केवल *1990* से *1993* के बीच ही *21* देशों की प्रति व्यक्ति औसत आय घटकर *1/5* या उससे भी कम हो चुकी है। इनमें ज्यादातर पूर्वी यूरोप के भूतपूर्व समाजवादी और भूतपूर्व सोवियत संघ (सी. आई. एस.) के देश आते हैं। बेशक एशिया के कुछेक देशों में प्रति व्यक्ति औसत आय कुछ बढ़ी है, परन्तु उसका वितरण इतना विषम है कि इनमें गरीबों की संख्या पिछले दो दशकों में वास्तव में बढ़ी ही है।

''भूमण्डलीकृत'' आर्थिक विकास की असमानता या विषमता का आलम आज यह है कि औद्योगिक और विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति औसत आयों के बीच की खाई जो *1960* में *5,700* डॉलर के बराबर थी, तेजी से चौड़ी होती हुई *1993* में तीन गुनी, यानी *15,400* डालर के बराबर हो चुकी है। इसी तरह दुनिया की सबसे समृद्ध *20* प्रतिशत आबादी की आय का हिस्सा जो सन् *'60* में *70* प्रतिशत था, तेजी से बढ़कर सन् *'91* में *85* प्रतिशत तक पहुंच चुका है, जबकि *20* प्रतिशत सबसे निर्धन आबादी की आय का हिस्सा *2.3* प्रतिशत से घटकर मात्र *1.4* प्रतिशत ही रह गया है। और सच तो यह है कि *85* प्रतिशत से अधिक विश्व आबादी की औसत आय का हिस्सा इस अवधि के दौरान वास्तव में तेजी से कम ही हुआ है। नतीजतन, समृद्धतम और निर्धनतम का अनुपात दूना हो गया है -- *30:1* से *60:1*। आज स्थिति यह है कि दुनिया की सबसे समृद्ध *358* धनपतियों की सम्पदा दुनिया की सबसे निर्धन *45* प्रतिशत आबादी (*2.3* अरब) की कुल सम्मिलित सम्पदा के बराबर हो चुकी है, और उत्तरोत्तर बढ़ते जाने की ही दिशा में अग्रसर है।

इस प्रकार, हम देखते है कि पूंजीवादी -- खासतौर से ''भूमण्डलीकृत'' -- आर्थिक विकास ने ''मानव विकास'' के नाम पर अत्यन्त थोड़े लोगों का ही ''विकास'' किया है -- ये ही ''विकास'' की ''मुख्यधारा'' हैं -- जबकि शेष भारी आबादी का मानव-विकास न सिर्फ बाधित हुआ है बल्कि उसी अनुपात में विपरीतगामी होता गया है -- ''भूमण्डलीकृत'' केन्द्रीयकरण की अनिवार्यतः विपरीत अपकेन्द्रीय प्रतिक्रिया के तौर पर हाशिये पर फेंक दिये जाने का शिकार होता गया है।

ऐसा क्यों है? दरअसल यह स्वयं विश्व पूंजीवाद के चरित्र में ही निहित है। हम यहां लेनिन के उस उद्‌गार को अवश्य याद करें कि यदि पूंजीवाद यह असमान विकास न करे तो वह पूंजीवाद ही नहीं रह जायेगा। परन्तु वर्तमान ''भूमण्डलीकृत'' पूंजीवाद की एक सर्वथा नयी अभिलाक्षणिकता को इंगित कर देना भी आवश्यक है -- जो क्लासिकीय विश्व पूंजीवाद की संचय प्रक्रिया से ठीक *180°* के कोण पर घूम चुकी है। आज इसकी आय-उत्पादक गतिविधि प्रत्यक्ष श्रम के इस्तेमाल पर उतनी निर्भर नहीं रह गयी है जितनी कि ''रोजगारविहीन'' विकास पर -- जो कि इसकी शोषणकारी लूट और संचय का पहले हमेशा से कहीं अधिक लाभदायक आधार बन चुका है। इसी के चलते यूरोप में खुली बेरोजगारी तथा अमेरिका और जापान जैसे देशों में छिपी या अनभिलिखित बेरोजगारी की दरें बहुत ऊंची हो चुकी है। एशियाई टाइगर कहे जाने वाले देशों में भी, तीव्र आर्थिक विकास के बावजूद, बेरोजगारी बढ़ती जा रही है, और शेष एशिया, लातिन अमेरिका और अफ्रीका के तमाम देशों में तो बेरोजगारी की दरें निरपेक्ष रूप से बढ़ती जा रही है। इस प्रकार, वर्तमान ''भूमण्डलीकृत'' पूंजीवाद भारी मानवीय श्रम और उसकी उद्यमशीलता एवं सृजनशीलता को सामाजिक रद्दी में तब्दील करता जा रहा है। वस्तुतः यही उसकी ''आर्थिक प्रगति'' का असली चरित्र है। ऐसे में उससे किसी मानवीय विकास की आशा करना व्यर्थ है।

यू.एन. डी.पी. (यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेण्ट प्रोग्राम) द्वारा जारी मानव विकास रिपोर्ट 1996 में, बेशक, विश्व में बढ़ रही समृद्धि के मुकाबले सुरसा के मुंह की तरह बढ़ रही व्यापक मानवीय कंगाली और बदहाली पर चिन्ता व्यक्त की गयी है, परन्तु यह दरहकीकत एक घड़ियाली आंसू भर ही है। कारण कि जो ये घड़ियाली आंसू बहा रहे हैं वे ही विश्व मानवता को निगल भी रहे हैं। आखिर शिकार निगलता घड़ियाल यही तो करता है। यदि मानव विकास रिपोर्ट *1996* में इस ''भूमण्डलीकृत'' पूंजीवादी अर्थतंत्र की मानवता द्रोही प्रकृति पर अंगुली नहीं उठायी गयी है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि यह तो उसके अपने चरित्र के अनुरूप ही है।

लेकिन उपर्युक्त संक्षिप्त परिदृश्य- विश्लेषण से यह कतई भ्रम नहीं पैदा होना चाहिए कि तीसरी दुनिया के देशों के शासक वर्ग भारी मेहनतकश आबादी के प्रति वास्तव में कोई मानवीय सरोकार रखते हैं। ये ''भूमण्डलीकरण'' के रथ में, अपनी विवशता और जरूरत -- दोनों ही कारणों से, जुते घोड़े बन चुके हैं -- लद्दू घोड़े! इनकी भी मूल प्रकृति वही है जो ''भूमण्डलीकृत'' पूंजीवाद की है।

और अन्त में, एक महत्वपूर्ण बात और। आर्थिक विकास मानव-विकास की बुनियाद है, पर वही मानव

विकास नहीं है। नींव ही इमारत नहीं होती। नींव पर इमारती ढांचे की अभिकल्पना और निर्माण भी उतना ही महत्वपूर्ण है। आर्थिक प्रणाली न्यूटनीय विज्ञान पर अधिक आधारित है, जबकि जीवन अधिक डारविनीय है। जीवनरहित शुद्ध भौतिकी के नियम जस का तस जीवन पर लागू नहीं होते। जीवन स्वयं में एक महत्वपूर्ण कारक है -- जो सतत विकासमान है। उसकी पूर्वापेक्षा और उद्देश्यात्मकता को आर्थिक प्रणाली में सम्पूरित किये बगैर कोई भी आर्थिक प्रणाली जीवन प्रणाली नहीं बन सकती। यह पूंजीवाद की ही नहीं, विज्ञान की -- उस विज्ञान की -- भी समस्या है जिस पर स्वयं पूंजीवाद आधारित है। शायद इसीलिए इस युग के महान वैज्ञानिक श्रोडिंगर ने कहा था : तुम्हारे कर्तव्य को जीवन की महान त्रासद - कामदी में जो भूमिका अदा करनी है, उसे कभी आंख - ओझल न होने दो, .. जीवन से सम्पृक्त रहो और जीवन को अपने आप से सम्पृक्त रखो'' (एरविन श्रोडिंगर, ''साइन्स एण्ड ह्यूमैनिज्म : द फिजिक्स आफ अवर टाइम्स'').

अतः परिवर्तन की लड़ाई में ''भूमण्डलीकृत'' पूंजीवाद -- जिसमें बहुराष्ट्रीय पूंजी और राष्ट्रीय पूंजी दोनों एक असमान साझीदारी में नाभिनालबद्ध हो चुकी है -- की विदेशी-देशी दोनों पूंजियों के संश्रय के खिलाफ मोर्चा बनाने के साथ-साथ, निर्जीव न्यूटनीकृत आर्थिक प्रणाली को सजीव डारविनीकृत प्रणाली से सम्पूरित करने के सवाल पर भी गम्भीरता से सोचना होगा।

● **विश्वनाथ मिश्र**

विश्व खाद्य सम्मेलन पर

भूख और मुनाफे की नूरांकुश्ती

● **प्यारे लाल, बी.के.सिहं., डी.के. सचान**

धरती के माथे से भूख व कुपोषण के कलंक को मिटाने एवं सबको समुचित एवं पौष्टिक आहार उपलब्ध कराने जैसे ''उदात्त लक्ष्य'' को लेकर संयुक्त राष्ट्रसंघ के 'खाद्य एवं कृषि संगठन' द्वारा आयोजित दूसरा 'विश्व खाद्य सम्मेलन' भी बिना किसी कारगर कदम के -- बिना किसी कार्य योजना के विगत *13-17* नवम्बर को रोम में सम्पन्न हो गया। कागजी खानापूरी में *43* पृष्ठों का रोम घोषणा पत्र पारित किया गया जिसमें वर्तमान *80* करोड़ भूखी कुपोषित आबादी की संख्या को सन् *2015* तक घटाकर आधा करने की बात कही गई है। स्मरणीय है कि पहले विश्व खाद्य सम्मेलन *(1974)* में तो एक दशक के भीतर भुखमरी-कुपोषण का नामोनिशान तक मिटा देने का लक्ष्य रखा गया था। संयुक्त राज्य अमेरिका के तत्कालीन सेक्रेटरी आफ स्टेट हेनरी किसिन्जर ने खाद्य सम्मेलन में बोलते हुए कहा था, ''यह हमारे युग का ठोस आधार है कि हमने वह तकनीकी क्षमता अर्जित कर ली है कि मानवता को भूख के पंजे से मुक्त कर सकें। इसलिए आज हमें इस स्पष्ट लक्ष्य को सामने रखना चाहिए कि एक दशक के भीतर कोई भी बच्चा भूखा नहीं सोयेगा, न ही किसी परिवार को अगले दिन के भोजन की चिन्ता करनी होगी। मानव का भविष्य और क्षमता भूख से अब और कलंकित नहीं होनी चाहिए।'' लेकिन इसके ठीक एक दशक बाद दुनिया में भूखे लोगों की संख्या दो गुनी हो गई थी।

आज विकासशील देशों में हर *5* में से एक व्यक्ति भयंकर भुखमरी का शिकार है (संयुक्त राष्ट्र संघ शिशु कोष)। विश्व के दो अरब लोग ऐसा घटिया खाना खाते हैं कि उन्हें अपने स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक प्रोटीन, विटामिन व खनिज नहीं मिल पाते जिसके फलस्वरूप वे जिन्दा रहते हैं तो पूरी जिन्दगी कमजोरी व नाना प्रकार की बीमारियों से पीड़ित जिन्दा लाशों की तरह घिसटते कराहते हुए नहीं तो अकाल मृत्यु के आगोश में ओझल हो जाते हैं। आज विज्ञान की प्रगति एवं उसकी उपलब्धियां जब आकाश की ऊंचाइयों को छू रही हैं और जब खाद्यान्न उत्पादन की सीमाओं को भेदा जा चुका है तब दुनिया में भुखमरी-कुपोषण की दिनोंदिन गम्भीर होती समस्या विश्व समुदाय के स्वयंभू चौधरियों के प्रयासों के खोखलेपन को उजागर करती है। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बुतरस घाली भी स्वीकारने के लिए विवश हैं कि ''विश्व में व्याप्त भुखमरी एवं कुपोषण की वजह आज अनाज की कमी नहीं वरन् दोषपूर्ण सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था है।'' इण्टरनेशनल फूड पालिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट के अनुसार, कृषि अनुसंधान में इतनी क्षमता है कि आज से *100* वर्षों तक विश्व के *12* अरब लोगों को भरपूर भोजन उपलब्ध कराया जा सकता है। कनाडा के ओटावा विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. माइकल चौसुदोवस्की कहते हैं कि ''विश्व में खाद्यान्न की प्रचुरता ही गरीबों के खाद्य संकट व भूख को जन्म दे रही है।''

दूसरे खाद्य सम्मेलन में *187* में से सिर्फ *65* देशों के शासनाध्यक्षों/राष्ट्राध्यक्षों का हिस्सा लेना, वह भी केवल विकासशील देशों के (औद्योगीकृत ग्रुप - *7* के देशों में सिर्फ इटली ने भाग लिया वह भी शायद इसलिए कि खाद्य सम्मेलन रोम में हुआ) इस बात का परिचायक है कि दुनिया के शासक वर्ग को विशेषकर विकसित देशों को भुखमरी-कुपोषण पर अब घड़ियाली आंसू भी बहाने की जरूरत नहीं रह गई है। कारण स्पष्ट हैं। फिलहाल विश्व-पटल पर प्रतिरोध लगभग नदारद है। सोवियत ब्लाक ढह गया है। सोवियत साम्राज्यवादी शिविर के पराभव के बाद पश्चिमी निर्द्वन्द्व हो चुका है। समाजवादी खेमा जो शोषण के खिलाफ तीसरी दुनिया विशेषकर बहुसंख्यक आम आबादी के पक्ष में खड़ा होता था पूरे विश्व से समाप्त हो चुका है। माओ की मृत्यु के बाद पूंजीवाद मार्ग पर अग्रसर चीन ने भी पश्चिम के सामने घुटने टेक दिये हैं। कभी उपनिवेशवाद के विरुद्ध लड़कर सत्तासीन होने वाले तीसरी दुनिया के पूंजीवादी शासकों ने आज अपनी अंतर्निहित कमजोरी, विवशता और जरूरत के दबाव में स्वेच्छा से भूमंडलीकरण की नई विश्व-व्यवस्था को स्वीकार लिया है। पूरी दुनिया पर पूंजी का एकछत्र साम्राज्य-सा छा गया है। उरुग्वे चक्र की गैट वार्ता के समापन के बाद 'विश्व व्यापार संगठन' के आविर्भाव से व्यापार के लिए राष्ट्रीय सीमाएं तेजी से ध्वस्त हो रही हैं। नतीजतन तीसरी दुनिया के तमाम देशों की कृषि समेत पूरी अर्थव्यवस्थाएं अब बाजार की शक्तियों से संचालित होने लगी हैं। ऐसे में आम आबादी की खाद्य सुरक्षा का प्रश्न विकसित देशों तथा दुनिया के तमाम अमीर लोगों के प्रतिनिधि पूंजीवादी शासक वर्गों के लिए कोई महत्व नहीं रखता।

खाद्य सम्मेलन के 'रोम घोषणा पत्र' का एकमात्र लक्ष्य है सन् *2015* तक दुनियां में भुखमरी के शिकार लोगों की संख्या को *80* करोड़ से घटाकर *40* करोड़ करना। यानी कि पूरी दुनिया के *40* करोड़ लोग अगर भूख से मर रहे हों तो विश्व के खाद्य सम्मेलन अपने उद्देश्यों में सफल माना जायेगा। यह प्रस्ताव मारी आंतुआनेत (लुई सोलहवें की पत्नी) के बदनाम संवाद की ही याद दिलाता है। पहले खाद्य सम्मेलन में जब भुखमरी समाप्त करने का लक्ष्य रखा गया था तो भूखे लोगों की संख्या *80* करोड़ हो गई। इस बार जब लक्ष्य ही *40* करोड़ भूखे लोग बनाने का है तो वास्तविकता क्या होगी?

उक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सामाजिक,

आर्थिक व राजनीतिक स्थितियों में बदलाव, प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की तैयारी, ग्रामीण विकास की गारण्टी आदि जो 7 मुद्दे हैं, उन्हें लागू करना विभिन्न देशों की सरकारों का अलग-अलग काम है, पर भूमण्डलीकरण के दौर में वे किस प्रकार लागू करेंगी इसका संतोषजनक जवाब किसी के पास नहीं है। वस्तुतः विश्व व्यापार संगठन के तहत कृषि उपजों के राष्ट्रीय बाजारों को खोलने और कृषि क्षेत्र को औद्योगिक आधारों पर पुनर्गठित करने को लेकर पड़ रहे दबावों के चलते ही दुनियां एक अभूतपूर्व खाद्य संकट के मुहाने पर आ खड़ी हुई है।

पिछले कई दशकों में विश्व बैंक एवं मुद्रा कोष ने तीसरी दुनिया को संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत भारी मात्रा में कर्ज और अनुदान देकर निर्यातोन्मुख खेती के लिए प्रोत्साहित किया है। कृषि के व्यवसायीकरण का सिलसिला औपनिवेशिक काल में साम्राज्यवादियों ने शुरू किया था। वह इन देशों के आजाद होने के बाद भी कायम रहा। नतीजतन देश की उपजाऊ जमीन पर उत्तरोत्तर निर्यात के लिए खेती होती गयी और खाद्य फसलों की खेती घटती गई। आज की स्थिति यह है कि मध्य अमेरिका की आधी जमीन पर निर्यात के लिए खेती होती है। इन देशों में पाइन एप्पल, पाम ऑयल, सब्जी और फूल उपजाए जाते हैं। अफ्रीका में खेती का प्रमुख हिस्सा काफी, चाय, कोकोआ, कपास, रबड़, मूंगफली तम्बाकू आदि जैसी निर्यात करने वाली फसलों के उत्पादन में लगा है। अफ्रीका में 12 ऐसे देश हैं जिनकी राष्ट्रीय आय का 70 प्रतिशत सिर्फ एक फसल द्वारा अर्जित होता है।

भारत में भी चाय, काफी, कपास, गन्ना, तम्बाकू, सोयाबीन आदि के अलावा फल, फूल, सब्जी, तिलहन जैसी व्यवसायिक फसलों का उत्पादन बड़े पैमाने पर शुरू हो चुका है। पंजाब में टमाटर व कर्नाटक, तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश में सूरजमुखी धीरे-धीरे खाद्यान्न की पैदावार को प्रतिस्थापित कर रहे हैं। समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों में झींगा मछलियां पैदा की जा रही हैं। महाराष्ट्र ने तो पहले ही उद्यानिकी परियोजनाओं को भूमि सीलिंग कानून से छूट दे दी है। तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश में निजी उद्योगों को झींगा मछली पालन के लिए 300 एकड़ तक जमीन के अधिग्रहण के अधिकार दिये गये हैं। यहां तक कि मक्का की पैदावार में जो बढ़ोत्तरी हाल में हुई है उसका लक्ष्य भी पशु और कुक्कुट आहार ही है जिसका उपयोग मुख्यतः निर्यात के लिए ही होगा। नतीजतन खाद्य फसलों का उत्पादन घट रहा है। भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण (1995-96) के अनुसार खाद्य फसलों का क्षेत्रफल सूचकांक (आधार 1981-82 = 100) 1990-91 के 100.7 से घटकर 1994-95 में केवल 97.3 हो गया जबकि व्यावसायिक फसलों का 120.0 से बढ़कर 125.7 हो गया। इस अवधि में धान और गेहूं का उत्पादन बढ़ा है (सूचकांक क्रमशः 149.4 से बढ़कर 163.2 और 156.6 से बढ़कर 186.0) जबकि निर्धन आबादी की खाद्य फसलों – मोटे अनाजों का उत्पादन घटा है (सूचकांक 113.1 से घटकर 104.8 हुआ)। यह प्रक्रिया छोटे किसानों को उनकी जगह-जमीन से उजाड़कर गरीबी-भुखमरी के गर्त में ढकेल रही है।

ब्राजील में अनाज की उपज का आधा हिस्सा जानवरों को खिलाया जाता है जबकि वहां के निर्धनों को पौष्टिक आहार नहीं मिलता। मैक्सिको में जानवरों को खिलाने वाले अनाजों के अन्तर्गत क्षेत्रफल बढ़ रहा है (1960 में 5 प्रतिशत से बढ़कर 1980 में 23 प्रतिशत हुआ)। वहां के लाखों छोटे किसान बर्बाद हो चुके हैं। विकासशील देशों में इस निर्यातोन्मुख खेती का ही यह नतीजा है कि ये अधिकांश देश आज खाद्य सामग्री के आयातक हैं। विश्व संगठन के आंकड़ों के अनुसार 1994 में तीसरी दुनिया के देशों में सामान्यतः 75 बिलियन डालर की खाद्य सामग्री का आयात किया गया और 67 बिलियन डालर का निर्यात। फलतः इनका खाद्य व्यापार घाटा 8 बिलियन डालर था।

कृषि के व्यवसायीकरण की यह प्रक्रिया गैट के उरुग्वे चक्र के समापन व 'विश्व व्यापार संगठन' के आविर्भाव से और तेज हो गई है इसके चलते कृषि के बचे-खुचे आत्मनिर्भर टिकाऊ परम्परागत चरित्र को समूल समाप्त होने का खतरा पैदा हो गया है। डंकल प्रस्ताव के कई प्रावधानों ने कृषि के चरित्र को और उससे जुड़े खाद्य उपलब्धता के प्रश्न को नए परिप्रेक्ष्य में ला खड़ा किया है। इसका पहला प्रावधान आवश्यक आयात का है। उरुग्वे समझौते के अनुसार प्रत्येक देश को, चाहे उनके पास कितनी ही खाद्य सामग्री क्यों न हो, अपने उपभोग के एक निश्चित अनुपात में खाद्य पदार्थों का आयात करना आवश्यक है। हर देश को अपने उपभोग का कम से कम 2 प्रतिशत खाद्य पदार्थ आयात करना होगा। आयात का यह अनुपात सन् 2000 तक 5 प्रतिशत हो जाना है। दूसरा प्रावधान कृषि विकास के लिए दी जाने वाली सरकारी सहायता (सब्सिडी) को लेकर है। ध्यान देने की बात है कि विकसित देशों ने कई दशकों में भारी सब्सिडी देकर अपने यहां की कृषि को उन्नत कर लिया है। अब पिछड़े विकासशील देशों को सब्सिडी दिये बिना विकसित देशों से प्रतिस्पर्द्धा करनी होगी। गैट का तीसरा प्रावधान कृषि वस्तुओं के निर्यात सम्बन्धी सरकारी सहायता से संबंधित है। सभी देशों को निर्यात सहायता 36 प्रतिशत कम करनी है। एक अन्य प्रमुख प्रावधान कृषि बीजों, पेड़-पौधों के प्रजनन पर पेटेण्ट कानून लागू करने का है। इन प्रावधानों से विकासशील देशों की पूरी आर्थिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। खाद्य और कृषि संगठन द्वारा 1995 के एक अध्ययन के अनुसार, उरुग्वे चक्र के फलस्वरूप विश्व में उत्पादन और उपभोग दोनों प्रतिकूल प्रभावित होंगे। तीसरी दुनिया के तमाम देशों --एशियाई, लातिन अमेरिकी, अफ्रीकी सभी की आय और खाद्य उपलब्धता एवं निश्चितता पर खतरे की घण्टी बज रही है। कृषि में होने वाली प्रगति से मुख्य रूप से फायदा चंद बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को होगा जो कृषि पदार्थों के व्यापार पर अपना आधिपत्य जमाए हैं। विश्व में ऐसी 6 कम्पनियां (कारगिल, क्रोजर, अमेरिकन स्टोर्स, काण्टिनेण्टल ग्रेन, फिलिप मारिस और मैक्डोनाल्ड) हैं जिनका विश्व के 90 प्रतिशत निर्यात बाजार पर कब्जा है। कारगिल सबसे बड़ा खाद्य व्यापारी है जो विश्व के 60 प्रतिशत खाद्य व्यापार पर आधिपत्य जमाए है।

खाद्य उपलब्धता के मसले को बाजार की शक्तियां नहीं सुलझा सकतीं। स्थिति यह बन रही है कि विश्व समुदाय की गरीब आबादी की पहुंच से खाद्य वस्तुएं दूर होती जा रही हैं, क्योंकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का एक ही उसूल है -- मुनाफा। भूख से बिलखते, दम तोड़ते गरीब बेबस लोग इन्हें नजर नहीं आ सकते। अतः विश्व बाजार में भूख और मुनाफा नकली संघर्ष करते हुए एक दूसरे को उत्तरोत्तर पुष्ट करते जा रहे हैं।

खाद्यान्न आत्मनिर्भरता का प्रश्न राष्ट्रीय स्तर पर अतिरिक्त खाद्यान्न की मात्रा (देश के पास स्टाक) से तय नहीं की जा सकती। अगर भूखे लोगों में वाजिब क्रय शक्ति न हो तो बहुत कम उपलब्धता पर भी खाद्य अधिकता अर्जित की जा सकती है किन्तु इससे कुपोषण का प्रश्न हल नहीं होता। कोई देश राष्ट्रीय रोटी पकाकर नहीं खाता। अतः अगर कहीं भी कोई भूख से मर रहा है तो खाद्यान्न सुरक्षा का दावा धूर्तता है। अगर किसी बच्चे को कैलोरी की कमी से रतौंधी हो रही है तो कृषि की प्रगति एक ढोंग है। अगर कुपोषण का नाग फन काढ़े खड़ा है तो निर्यात का प्रयास लूट सदृश जघन्य अपराध है। दरअसल जिन्दा रहने के बुनियादी आधारों -- भोजन, श्वसन सरीखी प्रक्रियाओं की कोई व्यवस्था अगर मुनाफे के लिए बंधक बनाए तो ऐसी व्यवस्था का उन्मूलन ही एकमात्र वाजिब कदम बनता है।

(मुक्तिबोध मंच, पंतनगर)

Globalisation of Capital
An Outline of Recent Changes in the Modus Operandi of Imperialism
Price: Rs. 120 (P.B.) Rs. 200 (H.B.)
Publishers: **Rajwant pal Singh**
Editor, Lal Parcham, 4A,/3 Dhillon Marg, Model Town, Patiala_147001
Subhash Gatade, Editor, Lok Dasta
F-5/79, LIG Flats Sector-15, Rohini
New Delhi-110085

माओ त्से-तुङ के जन्मदिन (26 दिसम्बर) और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के तीसरे दशाब्दी वर्ष के अवसर पर

माओ के अमर अवदान और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की युगांतरकारी शिक्षाएं

माओ त्से-तुङ ने आज की दुनिया के जीवन और चिन्तन पर जो अमिट प्रभाव छोड़ा है, उसे प्रतिक्रान्ति और पुनरुत्थान की मौजूदा विश्वव्यापी लहर धो-पोंछ सकने में सर्वथा अक्षम सिद्ध हुई है। पूंजीवादी पुनर्स्थापना और उसके बाद की स्थितियों ने, विश्व पूंजीवाद के मौजूदा ढांचागत संकट ने और उसके दबाव से चरमराती साम्राज्यवाद की कमजोर कड़ियों में पल-बढ़ रही नई क्रान्तियों के बीजांकुरों-भ्रूणों ने बहुत जल्दी ही एक बार फिर क्रान्तिकारियों का ध्यान माओ त्से-तुङ के क्रान्तिकारी चिंतन और प्रयोग पर केन्द्रित कर दिया है। समाजवाद की पराजय के खतरों के बारे में माओ की भविष्यवाणी सही साबित हुई है और इसे रोकने के लिए सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की जो आम दिशा, रणनीति और आम रणकौशल उन्होंने विकसित किये, उस पर भी गहराई से सोचा जाने लगा है। माओ पहले हमेशा से अधिक प्रासंगिक हो गये हैं।

माओ त्से-तुङ हमारे समय के सबसे बड़े क्रान्तिकारी हैं। उनके जन्मदिन (26 दिसंबर) के अवसर पर हम 'दायित्वबोध कार्यालय' को प्राप्त एक दस्तावेज का वह अंश प्रकाशित कर रहे हैं जो माओ के चिन्तन और प्रयोगों के मूल्यांकन से सम्बन्धित है। यह दस्तावेज वस्तुतः किसी क्रान्तिकारी संगठन द्वारा आंतरिक बहस-मुबाहसे के लिए प्रस्तुत मसविदा है। यह स्वागत योग्य है और हमारे ख्याल से यह आज की जरूरत भी है कि बुनियादी विचारधारात्मक अवस्थितियों पर क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठन अपने भीतर और अन्य संगठनों के साथ बहस और विचार-विनिमय के साथ ही सांगठनिक दायरों के बाहर के ईमानदार, पक्षधर कम्युनिस्ट बुद्धिजीवियों तक भी इस पूरी बहस को, अपनी अवस्थितियों को ले जायें। इसके लिए 'दायित्वबोध' हमेशा ही एक मंच के रूप में प्रस्तुत रहेगा।

दस्तावेज का प्रस्तुत विचारोत्तेजक अंश विचारधारा के प्रश्न पर और माओ के अवदानों के मूल्यांकन के प्रश्न पर जारी बहस को नई गति देगा और समझदारी का एक नया धरातल तैयार करने में सहायक होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। - सम्पादक

स्तालिन के बाद माओ त्से-तुङ ने अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग और पूरी दुनिया के कम्युनिस्टों के नेता, पथप्रदर्शक और शिक्षक की ऐतिहासिक भूमिका निभाई तथा अपने पूरे जीवन काल में विभिन्न चरणों से होकर, मार्क्सवादी विज्ञान को निरन्तर समृद्धि प्रदान करते हुए उसे नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया। मार्क्सवाद-लेनिनवाद को अपने युगान्तरकारी अवदानों से समृद्ध करने का सिलसिला माओ ने स्तालिन के जीवनकाल में ही शुरू कर दिया था। अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपिनिवेशिक चीनी समाज में क्रान्ति की रणनीति एवं आम रणकौशल विकसित करते हुए, क्रान्ति के रास्ते की रूपरेखा तैयार करते हुए और सफल नई जनवादी क्रान्ति के व्यवहार द्वारा इसे सत्यापित करते हुए माओ ने पहली बार पूरी दुनिया के औपनिवेशिक-अर्द्धऔपनिवेशिक-नवऔपनिवेशिक देशों में क्रान्ति की आम लाइन स्पष्ट रूप में प्रस्तुत की, उसे सत्यापित किया और दुनिया भर की सर्वहारा पार्टियों, मजदूर वर्ग और क्रान्तिकारी जनता को साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी क्रान्ति की रणनीति एवं आम रणकौशल की नई मंजूषा प्रदान की। इसी दौरान माओ ने तत्कालीन विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन और चीनी कम्युनिस्ट आंदोलन में व्याप्त यांत्रिक भौतिकवादी एवं आधिभौतिक प्रवृत्तियों-रुझानों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए तथा "वाम" और दक्षिण के भटकावों के विरुद्ध सतत् संघर्ष करते हुए मार्क्सवादी दर्शन को आगे विकसित किया।

चीन में सफल जनवादी क्रान्ति के बाद वहां समाजवादी निर्माण के काम को आगे बढ़ाते हुए माओ ने सोवियत संघ के समाजवादी निर्माण के सकारात्मक-नकारात्मक अनुभवों का सार-संकलन किया, और चीन में समाजवादी क्रान्ति के एक नये मार्ग की रूपरेखा तैयार की। इसी अवधि में 'महान बहस' के दौरान उन्होंने आधुनिक संशोधनवादियों के विरुद्ध विचारधारात्मक संघर्ष में दुनिया भर के कम्युनिस्टों का नेतृत्व किया, ख्रुश्चेव गिरोह के बुर्जुआ चरित्र का पर्दाफाश किया और सोवियत संघ में पूंजीवादी पुनर्स्थापना का सांगोपांग समाहार करके उससे आवश्यक नतीजे निकाले। इस प्रक्रिया में माओ ने लेनिन के चिन्तन के छूटे हुए सिरे को पकड़ा, समाजवादी समाज में वर्ग संघर्ष के नियमों को उद्घाटित किया और सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत सतत् वर्ग संघर्ष जारी रखने के सिद्धान्त एवं पद्धति का युक्तियुक्त प्रतिपादन किया तथा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के द्वारा इन्हें मूर्तरूप देकर विश्व सर्वहारा के पूंजीवाद से कम्युनिज्म तक की सुदूर यात्रा के पथ को आलोकित किया।

माओ के महान सामाजिक प्रयोगों से निःसृत एवं सत्यापित युगान्तरकारी अवदानों को हम मोटे तौर पर दो हिस्सों में बांट सकते हैं। पहला, नई जनवादी क्रान्ति की रणनीति एवं आम रणकौशल, क्रान्ति की इस मंजिल के संयुक्त मोर्चे और दीर्घकालिक लोकयुद्ध के मार्ग के प्रतिपादन द्वारा मार्क्सवाद के शस्त्रागार को समृद्ध करने की मंजिल। यह मार्क्सवाद को मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा तक विकसित करने वाली मंजिल थी। दूसरा समाजवादी संक्रमण की समस्याओं से जूझते हुए महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति तक की

यात्रा की मंजिल जिसकी शिक्षाओं ने मार्क्सवादी विज्ञान के दर्शन, राजनीतिक अर्थशास्त्र और पार्टी एवं राज्य विषयक सिद्धान्तों आदि सभी शाखाओं-प्रशाखाओं को सर्वतोमुखी गुणात्मक और बुनियादी समृद्धि प्रदान की। जिस समय माओ अपने चिन्तन एवं व्यवहार की उपरोक्त पहली मंजिल में थे, उस समय ही रूस में समाजवादी निर्माण के अनुभवों पर चिन्तन, ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध 'महान बहस', पूंजीवादी पुनर्स्थापना के समाहार और चीन में समाजवादी रूपान्तरण के जटिल संश्लिष्ट प्रयोगों के व्यवहार-सिद्धान्त-व्यवहार की अनवरत प्रक्रिया आदि के माध्यम से वह प्रक्रिया भी शुरू हो चुकी थी, जिसकी चरम परिणति महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के सिद्धान्त और व्यवहार की मंजिल थी। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने समाजवादी संक्रमण की पूरी अवधि के लिए – इस पूरे विश्व ऐतिहासिक युग के लिए आम लाइन प्रस्तुत की और इसके लिए पहले से ही सर्वहारा वर्ग, कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों तथा उनकी पार्टियों को तैयारी-सम्बन्धी शिक्षा दी। माओ के इस युगान्तरकारी अवदान ने उनके चिन्तन को -- सर्वहारा विचाराधारा के विकास में अब तक की सर्वोच्च चोटी तक ऊंचा उठा दिया और मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद की मंजिल तक पहुंचा दिया।

माओ त्से-तुङ ने एक अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपिनिवेशिक समाज में क्रान्ति की रणनीति एवं आम रणकौशल को व्यवहार-सिद्धान्त-व्यवहार की प्रक्रिया में विकसित करते हुए जनता की जनवादी क्रान्ति के सिद्धान्त प्रतिपादित किये तथा उसे अमल में लाते हुए टेढ़े-मेढ़े और घुमावदार मार्ग पर चीनी जनता को नेतृत्व प्रदान किया। उन्होंने नई जनवादी क्रान्ति के तीन चमत्कारी हथियारों – कम्युनिस्ट पार्टी, लाल सेना और संयुक्त मोर्चा की युक्तियुक्त प्रकल्पना और सर्जना की तथा मजदूर-किसान संश्रय की मार्क्सवादी अवधारणा को नई ऊंचाइयों तक विकसित किया। दीर्घकालिक लोकयुद्ध के राजनीतिक एवं सामरिक सिद्धान्तों का निष्पादन किया और इस बात को चिन्हित किया कि चीनी क्रान्ति केवल दीर्घकालिक लोकयुद्ध के मार्ग से, देहातों में लाल आधार क्षेत्रों का निर्माण करके, गांवों से शहरों को घेरकर और इस तरह, अन्ततोगत्वा पूरे देश में राजनीतिक सत्ता को जीतकर ही विजयी हो सकती है।

माओ ने सर्वहारा के नेता और हिरावल के रूप में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का, उसके नेतृत्व में जनता की सशस्त्र संगठित राजनीतिक शक्ति के रूप में लाल सेना का और प्रतिक्रियावादी शासक वर्गों के विरुद्ध जनता के सभी वर्गों के संयुक्त मोर्चे का निर्माण किया। उन्होंने सर्वहारा वर्ग को संयुक्त मोर्चे का नेतृत्व करने की शिक्षा दी। पहली बार उन्होंने स्पष्ट एवं ठोस रूप में यह सिद्ध किया कि चीन जैसे पिछड़े हुए देशों में क्रान्ति की मुख्य ताकत किसान और नेतृत्वकारी शक्ति सर्वहारा वर्ग ही हो सकते हैं। उनके नेतृत्व और मार्गदर्शन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने विशाल जनसमुदाय को एकजुट, गोलबंद और संगठित किया, क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू किया, शौर्यपूर्ण सशस्त्र संघर्ष में लाल सेना और जनता का नेतृत्व करते हुए लम्बे अभियान जैसे महाकाव्यात्मक मुहिम को अंजाम दिया औ जापानी साम्राज्यवाद एवं प्रतिक्रियावादी च्याङकाई शेक हुकूमत को पराजित कर जनता की जनवादी क्रान्ति को सम्पन्न किया। इस दौरान "वाम" और दक्षिण के भटकावों के विरुद्ध लगातार सफल संघर्ष चलाते हुए उन्होंने चीनी पार्टी को विचारधारात्मक रूप से शक्तिशाली और अनुभवी बनाया। अपने क्लासिकीय प्रतिपादनों -- "व्यवहार के बारे में" और "अन्तरविरोध के बारे में" के द्वारा उन्होंने ज्ञान के मार्क्सवादी सिद्धान्त को और अन्तरविरोधों के सिद्धान्त को अपने प्रतिभावान दार्शनिक अवदान से समृद्ध किया तथा द्वंद्ववाद की समझदारी को गहरी एवं व्यापक बनाया। चीन में नई जनवादी क्रान्ति के माओ के सिद्धान्त के सफल व्यवहार ने अन्य देशों के सर्वहारा वर्ग और क्रान्तिकारी जनता को प्रेरणा और शिक्षा दी, जिन्होंने समान परिस्थितियों वाले देशों में इनको सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया।

यूं तो स्तालिन की यांत्रिक भौतिकवादी विच्युतियों, गलतियों और सोवियत प्रयोगों की समस्याओं पर माओ त्से-तुङ ने 1949 की नई जनवादी क्रान्ति के पहले ही सोचना शुरू कर दिया था, पर 1949 के बाद चीन में समाजवादी निर्माण की समस्याओं से जूझते हुए उन्होंने इन समस्याओं की क्रमशः ज्यादा से ज्यादा ठोस, व्यापक और सूक्ष्म रूप में पहचान की और इनके समाधान की दिशा में कदम ब कदम आगे बढ़े। 1956 में ख्रुश्चेव गुट द्वारा सोवियत संघ में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद उन्होंने इस विपर्यय के वस्तुगत और आत्मगत आधारों के बारे में – समाजवादी समाज की प्रकृति एवं समस्याओं के हर पहलू और समाजवादी प्रयोगों की हर तरह की गलनियों के बारे में व्यापक एवं गहरे चिन्तन की शुरुआत कर दी थी। इस समय तक चीन में भी समाजवाद के रास्ते को लेकर दो लाइनों का संघर्ष एकदम स्पष्ट रूप में उभरकर सतह पर आ चुका था। इसी संघर्ष की प्रक्रिया में आगे बढ़ता हुआ माओ का चिन्तन महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की मंजिल तक पहुंचा। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति चीन में समाजवादी रूपान्तरण के दौरान जारी वर्ग संघर्ष और पार्टी में जारी दो लाइनों के संघर्ष की चरम परिणति थी। अपने जिस महानतम अवदान से सर्वहारा विचारधारा को समृद्ध करके माओ त्से-तुङ ने उसे सर्वोच्च शिखर तक पहुंचाया, वह महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का दर्शन है। यह समाजवादी समाज, सर्वहारा राज्य और पार्टी से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूत्रीकरणों, प्रतिपादनों और स्थापनाओं का एक समुच्चय है जो समाजवादी संक्रमण की पूरी ऐतिहासिक अवधि के लिए सर्वहारा क्रान्ति की आम दिशा एवं आम लाइन प्रस्तुत करता है। इन निष्कर्षों तक माओ कुछ दिनों या कुछ वर्षों में नहीं पहुंचे। उन्होंने चीन में और पूरी दुनिया में जारी सतत् वर्ग संघर्ष और विचारधारात्मक संघर्ष की एक लम्बी अवधि के दौरान समाजवाद की समस्याओं पर चिन्तन के लेनिन के समय से छूटे हुए सिरे को पकड़ा, सोवियत संघ के प्रयोगों और वहां समाजवाद की पराजय से आवश्यक सबक निकाले तथा अपने देश के ठोस अनुभवों का समाहार करने के बाद महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का सूत्रपात किया।

1949 की क्रान्ति के तुरन्त बाद ही माओ ने यह स्पष्ट सूत्रीकरण प्रस्तुत किया कि सर्वहारा वर्ग द्वारा राज्यसत्ता पर कब्जा कर लेने के बाद सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग का अन्तरविरोध चीनी समाज का प्रधान अन्तरविरोध है और संघर्ष अब भी राज्यसत्ता के सवाल पर ही केन्द्रित है। छठे दशक के मध्य तक माओ समाजवादी निर्माण के सोवियत मॉडल के नकारात्मक पहलुओं का समाहार करते हुए इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि किसानों की कीमत पर कृषि से बड़े पैमाने पर अधिशेष का विनियोजन करके बड़े उद्योगों का निर्माण करने और अत्यधिक केन्द्रीकृत प्रबंध एवं नियोजन तंत्र स्थापित करने का रास्ता समाजवादी अर्थतंत्र के विकास पर प्रतिकूल असर डालेगा। उन्होंने इस दौरान मजदूर-किसान संश्रय पर, बड़े उद्योगों की जगह छोटे उद्योगों एवं कृषि को समाजवादी अर्थतंत्र का मुख्य आधार, और बड़े उद्योगों को नेतृत्वकारी सेक्टर बनाने पर तथा कारखानों के प्रबंधन में पार्टी और मजदूरों की भागीदारी बढ़ाने पर विशेष बल दिया, 'पहले तकनीकी विकास और फिर समाजवादी रूपान्तरण' की समझ को गलत बताया, गांवों और शहरों के बढ़ते अन्तर को समाजवाद के लिए नुकसानदेह बताया और कहा कि यह शारीरिक श्रम को हेय समझने की प्रवृत्ति और

नेतृत्व की नौकरशाहाना अभिजात्यवादी कार्यशैली को जन्म दे रहा है। दो पैरों पर खड़े होकर समाजवाद के रास्ते पर आगे बढ़ने की नीति प्रतिपादित करते हुए उन्होंने बताया कि समाजवादी औद्योगीकरण और कृषि का समाजवादी रूपान्तरण एक-दूसरे से अविभाज्यतः अन्तर्सम्बंधित है और इनमें से किसी एक पर अधिक जोर देना और दूसरे की उपेक्षा करना गलत है। इस तरह माओ ने समाजवादी निर्माण का एक नया मार्ग और नई वैकल्पिक विकास -- रणनीति प्रस्तुत की और ''महान अग्रवर्ती छलांग'' के सामाजिक प्रयोग के दौरान इसे व्यवहार में उतारा। ''दस मुख्य सम्बन्धों के बारे में'' और ''जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में'' जैसी सैद्धान्तिक रचनाओं की नई श्रृंखला के माध्यम से उन्होंने समाजवादी निर्माण की समस्याओं का तीक्ष्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया और सिद्धान्त को रचनात्मक रूप में विकसित किया। कम्यूनों की रचना द्वारा उन्होंने समाजवादी निर्माण का एक नया मार्ग आलोकित किया। कम्यून अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन की अभूतपूर्व उपलब्धि थे जिन्होंने पेरिस कम्यून के अमर नायकों के सपनों को काफी हद तक साकार कर दिखाया। ''महान अग्रवर्ती छलांग'' ने अभूतपूर्व स्तर पर जनता की क्रान्तिकारी ऊर्जा और उत्साह को निर्बन्ध कर दिया। इसकी उपलब्धियों एवं कमियों का सार-संकलन करते हुए माओ इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि समाजवादी निर्माण के दौर में निजी स्वामित्व के समाजवादी रूपान्तरण का काम मुख्यतः पूरा होने के बावजूद समाज में बुर्जुआ अधिकारों की मौजूदगी तथा गांव और शहर के बीच, मजदूर और किसान के बीच तथा शारीरिक और बौद्धिक श्रम के बीच की असमानता समाजवादी समाज में मौजूद वर्ग-अन्तरविरोधों की ही एक अभिव्यक्ति एवं रूप है। वे ठोस रूप में, समाजवाद के अन्तर्गत पिछड़ी उत्पादक शक्तियों और उन्नत उत्पादन-सम्बन्धों के बीच के अन्तरविरोध को ही प्रधान मानने की गलती को भी समझ चुके थे। उन्होंने यह स्पष्ट इंगित किया कि वर्ग संघर्ष समाजवाद की लम्बी अवधि में लगातार जारी रहेगा।

''महान अग्रवर्ती छलांग'' के दौरान ही माओ ने पार्टी और जनता के अन्तर्सम्बन्धों पर और विचारधारात्मक-राजनीतिक संघर्ष में जनता की भूमिका पर ज्यादा से ज्यादा जोर देना शुरू कर दिया था। माओ ने जनता को इतिहास के सच्चे निर्माता के रूप में देखा, और बताया कि जनता की सर्जनात्मकता, पहलकदमी और निर्णय की प्रक्रिया में ज्यादा से ज्यादा भागीदारी के द्वारा ही समाजवाद को आगे ले जाया जा सकता है और यह कि कम्युनिस्ट पार्टी को जनता से सीखना चाहिए। इस तरह माओ ने समाजवादी समाज में जनवादी केन्द्रीयता के स्वरूप को ज्यादा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया और साथ ही यह भी बताया कि समाजवादी वर्ग समाज में कम्युनिस्ट पार्टी भी समेकित और एकरूप नहीं होती। पार्टी में उस समय चल रहे दो लाइनों के संघर्ष से उन्होंने यह नतीजा निकाला कि केवल अन्तर्पार्टी आलोचना-आत्मालोचना और शुद्धीकरण अभियान ही पार्टी की क्रान्तिकारी भूमिका को बनाये रखने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। पार्टी के भीतर के अन्तरविरोध समाज के भीतर के अन्तरविरोधों से गुंथे हुए हैं, उन्हीं की अभिव्यक्ति एवं रूप हैं और पार्टी जनता के साथ एकरूप होकर और उसकी आलोचनाओं से सबक लेकर ही अपना परिष्कार करती रह सकती है।

माओ ने यह शिक्षा दी कि समाजवादी निर्माण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपादान मशीन और तकनीक नहीं बल्कि जनता है। सोवियत संघ में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद ख्रुश्चेव ने जब चीन को दी जाने वाली सभी सोवियत सहायता रद्द करके चीनी पार्टी को ब्लैकमेल करने और विचारधारात्मक संघर्ष में समझौते के लिए बाध्य करने की कोशिश की, तो माओ ने आत्मनिर्भरतापूर्वक, अपनी जनता के ताकत के बूते पर समाजवादी निर्माण की लाइन सफलतापूर्वक लागू करके उसे नाकाम कर दिया। चीन में दो लाइनों के बीच घनीभूत संघर्ष के दौरान जब माओ समाजवादी संक्रमण की आधारभूत समस्याओं से जूझ रहे थे और नये-नये प्रयोगों द्वारा समाजवाद आगे की ओर लम्बे डग भर रहा था, उसी समय सोवियत संघ में ख्रुश्चेव गिरोह ने सत्ता पर कब्जा करके पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में आधुनिक संशोधनवादी विचारों की गंदगी बिखेरनी शुरू कर दी। आधुनिक संशोधनवाद के विरुद्ध प्रचण्ड संघर्ष अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन और सर्वहारा विचारधारा को माओ के महानतम अवदानों में से एक है। उन्होंने ख्रुश्चेव गुट के खतरनाक हमलों के विरुद्ध मार्क्सवाद-लेनिनवाद के क्रान्तिकारी उसूलों की हिफाजत की और आधुनिक संशोधनवादियों के विरुद्ध महाकाव्यात्मक संघर्ष के दौरान दुनिया भर के सच्चे कम्युनिस्टों का नेतृत्व किया जिसकी परिणति ''महान बहस'' के रूप में हुई। माओ ने सर्वहारा अधिनायकत्व पर कीचड़ उछालने के ख्रुश्चेव के प्रयासों को धूल में मिला दिया और उसके ''तीन शान्तिपूर्ण'' के घिनौने संशोधनवादी सिद्धान्त के परखचे उड़ा दिये। उन्होंने स्तालिन पर किये जा रहे हमलों का मुहंतोड़ उत्तर देते हुए उनकी योग्यताओं-उपलब्धियों और साथ ही भूलों-गलतियों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आकलन प्रस्तुत किया। ''शान्तिपूर्ण संक्रमण'' के सिद्धान्त के मार्क्सवाद-विरोधी चरित्र का पर्दाफाश करते हुए माओ ने सर्वहारा अधिनायकत्व की दिशा में निर्देशित सशस्त्र संघर्ष को ही क्रान्ति का एकमात्र रास्ता सिद्ध किया। ''शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व'' और ''शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता'' के ख्रुश्चेवी सिद्धान्तों के रूप में साम्राज्यवाद के सामने आधुनिक संशोधनवादियों के आत्मसमर्पण का पर्दाफाश करते हुए माओ ने नाभिकीय महाविनाश के बारे में ख्रुश्चेव की चीख-पुकार की असलियत को उजागर किया, और यह स्पष्ट किया कि किस तरह यह गद्दार राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को विघटित और विसर्जित कर देना चाहता था। उन्होंने इस सच्चाई पर बल दिया कि साम्राज्यवाद एक कागजी बाघ है। उन्होंने राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को प्रेरणा और नैतिक-भौतिक समर्थन देकर साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष को नया संवेग प्रदान किया। आधुनिक संशोधनवादी फेरी वालों द्वारा बेचे जा रहे ''समूची जनता की पार्टी'' और ''समग्र जनगण के राज्य'' के सिद्धान्तों के प्रतिक्रियावादी चरित्र का भण्डाफोड़ करते हुए माओ ने सर्वहारा के क्रान्तिकारी हिरावल के तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी और सर्वहारा अधिनायकत्व की दृढ़तापूर्वक रक्षा की। सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के भौतिक आधार का विश्लेषण करते हुए माओ ने यह स्पष्ट किया कि किसी प्रकार सोवियत राज्य सर्वहारा के अधिनायकत्व से पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व में परिणत हो गया। उन्होंने चीन के समाजवादी समाज को भी

''जनता के व्यापक जनवाद के बिना सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ नहीं बनाया जा सकता तथा राजनीतिक सत्ता तब भी अस्थिर ही बनी रहेगी। जनवाद के बिना, जन-समुदाय को जागृत किये बिना, प्रतिक्रियावादियों और बुरे तत्वों पर कारगर रूप से अधिनायकत्व लागू करना अथवा उनका कारगर रूप से सुधार करना असम्भव है; वे लोग गड़बड़ी करना जारी रखेंगे, तथा पुनर्स्थापना की संभावना फिर भी बनी रहेगी। इस प्रश्न के बारे में हमें सतर्क रहना चाहिए और इस पर साथियों को ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए।'' -माओ त्से-तुङ

इसी विश्लेषण के आधार पर देखा, चीन में वर्ग संघर्ष के जारी रहने पर बल दिया, पूंजीवादी पुनर्स्थापना के खतरों से आगाह किया और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के लिए जमीन तैयार की।

इस तरह, माओ त्से-तुङ के चिन्तन में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के सिद्धान्त के संघटक अवयवों के उद्‌भव और विकास की प्रक्रिया नई जनवादी क्रान्ति के बाद ही, विशेषकर छठे दशक के मध्य से शुरू हो चुकी थी। 1956 से लेकर "महान बहस" के दौर तक के अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में जारी विचारधारात्मक संघर्ष के अनुभवों, चीन में जारी समाजवादी प्रयोगों और पार्टी के भीतर जारी दो लाइनों के संघर्ष ने माओ के चिन्तन को संशोधनवादी बुर्जुआ तत्वों के विरुद्ध संघर्ष चलाने तथा पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बारे में आवश्यक, ठोस और व्यावहारिक अनुभवों से समृद्ध बनाया। 1957 में दक्षिणपंथी तत्वों के खिलाफ चलाये गये संघर्ष से लेकर 1959 की लूशान मीटिंग में फंग-त-हुवाई के पार्टी-विरोधी गुट के विरुद्ध संघर्ष तक, चीन की पार्टी में जारी दो लाइनों के संघर्ष का केन्द्रबिन्दु यही था कि समाजवादी क्रान्ति को वर्ग-संघर्ष के जरिए आगे बढ़ाया जाये या पूंजीवाद के रास्ते पर बढ़ा जाये। दो लाइनों का यह संघर्ष ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध खुले संघर्ष का बिगुल बज उठने के बाद एकदम मुखर हो गया और 1964 में समाजवादी शिक्षा आंदोलन की शुरूआत तक ज्यादा से ज्यादा उग्र होता चला गया। 1964 में शुरू हुआ महान समाजवादी शिक्षा आंदोलन सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की भूमिका था। माओ ने इस दौरान पहली बार ठोस रूप में बताया कि "वर्तमान आंदोलन में प्रहार के मुख्य लक्ष्य पार्टी के वे सत्ताधारी लोग हैं जो पूंजीवादी रास्ता अपना रहे हैं।" इस तरह पहली बार उन्होंने यह स्पष्ट किया कि समाजवादी समाज में मौजूद बुर्जुआ शक्तियों की नुमाइन्दगी कौन लोग करते हैं और भविष्य में वर्ग संघर्ष का राजनीतिक स्वरूप क्या होगा!

समाजवाद की सभी बुनियादी समस्याओं की समझदारी और उस समय तक के सभी विचारधारात्मक-राजनीतिक संघर्षों के समाहार के आधार पर 1966 में पहली बार उस महान क्रान्ति की रणभेरी से पूरी दुनिया गुंजायमान हो उठी, जिसे हम महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के नाम से जानते हैं। मार्क्स के समय से ही लगातार रेखांकित की गयी समाजवाद की समस्याओं का सम्यक और व्यापक समाधान प्रस्तुत करने वाला यह पहला ऐतिहासिक प्रयास था। यह एक सर्वतोमुखी राजनीतिक क्रान्ति थी। माओ के नेतृत्व में कोटि-कोटि जनसमुदाय जागृत होकर पूंजीवादी पथगामियों के बुर्जुआ हेडक्वार्टरों को ध्वस्त करने के लिए आगे बढ़ चला।

इस महान क्रान्ति के द्वारा माओ ने जनगण की अपरिमित क्रान्तिकारी ऊर्जा, उत्साह और सर्जनात्मकता को निर्बंध कर दिया और उसे समाजवाद के रास्ते पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते रहने के महाकाव्यात्मक प्रयास में नये मार्ग प्रदीप्त करने के लिए निर्देशित किया। उन्होंने संशोधनवादियों के विरुद्ध संघर्ष में जनता को लामबंद किया और ल्यू शाओ-ची के बुर्जुआ हेडक्वार्टरों पर बमबारी के लिए आह्वान किया। उन्होंने समाजवाद की पूरी मंजिल में जारी रहने वाले दीर्घकालिक संघर्ष के बारे में मार्क्स और लेनिन की शिक्षाओं को आत्मसात करके उन्हें आगे विकसित किया और यह स्पष्ट किया कि पार्टी में चलने वाले दो लाइनों का संघर्ष समाज में जारी वर्ग संघर्ष का ही प्रतिबिम्बन और अभिव्यक्ति है। उन्होंने बताया कि समाजवादी मार्ग और पूंजीवादी मार्ग के बीच, समाजवादी संक्रमण के सुदीर्घ ऐतिहासिक युग में काफी लम्बे समय तक संघर्ष जारी रहेगा और तमाम चढ़ावों-उतारों, कई हारों-जीतों के बाद ही समाजवादी मार्ग की अन्तिम विजय सुनिश्चित हो सकेगी। उन्होंने बताया कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का निशाना पार्टी और राज्य के नेतृत्व में मौजूद वे लोग हैं जिन्होंने पूंजीवादी मार्ग चुन लिया है और इस महान क्रान्ति का लक्ष्य संशोधनवाद और पूंजीवाद की जड़ों को तथा उनके लगातार पैदा होते रहने की जमीन को नष्ट करना है। उन्होंने जनता को संशोधनवादियों के विरुद्ध निडर होकर लड़ने के लिए प्रेरित किया, सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान अनुकरणीय भूमिका निभाने वाले लाल गार्डों का उत्साह बढ़ाया और बताया कि "विद्रोह करना न्यायसंगत है।"

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान माओ ने यह चेतावनी दी कि यदि सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ वर्ग पर अपना सर्वतोमुखी अधिनायकत्व पूरी सख्ती के साथ लगातार नहीं लागू करेगा तो बुर्जुआ वर्ग आगे बढ़कर पुनः सत्ता पर कब्जा जमा लेगा। इसलिए सर्वहारा वर्ग को पार्टी के नेतृत्व में आगे बढ़कर समाज की सभी नियंत्रणकारी चोटियों पर कब्जा जमा लेना चाहिए, राजनीतिक सत्ता पर अटल नियंत्रण कायम रखना चाहिए और अर्थतंत्र, शिक्षा, कला-साहित्य-संस्कृति, विज्ञान और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर अपना दृढ़ एवं चौकसीपूर्ण नियंत्रण बनाये रखना चाहिए।

उन्होंने बताया कि समाजवाद के पूरे दौर में सर्वहारा वर्ग की पार्टी को हमेशा क्रान्तिकारी जनदिशा का अनुसरण करना चाहिए, सभी क्षेत्रों में बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश अवाम को नेतृत्व देना चाहिए, समाजवादी जनवाद को व्यापक एवं गहरा बनाना चाहिए, जनता की चेतना का सतत् स्तरोन्नयन करते हुए उसे निर्णय और सत्ता पर नियंत्रण की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भागीदारी में ज्यादा से ज्यादा सक्षम बनाते जाना चाहिए, और इस तरह सर्वहारा अधिनायकत्व को व्यापक आधार देने और सुदृढ़ बनाने का काम लगातार जारी रखना चाहिए। उन्होंने यह शिक्षा दी कि पार्टी को जनसमुदाय के साथ अविकल रूप से जुड़ा होना चाहिए, जनसमुदाय द्वारा आलोचना के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए, जनसंघर्षों की आग में लगातार तप-निखर कर फौलाद बनना चाहिए और जनता को शिक्षा देने से पहले जनता से सीखना चाहिए। उन्होंने आगाह किया कि यदि पार्टी में दो लाइनों के सतत् संघर्ष के द्वारा विजातीय प्रवृत्तियों-रुझानों और गैर-सर्वहारा लाइनों का निर्मूलन नहीं किया जायेगा तो कालान्तर में वह अपना सजीव सर्वहारा चरित्र खो देगी, जड़ता का शिकार हो जायेगी, उसमें पूंजीवादी पथगामी और संशोधनवादी हावी हो जायेंगे और वह एक बुर्जुआ पार्टी में रूपान्तरित हो जायेगी। इसके लिए जरूरी है कि पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता के उसूलों का निरपवाद रूप से पालन किया जाये। जनवादी केन्द्रीयता नौकरशाहाना केन्द्रीयता में न बदल जाये, इसके लिए निर्णय की प्रक्रिया और अन्तर्पार्टी संघर्ष में कतारों की ज्यादा से ज्यादा प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए, उन्हें लगातार शिक्षित किया जाना चाहिए। हर हालत में अन्तर्पार्टी जनवाद को व्यापक और गहरा बनाकर ही केन्द्रीयता को दृढ़ और प्रभावी बनाया जा सकता है। माओ ने बताया कि समाजवादी क्रान्ति के लम्बे रास्ते पर पार्टी के अडिग रूप में कायम रहने की यह एक बुनियादी गारण्टी है कि सर्वहारा क्रान्ति के नये सेनानियों और उत्तराधिकारियों की तैयारी और शिक्षा-दीक्षा के काम को पार्टी लगातार जारी रखे। इस तरह माओ ने पार्टी के सांगठनिक उसूलों को भी उन्नत किया और पूरी दुनिया के कम्युनिस्टों को यह शिक्षा दी कि किस प्रकार वे ऐसी पार्टी का निर्माण करें जो राज्यसत्ता पर सर्वहारा वर्ग के काबिज होने के बाद भी उसे स्थायित्व की गारण्टी प्रदान करे और समाजवादी क्रान्ति को लगातार जारी रखने के जटिलतर और गुरुतर दायित्व का निर्वाह कर सके।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान माओ ने मूलाधार और अधिरचना के द्वंद्वात्मक अन्तर्सम्बन्धों का प्रतिभाशाली विश्लेषण करके

मार्क्सवादी दर्शन को नई समृद्धि प्रदान की और पूंजीवादी पुनर्स्थापना के भौतिक आधार के समूल नाश के लिए अधिरचना के क्षेत्र में सतत् क्रान्ति की अपरिहार्यता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान दर्शन, कला-साहित्य-संस्कृति, सामाजिक मूल्यों-मान्यताओं सहित अधिरचना के सभी दायरों में बुर्जुआ विचारों एवं तत्वों के विरुद्ध लगातार उग्र संघर्ष चलाया गया। माओ ने दुनिया को बदलने में जनता की सचेत और गतिशील भूमिका को एक सर्वथा नये अहसास के साथ रेखांकित किया और बताया कि परिवर्तन की इस प्रक्रिया में भागीदारी के माध्यम से लोग खुद को भी साथ ही बदल लेते हैं। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि सांस्कृतिक क्रान्ति को सर्वोपरि तौर पर मानव को बदलने का दहनपात्र होना चाहिए। उन्होंने पार्टी कार्यकर्ताओं, रेडगार्डों और जनता को ''स्व'' के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए, एक नये मानव की सर्जना करने के लिए और एक नये समाज का निर्माण करने के लिए प्रेरित किया।

सांस्कृतिक क्रान्ति ने अभूतपूर्व पैमाने पर जनता की क्रान्तिकारी ऊर्जा, उत्साह, पहलकदमी और सर्जनात्मकता को निर्बन्ध कर दिया। नये-नये प्रयोग हुए और नई समाजवादी संस्थाएं, सामाजिक सम्बन्ध, मूल्य-मान्यताएं और विचार अस्तित्व में आये। वर्ग संघर्ष, उत्पादन के लिए संघर्ष और वैज्ञानिक प्रयोग -- इन तीन आन्दोलनों ने सर्जनात्मकता के प्रचण्ड प्रस्फोट और उत्साह के ज्वार को जन्म दिया। उत्पादन-सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और एक सदस्यीय कमेटियों के माध्यम से विशेषज्ञों -नौकरशाहों द्वारा प्रबंधन का स्थान मजदूरों की क्रान्तिकारी कमेटियों द्वारा प्रबंधन ने ले लिया। समाजवादी उत्पादक उपक्रमों के सर्वथा नये प्रकार के मॉडल -- उद्योग के क्षेत्र में ता-चिङ और कृषि के क्षेत्र में ताचाई के निर्माण हुए। माओ ने ज्ञान के व्यक्तिगत सम्पत्ति होने के बुर्जुआ दर्शन पर प्रहार करते हुए जनसमुदाय को बताया कि ज्ञान एक सामाजिक सम्पत्ति है और इस पर कुछ लोगों का अधिकार बुर्जुआ वर्ग की सत्ता का एक प्रबल भौतिक आधार है। द्वंद्ववाद और अन्य दार्शनिक विषय जो अबतक जनता के लिए अबूझ माने जाते थे और उसकी पहुंच से बाहर थे, उनका सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान व्यापक प्रसार हुआ और आम मेहनतकश जनता ने इन्हें आत्मसात करके दैनन्दिन व्यवहार में लागू करने की चमत्कारी मिसालें कायम कीं।

पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के भौतिक आधारों का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए और संशोधनवाद के सामाजिक आधारों को उद्घाटित करते हुए माओ ने बताया कि समाजवादी संक्रमण के दौरान लम्बे समय तक साम्राज्यवादी घेरेबंदी और पुराने शोषक वर्गों की मौजूदगी से भी अधिक अहम मुद्दा यह है कि समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धों और समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व-व्यवस्था के निर्णायक रूप से स्थापित होने के बाद भी माल अर्थव्यवस्था बनी रहती है, मूल्य के नियम प्रभावी रहते हैं, बुर्जुआ अधिकार और अन्तरवैयक्तिक असमानताएं मौजूद रहती हैं तथा यह स्थिति समाजवादी समाज में लगातर बुर्जुआ सम्बन्धों को तथा उन पर आधारित बुर्जुआ विचारों और बुर्जुआ मूल्य व्यवस्था को नये-नये रूपों में जन्म देती रहती है। इस तरह उन्होंने इस वैधिक दृष्टिभ्रम का निवारण किया कि उत्पादन के साधनों का स्वामित्व बदल जाने मात्र से समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धों के कायम होने की प्रक्रिया मुकम्मिल हो जाती है। स्वामित्व के वैधिक रूपों में परिवर्तन मात्र ही वर्गों और वर्ग संघर्ष की परिस्थितियों को समाप्त करने के लिए काफी नहीं है। इन परिस्थितियों का ताल्लुक स्वामित्व के वैधिक रूपों से नहीं बल्कि उत्पादन-सम्बन्धों से और विनियोग की सामाजिक प्रक्रिया के रूपों से तथा उन स्थितियों से है जिन्हें उत्पादन के अभिकर्ता के लिए यह प्रक्रिया तैयार करती है। पूंजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों और पूंजीपति और सर्वहारा वर्ग की शत्रुतापूर्ण मौजूदगी के खात्में के लिए केवल सम्पत्ति का राजकीयकरण या सामूहिकीकरण ही पर्याप्त नहीं है। इसके बाद भी पूंजीपति वर्ग विभिन्न रूपों में मौजूद रह सकता है और विशेष तौर पर, राजकीय पूंजीपति वर्ग के रूप में पैदा हो सकता है। सर्वहारा अधिनायकत्व की मुख्य भूमिका मात्र सम्पत्ति के रूपों में परिवर्तन लाने की ही नहीं है, बल्कि इसका मुख्य काम विनियोग की सामाजिक प्रक्रिया का जटिल एवं दीर्घकालिक रूपान्तरण और इसके द्वारा पुराने उत्पादन-सम्बन्धों को नष्ट करके नये उत्पादन सम्बन्ध बनाना तथा इस प्रकार पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली से कम्युनिस्ट उत्पादन प्रणाली में संक्रमण को सुनिश्चित बनाना है। इस तरह, समग्र और स्पष्ट रूप में माओ ने पहली बार यह बताया कि बुर्जुआ अधिकारों को क्रमशः सीमित और नियंत्रित करना, अन्तरवैयक्तिक असमानता, उपभोग में असमानता और भौतिक प्रोत्साहन को क्रमशः समाप्त करना, सम्पत्ति के समाजीकरण को लगातार उन्नत धरातल पर विकसित करना और कला-साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में बुर्जुआ प्रवृत्तियों के विरुद्ध लगातार संघर्ष चलाना -- कुल मिलाकर, सर्वहारा अधिकनायकत्व के अन्तर्गत वर्ग-संघर्ष को अनवरत जारी रखना ही पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने और समाजवाद की ऊर्ध्वमुखी यात्रा को जारी रखने की एकमात्र गारण्टी है। सतत् जारी क्रान्ति की यह प्रक्रिया हर कुछ वर्षों के अन्तराल पर उग्र और खुले संघर्ष का रूप -- खुली प्रचण्ड राजनीतिक क्रान्ति का रूप धारण करती रहेगी। इस तरह माओ ने सर्वहारा अधिनायकत्व की मार्क्सवादी अवधारणा को भी समृद्ध एवं विकसित किया। सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति को जारी रखने का यह सिद्धान्त और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति द्वारा इसका व्यवहार ही माओ का वह महानतम अवदान है जिसने मार्क्सवाद को एक नई मंजिल तक -- मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद की मंजिल तक ऊंचा उठाया। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति कम्युनिस्ट समाज की ओर आरोहण के दौरान अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग द्वारा विजित सर्वोच्च चोटी है। पेरिस कम्यून और अक्टूबर क्रान्ति के बाद यह सर्वहारा क्रान्ति का वह तीसरा प्रकाशस्तम्भ है, जिसकी अनश्वर ज्वाला कभी निष्प्रभ नहीं होगी और समाजवादी संक्रमण की लम्बी, दीर्घकालिक यात्रा में सर्वहारा वर्ग के मार्ग को हरदम आलोकित करती रहेगी।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं कांग्रेस द्वारा सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के प्रथम ज्वार का समाहार प्रस्तुत करने के बाद भी, जैसा कि माओ ने पहले ही बार-बार बताया था, प्रचण्ड एवं जटिल वर्ग संघर्ष लगातार नये-नये रूपों में जारी रहा, तरह-तरह के चढ़ाव-उतार आते रहे, पूंजीवादी पथगामी बार-बार पलटकर और घात

''महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति, सार रूप में, समाजवाद की परिस्थितियों के अंतर्गत, सर्वहारा वर्ग द्वारा पूंजीपति वर्ग तथा अन्य तमाम शोषक वर्गों के खिलाफ चलाई जा रही एक महान राजनीतिक क्रांति है; यह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तथा उसके नेतृत्व में चीन के विशाल क्रांतिकारी जन-समुदाय द्वारा क्वोमिंताङ प्रतिक्रियावादियों के विरूद्ध चलाए जा रहे दीर्घकालीन संघर्ष का ही एक जारी रूप है, सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच के संघर्ष का ही एक जारी रूप है।''

- माओ त्से-तुङ

लगाकर कभी लिन प्याओ, तो कभी देङ-सियाओ पिङ के नेतृत्व में नये-नये हमले बोलते रहे और षड्यंत्रों का सिलसिला लगातार जारी रखा। माओ अपनी अन्तिम सांस तक इस उत्कट संघर्ष में जूझते हुए सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व करते रहे उन्होंने इस दौरान बार-बार जोर देकर कहा कि पूंजीवाद के राही अभी भी पूंजीवादी राह पर ही हैं और अभी भी यह तय नहीं हुआ है कि इस संघर्ष में विजय किसकी होगी। बार-बार उन्होंने बताया कि बुर्जुआ सम्बन्धों के नाश और पूंजीवादी पुनर्स्थापना के खतरों के निर्मूलन के लिए एक या दो नहीं बल्कि कई पीढ़ियों की और एक या दो नहीं बल्कि कई सांस्कृतिक क्रान्तियों की आवश्यकता होगी। उन्होंने यह निर्दिष्ट किया कि यदि चीन में संशोधनवादी फिर से सत्ता में आ जाते हैं तो यह दुनिया भर के कम्युनिस्टों और अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा का कर्तव्य होगा कि वे उनके विरुद्ध अविलम्ब समझौताहीन एवं दृढ़निश्चयी संघर्ष छेड़ दें, उन्हें बेनकाब करें और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं को लेकर आगे बढ़ें।

समाजवादी प्रयोगों के समाहार-विषयक दृष्टिकोण तथा माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की कुछ गलतियों के बारे में

माओ के निधन के बाद अनुकूल राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय वर्ग-शक्ति-संतुलन का लाभ उठाकर चीन में संशोधनवादियों ने राज्य और पार्टी का नेतृत्व हथिया लिया। उन्होंने मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद की हिफाजत करने वालों पर बर्बर जुल्म किये, पार्टी से सभी क्रान्तिकारियों को बाहर निकालकर उसे एक बुर्जुआ पार्टी में तब्दील कर दिया और क्रान्ति की हर आवाज को दबाने के लिए राज्यसत्ता का बेरहम इस्तेमाल किया। माओ के योग्य और अडिग उत्तराधिकारी नेता कामरेड चियाङ-चिङ और कामरेड चाङ चुन-चियाओ इन सामाजिक फासिस्टों की जेल के सीखचों के पीछे ही शहीद हो गये, पर अन्त तक क्रान्ति की आवाज को बुलन्द करते रहे। आज विपर्यय की प्रतिकूलतम परिस्थितियों में भी इन आवाजों की प्रतिध्वनियां दुनिया के विभिन्न कोनों में गूंज रही हैं। क्रान्तियां कभी मरती नहीं। क्रान्ति की विचारधारा का कभी अन्त नहीं होता। सभी संशोधनवादी और प्रतिक्रियावादी इतिहास के अपराधी हैं। इतिहास इन्हें मृत्यु की सजा सुनायेगा और फिर सर्वहारा वर्ग ही उस सजा की तामील करेगा। आज पूरे साम्राज्यवादी विश्व का असाध्य संकट, रूस, चीन, और पूर्वी यूरोप के देशों की विस्फोटक स्थिति, साम्राज्यवादी-पूंजीवादी शासकों की बौखलाहट, चीख-पुकार, कलह-विग्रह और "अन्त के दर्शन" का रुदन इसी का संकेत दे रहा है। आज पूरी दुनिया में, अभूतपूर्व संकट के ऐतिहासिक समय में जीते हुए भी सर्वहारा क्रान्तिकारियों द्वारा फिर से एकजुट होने की प्रक्रिया सर्वहारा क्रान्तियों के नये संस्करण की सर्जना की तैयारी का ही द्योतक है। पेरू के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का अदम्य संघर्ष, भूतपूर्व समाजवादी देशों में सड़कों पर उमड़ता मेहनतकशों का सैलाब और तीसरी दुनिया के देशों में सुलग रहे जन-असंतोष के ज्वालामुखी के विस्फोट के पहले की गड़गड़ाहट इसी सुनिश्चित भविष्य की ओर संकेत दे रहे हैं।

पूंजीवादी पुनर्स्थापनाओं, प्रतिक्रान्तियों और विपर्यय के वर्तमान दौर को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अवस्थित करके तथा अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग और समाजवाद की सामयिक पराजय के लिए जिम्मेदार वस्तुगत और मनोगत उपादानों का ज्यादा से ज्यादा सही- संतुलित आकलन करके ही आज हम विचाराधारात्मक-राजनीतिक मोर्चे की चुनौतियों को वस्तुपरक ढंग से समझ सकते हैं और अपने कार्यभारों का सही ढंग से निर्धारण कर सकते हैं।

मार्क्स-एंगेल्स, लेनिन और माओ ने बार-बार इस ऐतिहासिक सच्चाई को रेखांकित किया था कि पूंजीवाद से कम्युनिज्म तक संक्रमण का दौर काफी लम्बा होगा और तीखे वर्ग संघर्षों तथा तमाम चढ़ावों-उतारों से भरा होगा। लेनिन और माओ ने समाजवाद की प्रकृति एवं समस्याओं का ठोस निरूपण करते हुए इस दौरान लम्बे समय तक मौजूद रहने वाले पूंजीवादी पुनर्स्थापना के खतरों के बारे में बार-बार आगाह किया था। माओ ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान समाजवाद की पूरी ऐतिहासिक अवधि में सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच लगातार जारी रहने वाले वर्ग संघर्ष की प्रकृति और स्वरूप को स्पष्ट करते हुए बताया था कि यह सतत् जारी वर्ग-युद्ध बीच-बीच में उग्र होकर एक खुली राजनीतिक जनक्रान्ति का रूप लेता रहेगा, कई चढ़ावों-उतारों और मोड़ों-घुमावों से होकर विविध जटिल एवं संश्लिष्ट रूप अपनाते हुए आगे बढ़ेगा, इसमें कई बार सर्वहारा वर्ग को कठिन पराजयों और विपर्यय की प्रतिकूलतम परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा और उसकी अन्तिम जीत एक लम्बे समय के बाद ही निर्णायक रूप में सुनिश्चित हो सकेगी। माओ और सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के उनके सहयोद्धा प्रायः इस बात को चिन्हित करते रहते थे कि जब पूंजीवाद की निर्णायक विजय को सुनिश्चित बनाने में उदीयमान पूंजीपति वर्ग को कई शताब्दियों का समय लग गया और इस दौरान उसे कई पराजयों और विपर्ययों का सामना करना पड़ा तो इस बात से मायूस होने की भला क्या जरूरत है यदि सर्वहारा क्रान्ति एक के बाद एक जीतें हासिल करते हुए एक सीधी रेखा में आगे बढ़ने के बजाय पराजयों और विपर्ययों के दौर से भी गुजरती हुई टेढ़े-मेढ़े जटिल और वक्रातिवक्र रास्तों से होकर आगे बढ़ती हैं। सर्वहारा क्रान्ति अबतक के मानव इतिहास की जटिलतम, संश्लिष्टतम और कठिनतम क्रान्ति है, क्योंकि इसका लक्ष्य एक शोषक वर्ग की जगह दूसरे शोषक वर्ग की राजनीतिक सत्ता स्थापित करना नहीं, बल्कि पूरे वर्ग समाज से ही निर्णायक विच्छेद करके अन्ततोगत्वा वर्गीय शोषण, सभी वर्गीय सम्बन्धों और वर्ग के अस्तित्व का ही खात्मा करना है। विश्व इतिहास की गति की इस अन्तर्निहित विशिष्टता की सुसंगत समझदारी सर्वहारा क्रान्तिकारियों के लिए जरूरी है, पर यहीं तक रुक जाना ही पर्याप्त नहीं है। यह उन्हें पूंजीवादी पुनर्स्थापना और विपर्यय के बारे में नियतत्ववादी निष्कर्षों तक पहुंचा सकता है। इतिहास के रंगमंच की वस्तुगत सीमाओं के साथ ही क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन के अभिकर्ताओं की मनोगत सीमाओं और भूलों-गलतियों को भी समझने के बाद ही भविष्य के लिए अपने कार्यभार हम सही ढंग से निर्धारित कर सकते हैं, अतीत की गलतियों से बच सकते हैं और विचारधारा की सही हिफाजत कर सकते हैं।

समाजवादी संक्रमण के विगत पूरे दौर में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के एक आधार के रूप में ऐसी वस्तुगत सीमाएं लगातार मौजूद रहीं जो सर्वहारा वर्ग, उसकी पार्टी और नेतृत्व की इच्छा से स्वतंत्र थीं। और आगे भी लम्बे समय तक यह स्थिति बनी रहेगी। लेकिन इस पहलू की भी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि समाजवादी संक्रमण काल के क्रान्तिकारी सामाजिक प्रयोगों के दौरान सर्वहारा नेतृत्व की मनोगत सीमाओं और भूलों-गलतियों की भी पूंजीवादी पुनर्स्थापना में एक अहम भूमिका थी। इन मनोगत उपादानों

को समझने और इनके समाहार की चेष्टाओं की उपेक्षा मार्क्सवादी विज्ञान की हिफाजत का एक कठमुल्ला दृष्टिकोण होगा जो सर्वहारा विचारधारा और क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास को सिर्फ हानि ही पहुंचायेगा। सर्वहारा क्रान्तियों के महान सामाजिक प्रयोगों के दौरान महान सर्वहारा नेताओं से भी गलतियां होनी स्वाभाविक थीं। कोई भी अचूक या दोषातीत नहीं होता। ये गलतियां एक वैज्ञानिक और एक क्रान्तिकारी की गलतियां थीं। और यह भी वैज्ञानिक और क्रान्तिकारी होने की अनिवार्य बुनियादी शर्त है कि ऐसी गलतियों का समाहार किया जाये। समाजवाद की पराजय के वस्तुगत और मनोगत कारण द्वंद्वात्मक रूप से अन्तर्सम्बन्धित हैं और ये दोनों ही उपादान लगातार एक दूसरे को क्रिया-प्रतिक्रिया-अन्तर्क्रिया के जरिए प्रभावित करते रहते हैं। इन दोनों उपादानों और इनके अन्तर्सम्बन्धों की संतुलित समझ के अभाव में समाजवाद की समस्याओं के प्रति न तो वैज्ञानिक यथार्थपरक दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है, न अतीत की भूलों-गलतियों की स्पष्ट पहचान, सही समाहार और प्रयोगों के दौरान उनका निराकरण ही किया जा सकता है।

सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण की वस्तुगत सीमाओं-समस्याओं की पृष्ठभूमि में स्तालिन की गलतियों की चर्चा हमने इसी दृष्टिकोण से की है। स्तालिन के विरुद्ध बुर्जुआओं के कुत्साप्रचार से पैदा हुई भ्रांत धारणाओं और विभ्रमों को दूर करने के लिए तथा स्तालिन के बहाने सर्वहारा विचारधारा पर किये जाने वाले आक्रमणों का उत्तर देने के लिए ही नहीं, बल्कि विचारधारा की सांगोपांग समझदारी के लिए भी यह जरूरी है। स्तालिन की भूलों-गलतियों ने किस प्रकार, वस्तुगत तौर पर, समाज में बुर्जुआ सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों और नये बुर्जुआ तत्वों को अपना आधार विस्तारित करने में मदद पहुंचाई, सामाजिक संघटन में हो रहे इन परिवर्तनों ने किस प्रकार पार्टी के भीतर संशोधनवादी विचारधारा, लाइन एवं पूंजीवादी पथगामियों की स्थिति को क्रमशः मजबूत और उनके आधार को क्रमशः व्यापक बनाया, तथा इन पूंजीवादी पथगामियों ने नेतृत्व की हर गलती का लाभ उठाकर किस तरह पूंजीवादी पुनर्स्थापना का पूर्वाधार और परिस्थितियां तैयार कीं -- इन सभी बातों को आज सांगोपांग रूप में माओ के समाहार और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं के आलोक में ही समझा जा सकता है। केवल तभी यह ठोस रूप में समझा जा सकता है कि किस तरह स्तालिन की मनोगत सीमाओं, असफलताओं और भूलों ने वस्तुगत स्थितियों के साथ निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया के जरिए एक ऐसी स्थिति को मजबूत बनाने में मदद पहुंचाई, जिसके चलते धीरे-धीरे समाज में तथा पार्टी और राज्य में बुर्जुआ तत्वों की स्थिति क्रमशः मजबूत होती गई -- और कालान्तर में, ख्रुश्चेव के रूप में उनका एक ऐसा प्रतिनिधि सामने आया जिसने अनुकूल स्थिति का लाभ उठाकर षड्यंत्र और प्रतिक्रियावादी तख्तापलट के बाद सर्वतोमुखी पूंजीवादी पुनर्स्थापना की शुरुआत कर दी।

स्तालिन और सोवियत संघ की पार्टी की गलतियों का सम्यक विश्लेषण और समाहार माओ त्से-तुङ ने किया और उससे प्राप्त शिक्षाओं के आधार पर समाजवादी प्रयोगों को उन्नत धरातल पर आगे बढ़ाया। पुनः उन प्रयोगों की शिक्षाओं से दुनिया भर के कम्युनिस्टों को स्तालिन कालीन गलतियों को और ठोस रूप में समझने में मदद मिली। जहां तक माओ त्से-तुङ और चीन की पार्टी की भूलों-गलतियों के सांगोपांग समाहार का प्रश्न है, आज एक परिपक्व एवं मान्य अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व का अभाव इस काम को कठिन बना देता है। वास्तव में इनका सांगोपांग विश्लेषण और मूल्यांकन तभी हो सकेगा जब कम से कम उसी स्तर का सामाजिक प्रयोग किसी देश में हो रहा हो या हो चुका हो। केवल तभी माओ के मार्गदर्शन और नेतृत्व में हुए महान समाजवादी प्रयोगों की त्रुटियों-कमियों से सबक लेकर नये सिद्धान्त विकसित किये जा सकते हैं और सामाजिक प्रयोगों द्वारा उन्हें स्थापित किया जा सकता है। लेकिन इनमें से कुछ भूलें और गलतियां ऐसी भी हैं, जिनका समाहार समय-समय पर माओ ने खुद ही प्रस्तुत किया था। साथ ही कुछ गलतियां और विच्युतियां ऐसी भी हैं, जिन्हें आज महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के प्रयोग की शिक्षाओं तथा उस समय तक के वर्ग संघर्षों और विचारधारा की विकास यात्रा की रोशनी में समझा जा सकता है। आज सर्वहारा क्रान्तियों के नये संस्करण की तैयारी करते हुए सर्वोपरि तौर पर अपनी विचारधारात्मक तैयारी और मजबूती के लिए माओ और चीन की पार्टी की कुछ ऐसी भूलों-गलतियों का विश्लेषण प्रस्तुत करना जरूरी है जिन्होंने वस्तुगत तौर पर वर्ग-शक्ति सन्तुलन के पलड़े को बुर्जुआ वर्ग के पक्ष में झुका देने में और विपर्यय की धारा को बल प्रदान करने में किसी न किसी हद तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रश्न पर अपनी अवस्थिति स्पष्ट कर देना हम जरूरी समझते हैं। आज विचारधारा के मोर्चे पर कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का एक जरूरी काम है कि ''मुक्त चिन्तन'' के गैरजिम्मेदाराना रुख से बचते हुए वे अतीत के प्रयोगों के विश्लेषण-समाहार की एक प्रक्रिया शुरू करें और नये प्रयोगों के लिए खुद को अभी से तैयार करें।

माओ त्से-तुङ ने महान बहस के दौरान दुनिया भर के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का नेतृत्व किया और मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी उसूलों की हिफाजत की, लेकिन आधुनिक संशोधनवादी ख्रुश्चेव गुट के विरुद्ध लामबंदी के खुले आह्वान और खुले संघर्ष की शुरुआत में सात वर्षों से भी कुछ अधिक समय के विलम्ब की अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन को भारी कीमत चुकानी पड़ी। लम्बे समय तक माओ त्से-तुङ और चीन की पार्टी ने यह प्रयास जारी रखा कि अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन की एकता बनी रहे। इसके लिए न केवल ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध उन्होंने खुला विचारधारात्मक संघर्ष शुरू करने में देर की, बल्कि कुछ समय तक उसके साथ समझौते भी किये। नवम्बर, 1957 और नवम्बर, 1960 की मास्को बैठकों के बाद जारी घोषणा और वक्तव्य कुल मिलाकर समझौता के दस्तावेज थे। इन दस्तावेजों में सर्वहारा लाइन और संशोधनवादी लाइन -- दोनों ही मौजूद थीं, पर इतिहास में, सिद्धान्तों में किये जाने वाले ऐसे हर समझौते का लाभ प्रतिक्रियावादियों ने ही उठाया है। इस बार भी ऐसा ही हुआ। यदि सही, क्रान्तिकारी लाइन ही समझौते की अवस्थिति में खड़ी हो, तो उसके इर्दगिर्द क्रान्तिकारी शक्तियों को सही ढंग से लामबंद नहीं किया जा सकता। सही और गलत के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचने के बाद ही अनिर्णय और ढुलमुलपन की स्थिति में खड़ी विचारधारात्मक रूप से कमजोर पार्टियों को सही लाइन के साथ खड़ा किया जा सकता था। ख्रुश्चेव गुट द्वारा वर्ग संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व के स्पष्ट परित्याग, साजिश, कुत्साप्रचार और तोड़-फोड़ तथा उसकी संशोधनवादी लाइन के एकदम नंगे रूप में सामने आ जाने के बावजूद चीन की पार्टी द्वारा समझौते करना, विवाद को खुला न करना और संशोधनवाद के विरुद्ध खुली बगावत के लिए आह्वान करके दुनिया भर के मार्क्सवादी-लेनिनवादियों को लामबंद करने में सात वर्षों से भी अधिक समय तक इंतजार करना एक गम्भीर गलती थी, जिसने पूरी दुनिया में, सोवियत संघ में और चीन में भी संशोधनवादियों और पूंजीवादी पथगामियों को, वस्तुगत तौर पर, मदद पहुंचाई। यदि ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध तत्काल खुले और समझौताहीन संघर्ष की शुरुआत हो जाती तो अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में ध्रुवीकरण भी तुरन्त प्रारम्भ हो जाता और परिस्थितियां कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों तथा अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा के अधिक अनुकूल होतीं।

चीन की पार्टी की इस गम्भीर भूल ने न केवल विश्व स्तर पर, बल्कि चीन के भीतर भी पूंजीवादी पथगामियों को बल प्रदान किया। ठीक उसी समय चीनी पार्टी के भीतर भी दो लाइनों का संघर्ष जारी था और 1956 की आठवीं कांग्रेस में तो संशोधनवादी लाइन ही हावी थी। ल्यू शाओची के नेतृत्व वाले पूंजीवादी पथगामी गुट को ख्रुश्चेवी संशोधनवाद से हर स्तर पर मदद मिलती रही। विश्व स्तर पर संशोधनवाद के साथ समझौते के लम्बे दौर ने चीन की पार्टी की कतारों में भी विभ्रम पैदा किया, उनके बीच संशोधनवाद के फलने-फूलने में मदद पहुंचाई तथा सर्वहारा और संशोधनवादी लाइनों के बीच की विभाजक रेखा को धुंधला कर दिया, जिसका भरपूर लाभ ल्यू शाओ ची - देङ सियाओ-पिङ गुट ने उठाया।

विचारधारात्मक संघर्षो में मार्क्स और लेनिन द्वारा अपनाई गई पहुंच और पद्धति इससे भिन्न थी। मार्क्स ने अपने समय में, मजदूर आन्दोलन में पैदा होने वाली विजातीय प्रवृत्तियों-रुझानों के विरुद्ध खुला, समझौताहीन और उग्र संघर्ष छेड़ने में कभी रत्ती भर की भी देर नहीं की। उन्होंने पूंजीवादियों पथगामियों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने में रत्ती भर भी देर नहीं करनी चाहिए और यह संघर्ष समझौताहीन होना चाहिए। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की भी यही शिक्षा है।

छठे दशक के उत्तरार्द्ध में माओ त्से-तुङ की एक और महत्वपूर्ण नीतिगत गलती ने वर्ग शक्तियों के सन्तुलन को बुर्जुआ वर्गों और पार्टी एवं राज्य में मौजूद पूंजीवादी पथगामियों के पक्ष में करने में एक हद तक की भूमिका निभाई। 1957 में "जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में" नामक अपने जिस क्लासिकीय प्रतिपादन में माओ ने समाजवादी समाज की वर्गीय संरचना और संक्रमण काल की समस्याओं का तीक्ष्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया, उसी में समाजवाद के वर्ग-संश्रय के बारे में यह गलत प्रस्थापना भी थी कि चीन में समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में भी राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग का अन्तरविरोध जनता के बीच के अन्तरविरोधों की श्रेणी में आता है और इसका समाधान शान्तिपूर्ण तरीकों से किया जा सकता है। उन्होंने यह विचार रखा कि. हमारी नीति राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के प्रति एकता कायम करने, आलोचना करने और शिक्षित करने की होनी चाहिए। मार्क्स से लेकर स्वयं माओ तक की शिक्षा यही रही है कि समाजवाद का मुख्य अन्तरविरोध पूंजी और श्रम के बीच होता है। इस शत्रुतापूर्ण अन्तरविरोध का शान्तिपूर्ण समाधान एक मनोगत चाहत हो सकती है, लेकिन समाज - विकास के वस्तुगत नियम इसे असम्भव बताते हैं। पूंजीपति वर्ग का कोई हिस्सा समाजवादी संक्रमण के दौर में मेहनतकश वर्गों का रणनीतिक संश्रयकारी और जनता का एक हिस्सा कतई नहीं हो सकता क्योंकि कोई भी शोषक वर्ग स्वेच्छा से अपने अस्तित्व का खात्मा स्वीकार नहीं कर सकता। उल्लेखनीय है कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के संयुक्त मोर्चा कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत एक दस्तावेज के मसविदे पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए स्वयं माओ ने ही लिखा था, "जमींदार वर्ग और नौकरशाह पूंजीपति वर्ग की सत्ता उखाड़ फेंकने के बाद, मजदूर वर्ग और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का अन्तरविरोध अब चीन का मुख्य अन्तरविरोध हो गया है, इसलिए अब राष्ट्रीय पूंजीपति को मध्यवर्ती वर्ग के रूप में परिभाषित नहीं किया जाना चाहिए। "1957 के पहले उन्होंने एकाधिक बार कहा था कि समाजवादी संक्रमण के दौरान जनता को समूचे पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध समझौताविहीन संघर्ष चलाना होगा। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के ठीक पहले के दौर से लेकर उसके जारी रहने की पूरी अवधि में भी माओ ने इस स्थापना को बार-बार और ठोस रूप में निरुपित किया था। इस तरह, स्वयं माओ की ही पहले और बाद की स्थापनाओं के विपरीत 1957 का सूत्रीकरण समाजवादी क्रान्ति के वर्ग-संश्रय की गलत समझदारी और पूंजीपति वर्ग के प्रति समझौते का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इसने समाजवादी संक्रमण में जारी वर्ग संघर्ष के दौरान कम्युनिस्ट कतारों और सर्वहारा वर्ग में एक तरह की आत्मतुष्टि और ढीलापन पैदा किया और शत्रु के प्रति सर्वहारा अधिनायकत्व की निर्ममता तथा पार्टी की कतारों एवं सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी सतर्कता को कमजोर बनाया। यह वह दौर था जब न केवल विश्व स्तर पर ख्रुश्चेवी संशोधनवाद अपनी जड़ें जमाकर आक्रामक मुद्रा अख्तियार कर रहा था, बल्कि चीन में भी संशोधनवादी लाइन पार्टी पर प्रभुत्व के लिए जी-तोड़ कोशिश कर रही थी। ऐसे में, राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के प्रति एकता कायम करने, उन्हें समझाने-बुझाने और शिक्षित करने की नीति ने पूंजीवादी पथगामियों को यह अवसर दिया कि वे समाजवादी संक्रमण की नीतियों का विरोध करने के लिए और बुर्जुआ तत्वों की हिफाजत करने के लिए इस गलत नीति का इस्तेमाल करें। और उन्होंने ऐसा ही किया जिससे बुर्जुआ वर्ग को अपनी आधार विस्तारित करने और मजबूत करनें में मदद मिली।

एक महान और उत्कट सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावादी होते हुए भी, सातवें दशक के अंत और आठवें दशक के प्रारम्भ में, माओ के निर्देशन में प्रतिपादित चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की अन्तरराष्ट्रीय नीतियों में एक हद तक विश्व क्रान्ति के कार्यभारों और समस्याओं के निरुपण के सम्बन्ध में, अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा के हितों को चीनी क्रान्ति के हितों के मातहत रखने की गलत रुझान दिखाई देती है। यह सही है कि उस दौर में सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद का आक्रामक सामाजिक फासीवादी और विस्तारवादी रुख पूरी दुनिया की जनता के लिए एक प्रत्यक्ष खतरा था और चीन पर उसके आक्रमण की आसन्न सम्भावना एक वास्तविकता थी। पर इससे निपटने के लिए चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व ने सोवियत विरोधी अन्तरराष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे की जो नीति प्रतिपादित की, उसमें कई विच्युतियां मौजूद थीं। सोवियत सामाजिक साम्राज्यवादी आक्रमण के खतरे का मुकाबला करने के लिए उस समय के घनीभूत अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतियोगिता और विशेषकर दो अतिमहाशक्तियों की प्रतिस्पर्द्धा का लाभ उठाना सर्वथा उचित एवं आवश्यक था। पर इस प्रक्रिया में एक समाजवादी देश के रणकौशल और कूटनीति को विश्व सर्वहारा आन्दोलन की आम नीति का समानार्थक बनाना गलत था। सोवियत खतरे के विरुद्ध पश्चिम के शासक वर्गों के साथ समाजवादी चीन के रणकौशलगत मोर्चे की नीति व्यवहार में यहां तक विस्तारित हो गई कि हेल सिलासी और ईरान के शाह जैसे कई घनघोर प्रतिक्रियावादी और अमेरिकी कठपुतलों को विशेष अतिथि के रूप में चीन बुलाया गया और स्वयं माओ ने भी जो राज्य के किसी ओहदे पर नहीं, बल्कि पार्टी के चेयरमैन थे, उनसे मुलाकात की। चीले के अलेन्दे सरकार में सोवियत संशोधनवादियों की घुसपैठ होने के आधार पर, उसके पतन के बाद स्थापित पिनोशे की हत्यारी फासिस्ट सत्ता को मान्यता देना, श्रीलंका के जनउभार का दमन करने में वहां की सरकार की सहायता देना आदि कुछ ऐसी घटनाएं थीं, जो इसी गलत नीति का परिणाम थीं। यह सही है कि उस समय तीसरी दुनिया के बहुत सारे देशों में जारी राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों में सोवियत साम्राज्यवादियों की प्रभावी घुसपैठ एक वास्तविकता थी, पर इस वस्तुस्थिति को एकांगी ढंग से और बढ़ा-चढ़ाकर देखने और इन देशों के अन्दर के प्रधान अन्तरविरोध को पूरी तरह विश्व पैमाने के प्रधान अन्तरविरोध के मातहत कर देने के कारण चीन की सर्वहारा सत्ता ने इन मुक्ति-युद्धों के प्रति जो नीति अपनाई, वह एक हद तक खुद चीन की पार्टी द्वारा ही "लोक युद्ध की विजय अमर हो" नामक रचना में

प्रतिपादित लाइन के प्रतिकूल थी। सोवियत साम्राज्यवाद की आक्रामकता को विश्व स्तर पर वास्तविकता से अधिक बढ़ा-चढ़ाकर आंकने के चलते चीन की पार्टी ने पश्चिमी और विशेषकर अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रति कुछ अतिरिक्त नरमी बरतने की भूल की और पूरी दुनिया की जनता को अपने संघर्षों की मुख्य धार सोवियत साम्राज्यवादियों के विरुद्ध केन्द्रित करने की राय दी जिसका तीसरी दुनिया के देशों में जारी मुक्ति संघर्षों पर और समग्रता में, पूरी दुनिया में जारी वर्ग संघर्ष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यह सही है कि उस विशेष दौर में, कुछ समय के लिए आक्रामक सोवियत साम्राज्यवाद चीन और तीसरी दुनिया के देशों के लिए बड़ा खतरा बन गया था और पश्चिम के देशों पर भी उसके आक्रमण का खतरा पैदा हो गया था, लेकिन चीन की पार्टी द्वारा "युद्ध का मुख्य स्रोत" सोवियत साम्राज्यवाद को बताना गलत था। युद्ध का मुख्य स्रोत उस समय भी एक अधिक आक्रामक साम्राज्यवादी देश नहीं बल्कि अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतियोगिता ही थी। सोवियत संघ को युद्ध का मुख्य स्रोत मानने के आकलन ने न केवल पश्चिमी साम्राज्यवाद के साथ रणकौशलगत एकता की नीति को एक हद तक रणनीतिक संश्रय की परिधि तक विस्तारित कर दिया, बल्कि इसी आकलन के चलते चीन की पार्टी ने तीसरे विश्वयुद्ध के आसन्न और काफी हद तक सुनिश्चित होने का मूल्यांकन प्रस्तुत किया। मुख्यतः अपने इसी आकलन के आधार पर उसने यह सूत्रीकरण प्रस्तुत किया कि वर्तमान युग "साम्राज्यवाद के पूर्ण निपात और सर्वहारा क्रान्तियों का युग" है। विश्व परिस्थितियों के उत्तरवर्ती विकास ने इस प्रस्थापना को गलत सिद्ध किया है। साम्राज्यवाद की कुछ महत्वपूर्ण पराजयों और गम्भीर अन्तकारी संकट के नये दौर की शुरुआत के बावजूद हम आज भी साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्तियों के युग में ही जी रहे हैं, जैसा कि लेनिन ने इसे निरूपित किया था।

सातवें दशक के अंत और आठवें दशक के प्रारम्भ की विश्व परिस्थितियों के उपरोक्त गलत मूल्यांकन के पीछे शायद एक कारण यह भी था कि माओ ने उन्हें चीन के क्रान्तिकारी अनुभवों के प्रिज्म से देखा। ऐसा करते हुए उन्होंने तत्कालीन विश्व-परिस्थितियों का सादृश्य-निरुपण चौथे दशक में चीन में जापानी साम्राज्यवाद-विरोधी युद्ध के दौर से किया जब चीन की पार्टी ने जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध चीनी जनता के सभी वर्गों के संयुक्त मोर्चे का सफल निर्माण और नेतृत्व किया था। पर सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद दुनिया की मेहनतकश जनता और उत्पीड़ित राष्ट्रों का एकमात्र शत्रु नहीं था। अमेरिकी और पश्चिमी साम्राज्यवादी और उनके कठमुल्ले प्रतिक्रियावादी भी उनके उतने ही बड़े शत्रु थे।

चीन की सोवियत-विरोधी अन्तरराष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे की इस लाइन ने पूरी दुनिया के क्रान्तिकारियों को एक हद तक दिग्भ्रमित किया जो चीन को एक क्रान्तिकारी आधार इलाके और क्रान्ति के अन्तरराष्ट्रीय केन्द्र के रूप में देखते थे। इसने विभिन्न देशों के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के कार्यक्रमों को भी गलत रूप में प्रभावित किया। साथ ही, वस्तुगत तौर पर, इसने चीन के भीतर भी माओ के नेतृत्व में संघर्षरत क्रान्तिकारी शक्तियों को कमजोर बनाया और पहलकदमी अपने हाथ में बनाये रखने के उनके प्रयासों के रास्ते में कठिनाइयां पैदा कीं। इसके विपरीत, इसने उन संशोधनवादियों की स्थिति को मजबूत बनाया जो चीन में पूंजीवाद स्थापित करना चाह रहे थे और विशेषकर पश्चिमी साम्राज्यवाद के सामने घुटने टेक देने को तैयार बैठे थे। उल्लेखनीय है कि चीन में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद पश्चिमी साम्राज्यवाद के लिए दरवाज़ा खोलते समय देङ-हुआ गिरोह ने विश्व परिस्थितियों के उपरोक्त गलत आकलन को आगे विस्तारित करके निहायत शातिराने ढंग से माओ के नाम पर तथाकथित "तीन दुनिया के विभेदीकरण" के प्रतिक्रान्तिकारी सिद्धान्त का प्रचार किया और दुनिया भर के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को गुमराह करने की कुटिल चाल चली।

साथ ही इस तथ्य को रेखांकित करना जरूरी है कि अत्यन्त कठिन, संकटपूर्ण और जटिल परिस्थितियों में विश्व -परिस्थितियों के आकलन में हुई इस भूल के बावजूद माओ ने लिन प्याओ या देङ गुट द्वारा इसका लाभ उठाकर क्रान्ति के रास्ते को त्यागने की हर कोशिश को नाकाम बनाया, क्रान्ति की लाइन पर अपनी अचूक पकड़ बनाये रखी, पहलकदमी को साम्राज्यवादियों के हाथों में कभी नहीं जाने दिया और अंत तक अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन की समस्याओं-कार्यभारों को नजरों से कभी भी ओझल नहीं होने दिया।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की आम दिशा पूरी तरह सही थी और समाजवाद के पूरे ऐतिहासिक काल में उसकी शिक्षाएं सर्वहारा वर्ग का मार्गदर्शक बनी रहेंगी। सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत सतत् क्रान्ति ही समाजवादी संक्रमण का एकमात्र सम्भव रास्ता और बुनियादी गारण्टी है, यह चीन में पूंजीवादी पुनर्स्थापना और उसके बाद की घटनाओं ने भी सिद्ध कर दिया है। लेकिन कोई क्रान्ति जितनी ही महान और युगांतरकारी होती है, वह उतनी ही जटिल, संश्लिष्ट और कठिन भी होती है और उसमें, स्वाभाविक तौर पर कुछ गलतियां होती ही हैं। कोई भी महान सामाजिक प्रयोग शुद्ध, निर्दोष और गलतियों से पूर्णतः मुक्त नहीं होता। चीन में हुई सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति अपने ढंग का पहला प्रयोग था और इस दौरान भी कुछ गलतियां हुईं जिन्होंने इसके लक्ष्य को प्रभावित किया। इन गलतियों का सांगोपांग समाहार कोई परिपक्व और अनुभवी पार्टी ही कर सकती है और मुख्यतः तभी कर सकती है, जब वह उसी स्तर के सामाजिक प्रयोग के धरातल पर खड़ी हो या उसमें संलग्न हो। फिर भी, एक हद तक सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं के ही आलोक में और परिस्थितियों के उत्तरवर्ती विकास को देखते हुए हम आज उसकी कुछ गलतियों को समझने की चेष्टा कर सकते हैं। हम यहां सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की एक महत्वपूर्ण गलती पर अपनी राय रखना चाहते हैं, जिसका भरपूर लाभ बाद में पूंजीवादी पथगामियों ने उठाया।

लेनिन ने जिस तरह पेरिस कम्यून के दौरान स्थापित कम्यूनों के मॉडल से सोवियतों का ऐतिहासिक सादृश्य निरूपण किया था, उसी तरह महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान स्थापित क्रान्तिकारी कमेटियों को भी कम्यूनों के माडल पर ही कायम किया गया था। सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पेरिस कम्यून के मॉडल का व्यापक रूप से और जोर देकर प्रचार किया गया था और यह सर्वथा सही था क्योंकि पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने के लिए शासन और निर्णय की प्रक्रिया में जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाकर सर्वहारा राज्य के आधारों को ज्यादा से ज्यादा विस्तारित करते जाना अनिवार्य था। सांस्कृतिक क्रान्ति के प्रारम्भिक चरण में क्रान्तिकारी कमेटियों की भूमिका इसी रूप में बन रही थी, लेकिन बाद के दौर में उन्हें कानूनी मान्यता देकर सरकार की मातहत संस्था में रूपान्तरित कर दिया गया जो मूल लक्ष्य से स्पष्टतः विचलन था। क्रान्तिकारी कमेटियों को धीरे-धीरे सरकार की जिम्मेदारियां हस्तांतरित की जानी थीं और इस तरह सर्वहारा राज्य सत्ता के अहम घटक के रूप में इन्हें सरकार की समान्तर शक्ति के एक केन्द्र के रूप में खड़ा होना था, लेकिन सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त निकाय बना दिये जाने के बाद ये कमेटियां नीति निर्धारक निकाय के बजाय मात्र जनसम्पर्क मंच बनकर रह गयीं। इसका भरपूर लाभ मौका मिलते ही

(शेष पृष्ठ 39 पर)

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का तीसरा दशाब्दी वर्षः चुने हुए दस्तावेज और लेख-एक

सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति : क्या, क्यों और किस प्रकार

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के तीसरे दशाब्दी वर्ष के दौरान इस युगप्रवर्तक घटना के सिद्धान्त और व्यवहार पर महत्वपूर्ण लेखों--दस्तावेजों के किश्तों में प्रकाशन की हमारी योजना थी जो पत्रिका की अनियमितता के कारण लागू नहीं हो सकी।

इस अंक में माओ के जन्मदिन (26 दिसम्बर), स्तालिन के जन्मदिन (22 दिसम्बर), अक्टूबर क्रान्ति की वर्षगांठ (7 नवम्बर) और फ्रे. एंगेल्स के जन्मदिन (28 नवम्बर) पर विशेष सामग्री देने के साथ ही हम महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के पहले तूफानी वर्ष (1966) के दौरान प्रकाशित कुछ ऐतिहासिक महत्व के लेख और दस्तावेज प्रकाशित कर रहे हैं। साथ ही जार्ज थॉमसन का 1969 में प्रकाशित एक लेख 'सांस्कृतिक क्रान्ति के सैद्धान्तिक आधार के बारे में' भी दिया जा रहा है। खासकर, आज के समय में, समाज–विज्ञान के गंभीर अध्येताओं के लिए यह सामग्री काफी विचारोत्तेजक सिद्ध होगी, इसका हमें विश्वास है।

चीन में समाजवाद की समस्याओं से जूझते हुए, पूंजीवादी पुनर्स्थापना के लिए लगातार प्रयत्नशील संशोधनवादियों से मोर्चा लेते हुए और विश्व पटल पर ख्रुश्चेवी संशोधनवादियों पर लगातार प्रत्याक्रमण करते हुए माओ ने व्यवहार और चिन्तन की एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरने के बाद सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की सैद्धान्तिक पूर्वपीठिका तैयार की। समाजवादी संक्रमणकालीन आर्थिक मूलाधार और अधिरचना में मौजूद पूंजीवादी पुनर्स्थापना के कारक तत्वों की गतिकी को समझने के बाद माओ ने यह मार्ग निकाला कि समाजवाद के दौर में वर्ग–संघर्ष का संचालन किस प्रकार किया जायेगा और पूंजीवादी पुनर्स्थापना के लिए प्रयत्नशील नये–पुराने बुर्जुआ तत्वों और उनके आधारों को नष्ट करते हुए कम्युनिज्म की ओर प्रयाण का आम दिशा क्या होगी। इसी चिन्तन और प्रयोग के दौरान "सर्वहारा वर्ग के सर्वतोमुखी अधिनायकत्व के अंतर्गत सतत् क्रान्ति" और "अधिरचना में क्रांति" जैसी अवधारणाएं प्रादुर्भूत और विकसित हुईं।

फरवरी 1966 में पहले 'सांस्कृतिक क्रांति ग्रुप' के गठन के साथ ही मानों सर्दियों के बीतने की घोषणा कर दी गई। '7 मई निर्देश' के द्वारा शिक्षा में क्रान्ति विषयक सूत्र प्रस्तुत करके माओ ने बसंत के वज्रनाद के बाद, गर्मियों का ताप पैदा करने का काम शुरू कर दिया, जिसे "16 मई निर्देश' और नये सांस्कृतिक क्रान्ति ग्रुपों के गठन से एक नया संवेग मिला। यथास्थिति के पोषकों और यथास्थिति के आलोचकों के बीच दो लाइनों का संघर्ष विश्वविद्यालयों–कालेजों और संस्कृति के दायरों से आगे बढ़कर कल–कारखानों और गांवों तक फैल गया। 29 मई को सिनहुआ विश्वविद्यालय में रेडगार्डो की पहली टुकड़ी गठित हुई। 16 जुलाई को 66 वर्षीय माओ ने तूफानी याङत्सी नदी तैरकर प्रतीकात्मक रूप से चीनी जनता को धारा के विरुद्ध खड़े होने और तूफानों से मोर्चा लेने का संदेश दिया। 1 अगस्त को पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की प्लेनम के बाद 5 अगस्त को माओ ने "हेडक्वार्टर को ध्वस्त करो" नामक अपना ऐतिहासिक 'बिग कैरेक्टर पोस्टर' जारी किया और पार्टी के नेतृत्व में जड़ जमाये बैठे पूंजीवादी पथगामियों पर सीधे हल्ला बोलने का संदेश दिया। इसके तीन दिनों बाद ही चीनी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने निर्णय लेकर वह इतिहास–प्रसिद्ध सोलहसूत्री सर्कुलर जारी किया जिसे सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का पहला कार्यक्रमपरक, ठोस दस्तावेज माना जाता है।

'दायित्वबोध' के इस अंक में हम सांस्कृतिक क्रान्ति का यह ऐतिहासिक दस्तावेज और कुछ व्याख्यापरक लेख व टिप्पणियां प्रकाशित कर रहे हैं। आगे के अंकों में हम सांस्कृतिक क्रान्ति के कुछ और महत्वपूर्ण दस्तावेज और लेख प्रकाशित करेंगे।

– सम्पादक

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का एक कार्यक्रमपरक दस्तावेज*

यह महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति बुर्जुआ विश्व-दृष्टिकोण के विरुद्ध सर्वहारा विश्वदृष्टिकोण का एक संघर्ष है, विचारधारात्मक क्षेत्र में नेतृत्व को लेकर बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग का एक संघर्ष है।

सभी वर्ग-संघर्ष राजनीतिक संघर्ष होते हैं। अपने अंतिम विश्लेषण में, वर्तमान महान सांस्कृतिक क्रान्ति समाजवादी व्यवस्था और पूंजीवादी व्यवस्था के बीच एक जीवन-मृत्यु का संघर्ष है, एक ऐसा संघर्ष है जिसमें एक पक्ष सर्वहारा अधिनायकत्व का सुदृढ़ीकरण करना चाहता है जबकि दूसरा पक्ष सर्वहारा अधिनायकत्व को बुर्जुआ अधिनायकत्व में बदल देना चाहता है। यह अत्यधिक प्रचण्ड, अत्यधिक तीक्ष्ण और अत्यधिक गहराई तक जाने वाला वर्ग-संघर्ष है, सर्वहारा वर्ग के लिए पूंजीवाद की पुनर्स्थापना को रोकने का संघर्ष है, साम्राज्यवाद और आधुनिक संशोधनवाद द्वारा विध्वंसकारी षड्यंत्रों और हमारे देश में "शांतिपूर्ण क्रमिक विकास" के क्रियान्वयन को रोकने का संघर्ष है। यह हमारी महान मातृभूमि के भविष्य को प्रभावित करने वाला संघर्ष है।

जैसाकि केन्द्रीय कमेटी का निर्णय (16 सूत्री सर्कुलर) इंगित करता है, वर्तमान महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के कार्यभार ये हैं : पहला, सत्ता में बैठे उन लोगों के विरुद्ध संघर्ष करना और उन्हें कुचल देना जो

* यहां मतलब केन्द्रीय कमेटी द्वारा पारित और जारी '16 सूत्री सर्कुलर' से है।

पूंजीवादी रास्ते पर चल रहे हैं; दूसरा, प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ अकादमिक "अधिकारी विद्वानों" तथा बुर्जुआ वर्ग और सभी अन्य शोषक वर्गों की विचारधारा की आलोचना करना और उन्हें खारिज कर देना; और तीसरा, शिक्षा, साहित्य और कला और अधिरचना के उन सभी दूसरे हिस्सों का रूपांतरण करना जो समाजवादी आर्थिक आधार के अनुरूप नहीं हैं।

इस महान क्रान्ति को नेतृत्व देने का साहस करना और इसे बेहतर ढंग से नेतृत्व देना हमारी पार्टी का कार्यभार है। पार्टी नेतृत्व के लिए निर्णायक महत्व की कुंजी यह है कि साहसिकता को सर्वोपरि स्थान दिया जाये और जनसमुदाय को निर्भीकतापूर्वक जागृत किया जाये।

अन्य क्रान्तिकारी आंदोलनों के प्रति अपनाये जाने वाले रुख की ही भांति, इस महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में भी नेतृत्व दे पाने या न दे पाने का आधारभूत मानदण्ड यह है कि जनसमुदाय को निर्भीकतापूर्वक जागृत किया जाता है अथवा नहीं।

इस निर्णय (केन्द्रीय कमेटी के 16 सूत्री निर्णय) में प्रवाहित होने वाली स्पिरिट यह है कि जनसमुदाय पर भरोसा रखो, उस पर निर्भर रहो और उसकी पहलकदमी की कद्र करो। भय को निकाल फेंको। विचारों और दृष्टिकोणों की खुली और बेलागलपेट अभिव्यक्तियों से, बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टरों से और बड़ी बहसों से भय मत खाओ। अव्यवस्था से भय मत खाओ। इन सभी डरों का सिर्फ एक मतलब है और वह है जनता से डरना। कोई भी व्यक्ति जो भयमुक्त नहीं होगा, इस क्रान्तिकारी आंदोलन को नेतृत्व नहीं दे सकता और यहां तक कि वह जनआंदोलन के लिए एक बाधा बन जायेगा। जनता को खुद को शिक्षित करने दो, अपने मामले खुद चलाने दो, और इस महान क्रान्तिकारी आंदोलन में स्वयं क्रान्ति करने के लिए उठ खड़े होने दो। क्रान्तिकारी संघर्ष के दौरान जनता को यह स्वयं सीखने दो कि सही और गलत के बीच तथा काम करने की सही और गलत पद्धतियों के बीच फर्क कैसे किया जाता है। पहले से ही भांति-भांति के प्रतिबंधों वाला विधान रच डालने से क्रान्तिकारी व्यवस्था नहीं बहाल हो सकती। बजाय इसके, हमें जनता पर भरोसा करना चाहिए कि वह संघर्ष में अपने अनुभवों के अनुसार इसे स्थापित करे।

अध्यक्ष माओ हमें लगातार यह शिक्षा देते हैं : "इस बात को समझना होगा कि जनसमुदाय ही वास्तविक नायक होते हैं जबकि हम प्रायः बचकाने और अज्ञानी होते हैं, और इस समझदारी के बिना, यहां तक कि सर्वाधिक प्रारंभिक ज्ञान हासिल कर पाना भी असंभव है।" सिर्फ जनसमुदाय के शिष्य बनकर ही हम जनता के शिक्षक बन सकते हैं। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में, कुछ कामरेड ऐसे भी हैं जो इस बात को भूल गये हैं। वे अनिवार्यतः आंख मूंदकर खुद को अक्लमंद मानते हैं और इस बात का विश्वास नहीं करते कि जनसमुदाय अक्लमंद होते हैं। जनसमुदाय हमें बहुतेरी चीजों की शिक्षा दे सकता है। हमें उसकी बात सुननी चाहिए और उसके अनुभवों, इच्छाओं और आलोचनाओं को समझना चाहिए, इनसे शिक्षा लेनी चाहिए, इन्हें एकत्र करना चाहिए, उनकी कुल आवश्यकताओं का पता लगाना चाहिए और फिर नीति के तौर पर जनता से अर्जित इस समूचे ज्ञान को उसे ही लौटा देना चाहिए। कोई भी नेतृत्वकारी व्यक्ति जो जनता के पास नहीं जाता और उससे नहीं सीखता; उसे कोई भी जानकारी नहीं होती।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, बहुत सी नई चीजें पैदा हुई हैं, जैसे कि सांस्कृतिक क्रान्तिकारी ग्रुप, कमेटियां आदि। ऐसा नहीं हुआ कि किसी व्यक्ति ने इन चीजों का सपना देखा हो और फिर इनहें जनसमुदाय के ऊपर लाद दिया हो, बल्कि सांस्कृतिक क्रान्तिकारी आंदोलन के दौरान जनसमुदाय ने स्वयं इनका सृजन किया। अध्यक्ष माओ और पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने जन समुदाय के अनुभवों का निचोड़ निकाला और इस निर्णय ने इस बात की पुष्टि की कि ये महान ऐतिहासिक महत्व वाली नई चीजें हैं।

नई चीजों के प्रति किसी व्यक्ति का रुख जनसमुदाय के प्रति, क्रान्ति के प्रति और क्रान्तिकारी जनांदोलनों के प्रति उसके रुख का प्रतिनिधित्व करता है।

अध्यक्ष माओ ने कुशाग्रतापूर्वक निर्दिष्ट किया है : "लोग समाजवाद के प्रति अपरम्पार उत्साह से लबरेज हैं। एक क्रान्तिकारी काल में, जो लोग सिर्फ पिटी-पिटाई राह पर चलते रहना ही जानते हैं, वे इस उत्साह को कदापि नहीं देख सकते। वे अंधे हैं। उनके सामने सब कुछ अंधकारमय है। बाज वक्त वे सच्चाई को सिर के बल खड़ा करने का शब्दाडम्बर रचते रहते हैं और काले-सफेद के बीच फर्क करने में विभ्रम का शिकार होते रहते हैं। क्या हमारे पास इस तरह के बहुतेरे लोग नहीं हैं? वे लोग जो सिर्फ पिटे-पिटाये रास्तों पर ही चल सकते हैं, हमेशा ही जनता के उत्साह को कम करके आंकते हैं। जब भी कुछ नया सामने आता है, वे निरपवाद रूप से उसे खारिज करते हैं और उसका विरोध करने के लिए दौड़ पड़ते हैं। बाद में वे अपनी हार स्वीकार कर लेते हैं और थोड़ी-सी आत्मालोचना कर लेते हैं। लेकिन अगली बार फिर जब कुछ नया सामने आता है तो फिर वे वैसा ही करते हैं -- और उसी क्रम में करते हैं। किसी भी नई चीज और हर नई चीज के सन्दर्भ में यह उनका नियमित रुटीन हो जाता है। इस किस्म के व्यक्ति हमेशा निष्क्रिय होते हैं। निर्णायक क्षण में वे कभी भी क्रियाशील नहीं होते। उनको आगे बढ़ाने के लिए हमेशा ही कोई न कोई उनको पीछे से कोंचता रहता है।"

कुछ ऐसे कामरेडों के बीच बहुत गंभीर खतरे मौजूद हैं जो एक नियंत्रणकारी ऊंचाई पर हर हाल में खड़े रहना चाहते हैं और जिन्होंने खुद को जनता से काट लिया है। राजनीतिक और विचाराधारात्मक स्तर पर वे उन लोगों से, जिन्हें पहले कोई नहीं जानता था और उन नौजवानों से काफी पीछे छूट गये हैं, जिनमें नई ऊंचाइयों को छूने का साहस है। बावजूद इसके, ऐसे लोग अपने को कुलीन सामंत-सरदार समझते हैं और "नीचे के लोगों" के कंधों पर सवार रहते हैं। वे सिर्फ हर चीज पर अपनी इजारेदारी कायम कर लेने, आदेश देने और जनसमुदाय को निष्क्रियता की स्थिति में नीचे गिरा देने के आदी हो चुके हैं। ऐसे सभी लोग निरपवाद रूप से जनसमुदाय से अलग-थलग रहने और भयभीत रहने से आगे बढ़कर उसका विरोध और दमन करने लगे हैं। ऐसे लोग हमेशा ही क्रान्तिकारी तूफानों के सामने डर से थरथर कांपते रहे हैं और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते रहे हैं और जैसें ही उन्हें अपने भय से निजात मिलती है, वे उतावलेपन के साथ क्रान्तिकारी आंदोलन को पीछे खीचने की कोशिशों में लग जाते हैं। वे प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग के पक्ष में खड़े होकर क्रान्तिकारियों का दमन करते हैं, असहमति रखने वाले विचारों के आगे अवरोधक खड़े करते हैं और बुर्जुआ अधिनायकत्व लागू करते हैं।

अनुभव ने सिद्ध किया है कि विभिन्न यूनिटों में सांस्कृतिक क्रान्तिकारी कार्य वहां के जनसमुदाय द्वारा स्वयं संचालित किया जाना चाहिए और उन पर ऊपर के संगठनों की इजारेदारी कदापि कायम नहीं होनी चाहिए। आम तौर पर, ऊपर के संगठनों को सांस्कृतिक क्रान्ति की वर्क टीमों को भेजना नहीं चाहिए। विभिन्न यूनिटों से सम्पर्क रखने के लिए ऊपर के संगठनों द्वारा नियुक्त पदाधिकारियों को "शाही दूत" जैसा आचरण नहीं करना चाहिए, उन्हें "सरकारी गाड़ी से नीचे कदम रखते ही" चीख-पुकार मचाने और अपने विचारों की झड़ी लगा देने का काम नहीं करना चाहिए और एक पक्ष की राय सुनने के साथ ही अपने पूर्वकल्पित विचारों को सूत्रबद्ध करने का काम नहीं शुरू कर देना चाहिए। उन्हें

ईमानदारीपूर्वक और गंभीरतापूर्वक जनसमुदाय के साथ सम्पर्क करना चाहिए और ज्यादा से ज्यादा देखते, पूछते, सुनते और सोचते हुए उसके साथ एकरूप हो जाना चाहिए।

एक ऐसे अभूतपूर्व जन आंदोलन – महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में पार्टी का नेतृत्व किस प्रकार अमल में लाया जा सकता है? सभी स्तरों पर पार्टी संगठनों को माओ त्से-तुङ की विचारधारा को अपने कार्यों का मार्गदर्शक बनाना चाहिए, ईमानदारी व कर्तव्यनिष्ठा के साथ अध्यक्ष माओ त्से-तुङ के नेतृत्व वाली पार्टी की केन्द्रीय कमेटी द्वारा सूत्रीकृत सही लाइन, उसूलों और नीतियों को लागू करना चाहिए और दृढ़तापूर्वक गलत नेतृत्व का प्रतिरोध करना चाहिए जो क्रान्ति की राह में बाधक है। इसके लिए जरूरी है कि व्यापक जनसमुदाय की नियति को अपनी नियति बना लिया जाये, हर सुख-दुख उसके साथ रहकर झेला जाये तथा जनता से आने और फिर जनता के बीच वापस जाने के सिद्धान्त पर अमल किया जाये। कुछ कामरेड पार्टी के नेतृत्व को, जनसमुदाय को बहादुरी के साथ जागृत करने के व्यवहार के विरोध में खड़ी होने वाली चीज के रूप में देखते-समझते हैं या उसके आमने-सामने खड़ा करते हैं। यह सर्वथा गलत है।

यदि जनसमुदाय को सही ढंग से, बहादुरीपूर्वक जागृत करना हो, तो पार्टी की नीतियां निश्चित रूप से जनसमुदाय के हाथों में होनी चाहिए। केन्द्रीय कमेटी के इस निर्णय की घोषणा (16 सूत्रीय सर्कुलर) महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति से संबंधित पार्टी की विभिन्न नीतियों को सीधे जनसमुदाय तक लेकर जाती है। यह जनसमुदाय को बहादुरी के साथ जागृत करने के लिए सर्वाधिक अनुकूल है।

आंदोलन के दौरान, यह आवश्यक है कि उन बुर्जुआ दक्षिणपंथियों को व्यापक तौर पर बेनकाब करने का जनसमुदाय को मौका दिया जाये, जो अभी बेनकाब नहीं हुए हैं या जो अभी पूरी तरह बेनकाब नहीं हुए हैं जनसमुदाय द्वारा उनकी व्यापक आलोचना की जानी चाहिए, उन्हें पूरी तरह खारिज कर दिया जाना चाहिए और अधिकतम संभव सीमा तक उन्हें अलगाव में डाल दिया जाना चाहिए। इस तरह, यह अनिवार्य है कि पार्टी के भीतर के वे लोग जो नेतृत्वकारी पदों पर हैं और जो पूंजीवादी रास्ते पर हैं, उनकी पहले पहचान की जानी चाहिए, और यह कि उनकी पहचान के लिए अधिकतम संभव प्रयास किया जाना चाहिए और उन्हें पूरी तरह बेनकाब किया जाना चाहिए।

जनसमुदाय इस बात को पूरी तरह समझता है कि बीच के उन तत्वों को अपने पक्ष में करने के लिए भरपूर प्रयास करना आवश्यक है जो ढुलमुल हैं और बुनियादी मुद्दों पर या सही और गलत के प्रश्न पर अस्पष्ट हैं। सही है कि लोग जब उठ खड़े होंगे तो जिन यूनिटों में वे काम करते हैं वहां लगाये जाने वाले बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टरों में ऐसे कुछ मध्यवर्ती तत्वों का उल्लेख नाम लेकर भी हो सकता है। इससे बचा नहीं जा सकता। लेकिन ये बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टर यदि पत्रों में प्रकाशित नहीं होते और ऐसे मध्यवर्ती तत्वों को भी अपनी हिफाजत में ऐसे पोस्टर लगाने की इजाजत दी जाती है, तो उनका कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि इसके विपरीत यह उनको आगे बढ़ने के लिए अनुप्राणित करेगा। हमारा विश्वास है कि आन्दोलन के दौरान कुछ मध्यवर्ती तत्व अपने को बदल लेंगे और वाम की कतारों में शामिल हो जायेंगे।

वाम पर भरोसा करके ही एक बड़े पैमाने पर जनसमुदाय को जागृत किया जा सकता है। सिर्फ वाम को पहचानने में कुशलता हासिल करके ही, उसकी कतारों को विकसित और विस्तारित करके ही और क्रान्तिकारी वाम पर दृढ़तापूर्वक निर्भर रहकर ही सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी दक्षिणपंथियों को पूरी तरह अलगाव में डाला जा सकता है, मध्यवर्ती तत्वों को अपने पक्ष में किया जा सकता है और आंदोलन के दौरान बहुसंख्या को ऐक्यबद्ध किया जा सकता है। केवल तभी जाकर अंतिम तौर पर, आंदोलन के अंत में 95 प्रतिशत से अधिक कार्यकर्ताओं की और 95 प्रतिशत से अधिक जनसमुदाय की एकता हासिल की जा सकेगी।

(पीकिङ रिव्यू, नं. 34, अगस्त 9, 1966)

सोलह सूत्री सर्कुलर

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के सम्बन्ध में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का निर्णय

(8 अगस्त 1966 को स्वीकृत)

1. समाजवादी क्रान्ति में एक नयी मंजिल

अब से शुरू हो रही महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति एक महान क्रान्ति है जो जनसमुदाय के अन्तःकरण को छूती है और हमारे देश में समाजवादी क्रान्ति के विकास की नयी मंजिल है, एक ऐसी मंजिल जो अपेक्षतया अधिक व्यापक और अधिक गहरी, दोनों है।

पार्टी की आठवीं केन्द्रीय कमेटी के दसवें प्लेनरी सत्र में कामरेड माओ त्से-तुङ ने कहा था : राजनीतिक सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए, हमेशा सर्वप्रथम जनमत तैयार करने की, विचारधारात्मक दायरे में काम करने की आवश्यकता होती है। यह क्रान्तिकारी वर्ग के लिए भी उतना ही सच है जितना कि प्रतिक्रान्तिकारी वर्ग के लिए। कामरेड माओ त्से-तुङ की यह स्थापना व्यवहार में पूरी तरह सही साबित हुई है।

हालांकि बुर्जुआ वर्ग की सत्ता पलट दी गयी है, लेकिन यह अभी भी जनता को भ्रष्ट करने के लिए, उसके दिमाग पर अधिकार जमाने के लिए और सत्ता पर फिर से काबिज होने के लिए शोषक वर्गों के पुराने विचारों, संस्कृति, रीति-रिवाजों और आदतों का इस्तेमाल कर रहा है। सर्वहारा वर्ग को ठीक इसके उल्टा करना होगा : उसे विचारधारा के क्षेत्र में बुर्जुआ वर्ग की हर चुनौती का आमने-सामने मुकाबला करना होगा और पूरे समाज के मानसिक दृष्टिकोण को बदलने के लिए सर्वहारा वर्ग के नये विचारों, संस्कृति, रीति-रिवाजों और आदतों का इस्तेमाल करना होगा। वर्तमान समय में, हमारा उद्देश्य सत्ता में बैठे उन लोगों के विरुद्ध संघर्ष करना और उन्हें उखाड़ फेंकना है जो पूंजीवादी रास्ता अपना रहे हैं, हमारा उद्देश्य प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ अकादमिक 'हुक्मरानों' की तथा बुर्जुआ वर्ग एवं सभी अन्य शोषक वर्गों की विचारधारा की आलोचना करना और उनका खण्डन करना तथा शिक्षा, साहित्य और कला एवं अधिरचना के उन सभी दूसरे हिस्सों को रूपान्तरित करना है जो समाजवादी आर्थिक मूलाधार के अनुरूप नहीं हैं, ताकि समाजवादी व्यवस्था के विकास और सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा सके।

2. मुख्य धारा और मोड़ एवं घुमाव

मजदूरों, किसानों, सैनिकों, क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों और क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं का जन-समुदाय इस महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की मुख्य शक्ति है। क्रान्तिकारी नौजवानों की भारी संख्या, जो पहले अज्ञात थी, साहस और दिलेरी के साथ नयी राह बना रही है। वे कुशाग्र और व्यवहार में ऊर्जस्वी है। बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टरों ('बिग कैरेक्टर पोस्टर्स') और महान बहसों के माध्यम से वे तर्क के जरिये चीजों को सामने लाते हैं, उनका पर्दाफाश करते हैं और सम्यक आलोचना करते हैं तथा बुर्जुआ वर्ग के खुले और छिपे प्रतिनिधियों पर दृढ़ संकल्प के साथ हमला बोल देते हैं। उनकी एक या दूसरे किस्म की जो कमियां दिखाई देती हैं, उनसे ऐसे महान क्रान्तिकारी आंदोलन के दौरान बच पाना कठिन है, लेकिन उनकी आम क्रान्तिकारी दिशा शुरू से ही सही रही है। यह महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की मुख्य धारा है। यह वह आम दिशा है जिस ओर इस क्रान्ति का आगे बढ़ना जारी है।

चूंकि सांस्कृतिक क्रान्ति एक क्रान्ति है, अतः इसे अपरिहार्यतः प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। यह प्रतिरोध मुख्यतः सत्ता में बैठे उन लोगों की ओर से होता है, जो चोरी-छिपे राह बनांकर पार्टी में घुस आये हैं और पूंजीवादी रास्ते पर चल रहे हैं। यह प्रतिरोध पुराने समाज की आदतों की ताकत से भी आता है। वर्तमान समय में यह प्रतिरोध अभी भी काफी मजबूत और हठधर्मितापूर्ण है। लेकिन अन्ततोगत्वा, सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति एक अप्रतिरोध्य आम प्रवृत्ति है। इस सच्चाई के प्रचुर प्रमाण हैं कि एक बार जब जनता पूरी तरह उठ खड़ी होगी, तो ऐसा प्रतिरोध जल्दी ही टूट जायेगा।

चूंकि प्रतिरोध काफी मजबूत है, इसलिए इस संघर्ष में पीछे हटने की स्थितियां आयेंगी और यहां तक कि बार-बार आयेंगी। लेकिन इसमें कोई नुकसान नहीं है। यह सर्वहारा एवं अन्य मेहनतकश जनता को, खासकर नयी पीढ़ी को तैयार करता है, उन्हें सबक देता है, अनुभव देता है और यह समझने में मदद देता है कि क्रान्तिकारी रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा होता है तथा निर्बाध नहीं होता।

3. साहसिकता को सबसे ऊपर रखो और निर्भीकतापूर्वक जनता को जागृत करो

इस महान सांस्कृतिक क्रान्ति के नतीजे का फैसला इस बात से होगा कि पार्टी नेतृत्व निर्भीकतापूर्वक जनता को जागृत करने का साहस करता है अथवा नहीं।

वर्तमान समय में, विभिन्न स्तरों पर पार्टी संगठनों द्वारा सांस्कृतिक क्रान्ति के आन्दोलन को दिये जा रहे नेतृत्व के सम्बन्ध में चार अलग-अलग स्थितियां मौजूद हैं :

1. एक स्थिति वह है कि जहां पार्टी-संगठनों के प्रभारी व्यक्ति आंदोलन में नेतृत्वकारी भूमिका निभा रहे हैं और निर्भीकतापूर्वक जनता को जागृत करने का साहस कर रहे हैं। वे साहसिकता को सर्वोपरि स्थान देते है, निडर कम्युनिस्ट योद्धा है और अध्यक्ष माओ के अच्छे शिष्य हैं। वे बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टरों ('बिग कैरेक्टर पोस्टर्स') और महान बहसों की वकालत करते हैं। वे हर प्रकार के प्रेतों और पिशाचों के पर्दाफाश के लिए और साथ ही प्रभारी व्यक्तियों के काम में गलतियों-कमियों की आलोचना करने के लिए जनता को प्रोत्साहित करते हैं। नेतृत्व की यह सही किस्म सर्वहारा राजनीति को अग्रभाग में और माओ त्से-तुङ विचारधारा को नेतृत्व में रखने का परिणाम है।

2. बहुत सी इकाइयों में, इस महान संघर्ष में नेतृत्व के कार्यभार के बारे में प्रभारी व्यक्तियों की समझदारी बहुत कमजोर है, उनका नेतृत्व कर्तव्यनिष्ठ और प्रभावी नहीं है और तदनुरूप वे अपने को अयोग्य और कमजोर स्थिति में पाते हैं। वे भय को सर्वोपरि स्थान देते हैं, पुराने रास्तों और नियमों से चिपके रहते हैं और परम्परागत रिवाजों से नाता तोड़ने एवं आगे बढ़ने की इच्छा नहीं रखते हैं। वे चीजों की नयी व्यवस्था से, जनता की क्रान्तिकारी व्यवस्था से और इस परिणाम से, कि उनका नेतृत्व परिस्थितियों और जनता से पीछे रह गया है, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं।

3. कुछ इकाइयों में, प्रभारी व्यक्ति, जिन्होंने अतीत में एक या दूसरे किस्म की गलतियां की हैं, भय को सर्वोपरि स्थान देने के और अधिक आदी होते हैं और डरते रहते हैं कि जनता उन्हें गलती करते हुए पकड़ लेगी। वास्तव में, यदि वे गम्भीरतापूर्वक आत्मालोचना कर लेंगे और जनता की आलोचना को स्वीकार कर लेंगे तो पार्टी और जनता उनकी गलतियों को भुला देगी। लेकिन यदि प्रभारी व्यक्ति ऐसा नहीं करेंगे तो गलतियां करना जारी रखेंगे और जनान्दोलनों की राह में बाधा बन जायेंगे।

4. कुछ इकाइयां उन लोगों द्वारा नियंत्रित हैं जो पार्टी में भेष बदलकर घुस आये हैं और पूंजीवादी रास्ते पर चल रहे हैं। ऐसे ओहदेदार व्यक्ति जनता द्वारा बेनकाब कर दिये जाने से बेहद डरते हैं और इसलिए जनान्दोलनों को दबा देने का हर सम्भव बहाना ढूंढ़ते रहते हैं। वे आन्दोलन को रास्ते से भटका देने की कोशिश में आक्रमण के लक्ष्यों को बदल देने या काले को सफेद बना देने जैसे दांवपेंच का सहारा लेते हैं। जब वे अपने को अत्यधिक अलगाव में पाते हैं और जब ऐसे दांवपेंचों का पहले की तरह इस्तेमाल कर पाना उनके लिए और अधिक सम्भव नहीं रह जाता है तो वे साजिशें करने, लोगों की पीठ में छुरा भोंकने, अफवाहें फैलाने तथा क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के बीच फर्क को, जिस हद तक वे कर सकते है, उस हद तक धुंधला कर देने का अधिक सहारा लेते हैं, और यह सब कुछ वे क्रान्तिकारियों पर हमला करने के उद्देश्य से करते हैं।

पार्टी की केन्द्रीय कमेटी सभी स्तरों की पार्टी कमेटियों से जो अपेक्षा करती हैं, वह यह कि वे सही नेतृत्व प्रदान करने के मामले में दृढ़ रहें, साहसिकता को सर्वोपरि स्थान दें, जनता को निर्भीकतापूर्वक जागृत करें, जहां भी कमजोरी और अयोग्यता की स्थिति मौजूद है उसे बदलें, उन कामरेडों को प्रोत्साहित करें जिन्होंने गलतियां की हैं पर उन्हें ठीक करना चाहते हैं ताकि वे दिमागी बोझ से मुक्त होकर संघर्ष में शामिल हो जायें और उन सभी ओहदेदारों को उनके नेतृत्वकारी पदों से हटा दें और सर्वहारा क्रान्तिकारियों के लिए फिर से नेतृत्व प्राप्त करना सम्भव बनायें।

4. जनता को आंदोलन में स्वयं को शिक्षित करने दो

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में एकमात्र पद्धति जनता द्वारा स्वयं को मुक्त करना है, और इसकी जगह पर कोई और पद्धति इस्तेमाल नहीं होनी चाहिए।

जनता पर विश्वास करो, उस पर भरोसा करो और उसी पहलकदमी की कद्र करो। भय से मुक्त हो जाओ। अशान्ति से मत डरो। अध्यक्ष माओ ने हमें बार-बार बताया है कि क्रान्ति कभी भी इतनी अधिक परिष्कृत, इतनी कोमल, इतनी संयमित, सौम्य, शिष्ट, नियंत्रित और उदार नहीं हो सकती। इस महान क्रान्तिकारी आन्दोलन में जनता को खुद को शिक्षित करने दो तथा उसे सही और गलत में और काम करने के सही और गलत तरीकों में फर्क करना सीखने दो।

बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टरों और महान बहसों का अधिकतम प्रयोग करो ताकि जनता सही विचारों को स्पष्ट कर सके, गलत विचारों की आलोचना कर सके और सभी प्रेतों और पिशाचों का पर्दाफाश कर सके। इस तरह संघर्षों के दौरान जनता अपनी राजनीतिक चेतना के स्तर को उन्नत करने में, अपनी योग्यताओं और प्रतिभा को बढ़ाने में, सही को गलत से अलग करने में और अपने तथा दुश्मन के बीच में

स्पष्ट विभाजक रेखा खींचने में समर्थ होगी।

5. पार्टी की वर्ग लाइन को दृढ़तापूर्वक लागू करो

हमारे दुश्मन कौन हैं? हमारे दोस्त कौन हैं? यह क्रान्ति के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसी तरह महान सांस्कृतिक क्रान्ति के लिए भी यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

वामपंथ को सामने लाने और वामपंथ की कतारों को विकसित करने एवं मजबूत बनाने में पार्टी नेतृत्व को कुशल होना चाहिए; इसको क्रान्तिकारी वामपंथ पर दृढ़तापूर्वक भरोसा करना चाहिए। आंदोलन के दौरान सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी दक्षिणपंथियों को पूरी तौर पर अलगाव में डालने का, मध्यवर्ती हिस्सों को अपने पक्ष में जीतने का और विशाल बहुसंख्या के साथ एकता कायम करने का यह एकमात्र रास्ता है ताकि आंदोलन के अन्त तक हम 95 प्रतिशत से अधिक कार्यकर्ताओं की और 95 प्रतिशत से अधिक जनता की एकता हासिल कर लें।

मुट्ठी भर अतिप्रतिक्रियावादी बुर्जुआ दक्षिणपंथियों और प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादियों पर प्रहार करने के लिए सभी शक्तियों को एकत्र करो, पार्टी के विरुद्ध, समाजवाद के विरुद्ध और माओ त्से-तुङ विचारधारा के विरुद्ध किये गये उनके अपराधों का पूरी तरह पर्दाफाश करो और उनकी आलोचना करो, ताकि उन्हें अधिकतम सीमा तक अलगाव में डाला जा सके।

मौजूदा आंदोलन का मुख्य निशाना पार्टी के भीतर वे लोग हैं जो विभिन्न पदों पर हैं और पूंजीवादी रास्ते पर चल रहे हैं।

पार्टी-विरोधी, समाजवाद-विरोधी दक्षिणपंथियों के, और उनके बीच जो पार्टी और समाजवाद का समर्थन करते हैं लेकिन जिन्होंने कुछ गलत कहा या किया है या कुछ खराब लेख या अन्य रचनाएं लिखी हैं, फर्क करने में अधिकतम कड़ी सावधानी बरती जानी चाहिए।

एक ओर प्रतिक्रियावादी विद्वान तानाशाहों और 'अधिकारी विद्वानों' तथा दूसरी ओर सामान्य बुर्जुआ अकादमिक विचार रखने वाले लोगों के बीच फर्क करने में सर्वाधिक कड़ी सावधानी बरती जानी चाहिए।

6. जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करो

दो भिन्न किस्म के अन्तरविरोधों के बीच पक्का फर्क किया जाना चाहिए : जनता के भीतर के अन्तरविरोध तथा हमारे और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोध। जनता के भीतर के अन्तरविरोधों को हमारे और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोध नहीं बनाया जाना चाहिए और न ही हमारे और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोधों को जनता के भीतर के अन्तरविरोधों के रूप में देखा जाना चाहिए।

जनसमुदाय के लिए अलग-अलग विचार रखना सामान्य बात है। अलग-अलग विचारों के बीच टकराव अपरिहार्य, आवश्यक और लाभदायक होता है। सामान्य और पूरी बहस के दौरान जन समुदाय, जो सही है उसे पुष्ट करेगा, जो गलत है उसे ठीक करेगा और क्रमशः सर्वसम्मति तक पहुंचेगा।

बहस के दौरान तथ्यों को प्रस्तुत करने, वाद-विवाद करके चीजों को स्पष्ट करने और तर्क के जरिए समझाने की पद्धति प्रयोग में लाई जानी चाहिए। अलग विचार रखने वाले अल्पमत को सहमत होने के लिए बाध्य करने की किसी पद्धति को अपनाने की इजाजत नहीं है। अल्पमत की रक्षा की जानी चाहिए, क्योंकि कभी-कभी सच्चाई अल्पमत के ही साथ होती है। यदि अल्पमत गलत है तब भी उसे अपना पक्ष तर्कपूर्वक प्रस्तुत करने की और अपने विचारों को सुरक्षित रखने की इजाजत होनी चाहिए।

जब भी कोई बहस हो तो उसे तर्क द्वारा चलाया जाना चाहिए, दबाव या बल-प्रयोग द्वारा नहीं।

बहस के दौरान हर क्रान्तिकारी को खुद चीजों को सोच-विचार कर तय करने में कुशल होना चाहिए और सोचने का साहस करने, बोलने का साहस करने और करने का साहस करने की कम्युनिस्ट भावना विकसित करनी चाहिए। इस पूर्वाधार पर, कि उनकी आम दिशा एक ही है, क्रान्तिकारी कामरेडों को, एकता मजबूत करने की दृष्टि से, हाशिये के मुद्दों पर अन्तहीन बहसों से बचना चाहिए।

7. क्रान्तिकारी जनता पर 'प्रतिक्रान्तिकारी' का ठप्पा लगाने वालों के खिलाफ चौकसी बरतो

कुछ विद्यालयों, इकाइयों और सांस्कृतिक क्रान्ति की कार्य टोलियों में, प्रभारी व्यक्तियों ने,

चीन में समाजवादी क्रान्ति की एक नई मंजिल

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने, जिसका अब सूत्रपात हो रहा है, चीन की समाजवादी क्रान्ति को एक नई मंजिल में, एक अधिक गहरी और अधिक व्यापक मंजिल में पहुंचा दिया है।

1952 के तीन बुराइयों (भ्रष्टाचार, फिजूलखर्ची और नौकरशाही) के विरुद्ध आंदोलन और पांच बुराइयों (सरकारी कर्मचारियों की घूसखोरी, करों की चोरी, राजकीय सम्पत्ति की चोरी, सरकारी अनुबंधों पर धोखाधड़ी और निजी सट्टेबाजी के लिए आर्थिक सूचनाओं की चोरी) के विरुद्ध आंदोलन चीन लोक गणराज्य की स्थापना के बाद पार्टी के नेतृत्व में सर्वहारा वर्ग द्वारा बुर्जुआ वर्ग और पार्टी के भीतर और बाहर के इसके प्रतिनिधियों के विरुद्ध छेड़े गये महान संघर्ष की पहली मंजिल थे। इस मंजिल में उन बुर्जुआ प्रतिक्रांतिकारियों के असली रंग को व्यापक जनता के सामने उजागर करना संघर्ष की अभिलाक्षणिकता थी जो धनी बनने के लिए हर संभव ढंग से राजकीय सम्पत्ति की चोरी करते थे और करोड़ों जनता को भारी आर्थिक नुकसान पहुंचाने में जरा भी नहीं हिचकते थे।

तीन बुराइयों और पांच बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष के आधार पर, और कृषि-सहकारिता के क्रियान्वयन के आधार पर पार्टी ने अपेक्षाकृत आसानी से पूंजीवादी उद्योग और वाणिज्य के समाजवादी रूपांतरण के काम को, यानी उत्पादन के साधनों के पूंजीवादी स्वामित्व के रूपांतरण के काम को अंजाम दिया। यह संघर्ष की दूसरी मंजिल थी।

बुर्जुआ दक्षिणपंथियों के विरुद्ध 1957 में छेड़ा गया संघर्ष तीसरी मंजिल था। इस संघर्ष ने राज्य के नेतृत्व को हथियाने, सर्वहारा अधिनायकत्व का ध्वंस करने, "पारी में शासन" के अपने सिद्धान्त को लागू करने और प्रतिक्रान्तिकारी अधिनायकत्व स्थापित करने की बुर्जुआ दक्षिणपंथियों की स्कीम को कुचल दिया।

दक्षिणपंथी अवसरवाद के विरुद्ध पार्टी द्वारा छेड़े गये संघर्ष ने और पार्टी की आम लाइन तथा समाजवादी व्यवस्था की हिफाजत में पार्टी द्वारा उठाये गये कदमों और अपनाई गई नीतियों की श्रृंखला ने बुर्जुआ दक्षिणपंथियों और पार्टी के भीतर तथा बाहर के उनके प्रतिनिधियों की कोशिशों को नाकाम बना दिया तथा चीन की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, संस्कृति और शिक्षा को और आगे प्रगति करने में संक्षम बनाया। यह संघर्ष की चौथी मंजिल थी।

संघर्ष की पांचवी मंजिल 1963 में पार्टी द्वारा शुरू किया गया समाजवादी शिक्षा आंदोलन थी, जो महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के रूप में आज जारी है।

(पीकिङ रिव्यू, नं. 30, 22 जुलाई, 1966)

जनता द्वारा उनकी आलोचना करते हुए बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टर लगाये जाने पर, उसके खिलाफ प्रत्याक्रमण संगठित किये हैं। यहां तक कि ऐसे लोगों ने इस तरह के नारे दिये हैं जैसे : एक इकाई या कार्य टोली के नेताओं का विरोध करने का मतलब पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का विरोध करना है, पार्टी और समाजवाद का विरोध करना है और यह कि इसका मतलब प्रतिक्रान्ति करना है। इस तरीके में यह अपरिहार्य है कि उनके प्रहार के शिकार कुछ वास्तविक क्रान्तिकारी कार्यकर्ता होंगे। यह दिशा के मामले में एक गलती है, लाइन की गलती है और इसकी इजाजत कतई नहीं दी जा सकती।

कुछ लोग जो गम्भीर विचारधारात्मक गलतियों के शिकार हैं, खासतौर पर पार्टी-विरोधी और समाजवाद-विरोधी दक्षिणपंथियों में से कुछ लोग, अफवाहें और ऊलजलूल बातें फैलाने के लिए जनान्दोलन की कुछ कमियों और गलतियों का लाभ उठा रहे हैं और जनता के कुछ लोगों पर जान-बूझकर 'प्रतिक्रान्तिकारी' का ठप्पा लगाकर उत्तेजना पैदा करने में लगे हुए हैं। ऐसे 'जेबकतरों' से सावधान रहना और उनकी चालबाजियों का सही समय पर पर्दाफाश करना जरूरी है।

आन्दोलन के दौरान, जहां हत्या, आगजनी, जहर देने, तोड़फोड़ करने या राज्य की गोपनीय सूचनाओं को चुराने जैसे अपराधों का स्पष्ट प्रमाण मौजूद हो और जिन मामलों को कानून के सहारे हल किया जाना हो, ऐसे सक्रिय प्रतिक्रान्तिकारियों के मामलों को अपवादस्वरूप छोड़कर, आंदोलन में उठने वाली समस्याओं के लिए, विश्वविद्यालयों, कालेजों, माध्यमिक और प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। जनता को या छात्रों को एक-दूसरे के विरुद्ध संघर्ष के लिए किसी भी बहाने से उकसाने की कोई इजाजत नहीं है ताकि संघर्ष को उसके मुख्य निशाने से विचलित होने से रोका जा सके। आंदोलन के उत्तरवर्ती दौर में साबित दक्षिणपंथियों तक के बारे में, प्रत्येक मामले की पात्रता के हिसाब से फैसले लिए जाने चाहिए।

8. कार्यकर्ताओं का सवाल

मोटे तौर पर कार्यकर्ताओं की निम्नलिखित चार श्रेणियां हैं :

1. अच्छे ;

2. तुलनात्मक रूप से अच्छे;

3. वे, जिन्होंने गम्भीर गलतियां की हैं, लेकिन पार्टी-विरोधी और समाजवाद-विरोधी दक्षिणपंथी नहीं बने हैं;

4. पार्टी-विरोधी समाजवाद-विरोधी दक्षिणपंथियों की छोटी संख्या।

साधारण स्थितियों में, पहली दो श्रेणियां (अच्छे और तुलनात्मक रूप से अच्छे) ही भारी बहुसंख्या में हैं।

पार्टी-विरोधी, समाजवाद-विरोधी दक्षिणपंथियों का पूरी तरह पर्दाफाश किया जाना चाहिए, उन्हें पराजित किया जाना चाहिए, उखाड़ फेंका जाना चाहिए और उनकी साख पूरी तरह समाप्त कर दी जानी चाहिए तथा उनके प्रभाव का उन्मूलन कर दिया जाना चाहिए। लेकिन साथ ही उन्हें सुधरने का भी मौका दिया जाना चाहिए।

9. सांस्कृतिक क्रान्तिकारी ग्रुप, कमेटियां और कांग्रेसें

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में बहुत सी नयी चीजों का आविर्भाव प्रारम्भ हुआ है। बहुत से स्कूलों और इकाइयों में जनता ने जिन सांस्कृतिक क्रान्तिकारी ग्रुपों, कमेटियों और अन्य सांगठनिक रूपों की सर्जना की है, वे नई चीजें हैं और उनका महान ऐतिहासिक महत्व है।

ये सांस्कृतिक क्रान्तिकारी ग्रुप, कमेटियां और कांग्रेसें संगठन के उत्कृष्ट नये रूप हैं, जिनके माध्यम से कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में जनता खुद को शिक्षित करती है। ये हमारी पार्टी

सोलह सूत्रों का अध्ययन करो, उन्हें भलीभांति जानो और लागू करो

जन समुदाय ही हमारे समाज का सर्वेसर्वा है। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति जन समुदाय की सचेतन कार्रवाइयों पर निर्भर होनी चाहिए और उसी के द्वारा सम्पन्न की जानी चाहिए।

एक क्रान्तिकारी जनआंदोलन एक महान दहन-पात्र होता है। प्रत्येक क्रान्तिकारी शिक्षक या छात्र और प्रत्येक क्रान्तिकारी कामरेड को इस दहन-पात्र में परीक्षण के लिए, तपने-निखरने के लिए और क्रान्ति करने की क्षमता अर्जित करने के लिए तैयार होना चाहिए।

क्रान्तिकारी जनता एक बार जब सोलह सूत्रों को अच्छी तरह समझ जायेगी तो सांस्कृतिक क्रान्ति में उसके पास एक स्पष्ट दिशा होगी, अपने कामों में वह सही और गलत के बीच भेद कर सकेगी और अपने भविष्य की कार्रवाईयों की सही ढंग से योजना बना सकेगी। हमें सोलह सूत्रों के प्रकाश में आन्दोलन के पूर्ववर्ती भाग का विश्लेषण और मूल्यांकन करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि क्या सही है और क्या गलत है और कौन सी पद्धतियां सही हैं और कौन सी त्रुटिपूर्ण।

सांस्कृतिक क्रान्तिकारी ग्रुप, कमेटियां और कांग्रेसें संगठन के नये रूप हैं जिनके जरिए कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व के अंतर्गत जनता खुद ही सांस्कृतिक क्रान्ति करने के लिए उठ खड़ी हो रही है। सोलह सूत्रों की संविदाओं के अनुसार, पेरिस कम्यून के समान आम चुनाव कराये जाने जरूरी हैं। इस प्रश्न पर कुछ दिनों तक विचारों का आदान-प्रदान होना चाहिए कि किन लोगों को चुना जाये और कैसे चुना जाये और इस पर बार-बार बातचीत होनी चाहिए। यदि चुने गये लोग अयोग्य प्रमाणित हों तो उन्हें चुनावों द्वारा बदला जा सकता है या वापस बुलाया जा सकता है।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति एक विचारधारात्मक और राजनीतिक संघर्ष है जो लोगों की अन्तरात्मा को छूता है। यह संघष तर्क -युक्ति के द्वारा चलाया जाना चाहिए, दबाव या बल प्रयोग के द्वारा नहीं। सत्य सर्वहारा के हाथों में है। बुर्जुआ दक्षिणपंथियों के साथ भी तर्क-युक्ति के द्वारा संघर्ष चलाया जाना चाहिए, दबाव या बल नहीं प्रयोग किया जाना चाहिए। तर्क युक्ति के द्वारा संघर्ष बुर्जुआ दक्षिणपंथियों की घृणित विशिष्टताओं को पूरी तरह सामने लाने में और उनके भ्रमपूर्ण तर्कों को पूरी तरह खण्डित करने में सहायक होगा जिससे कि उन्हें अधिकतम संभव सीमा तक अलग-थलग किया जा सकेगा।

मजदूर, किसान, सैनिक, क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी और क्रान्तिकारी कार्यकर्ता दृढ़तापूर्वक सोलह सूत्रों का समर्थन करते हैं। हम, क्रान्तिकारी जनसमुदाय को बड़ी ईमानदारी से इन सोलह सूत्रों का अध्ययन करना चाहिए और अपने स्कूल या यूनिट में आंदोलन की वास्तविक स्थिति का आकलन करने में इनका हथियार की तरह इस्तेमाल करना चाहिए। हमें वह करना जारी रखना चाहिए जो सोलह सूत्रों के अनुरूप हो और उसे सुधार लेना चाहिए जो इनके अनुरूप न हो। स्कूलों और यूनिटों के जो प्रभारी लोग सोलह सूत्रों का विरोध करते हैं, उन्हें बेनकाब किया जाना चाहिए और हटा दिया जाना चाहिए।

(पीकिङ रिव्यू, नं. 34, अगस्त, 1966)

को जनता के घनिष्ठ सम्पर्क में रखने वाले उत्कृष्ट सेतु हैं। ये सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शक्ति के साधन ('आर्गन ऑफ पावर') हैं।

हजारों वर्षों के दौरान शोषक वर्गों द्वारा छोड़े गये पुराने विचारों, संस्कृति, रीति-रिवाजों और आदतों के विरुद्ध सर्वहारा का संघर्ष अवश्य ही एक बहुत, बहुत लम्बा समय लेगा। इसलिए, सांस्कृतिक क्रान्तिकारी ग्रुप, कमेटियां और कांग्रेसें अस्थायी संगठन नहीं, बल्कि स्थायी, टिकाऊ जनसंगठन होंगी। ये न केवल कालेजों, स्कूलों और सरकार एवं अन्य संगठनों के लिए, बल्कि आम तौर पर कारखानों, खदानों, अन्य उद्यमों, शहरी जिलों और गांवों के लिए भी उपयुक्त हैं।

सांस्कृतिक क्रान्तिकारी कांग्रेसों के सदस्यों के चुनाव के लिए, पेरिस कम्यून के समान, आम चुनावों की व्यवस्था लागू करनी जरूरी है। उम्मीदवारों की सूचियां क्रान्तिकारी जनता द्वारा पूरे विचार-विमर्श के बाद प्रस्तुत की जानी चाहिए और जनता द्वारा उन सूचियों पर बार-बार विचार-विमर्श के बाद चुनाव होने चाहिए।

सांस्कृतिक क्रान्तिकारी ग्रुपों और कमेटियों के सदस्यों और सांस्कृतिक क्रान्तिकारी कांग्रेसों के चुने हुए प्रतिनिधियों की किसी भी समय आलोचना करने का जनता को अधिकार है। यदि ये सदस्य या प्रतिनिधि अयोग्य सिद्ध होते हैं तो उन्हें चुनाव के द्वारा बदला जा सकता है या बहस-मुबाहसे के बाद जनता द्वारा वापस बुलाया जा सकता है।

कालेजों और स्कूलों में सांस्कृतिक क्रान्तिकारी ग्रुपों, कमेटियों और कांग्रेसों में मुख्यतः क्रान्तिकारी छात्रों के प्रतिनिधि होने चाहिए। साथ ही, उनमें क्रान्तिकारी शिक्षण एवं प्रशासकीय स्टाफ तथा मजदूरों के भी प्रतिनिधियों की एक निश्चित संख्या होनी चाहिए।

10. शैक्षिक सुधार

पुरानी शिक्षा व्यवस्था और शिक्षण के पुराने सिद्धान्तों एवं पद्धतियों का रूपान्तरण महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यभार है।

इस महान सांस्कृतिक क्रान्ति में, हमारे स्कूलों पर बुर्जुआ बुद्धिजीवियों के हावी होने की परिघटना को पूरी तरह बदल देना होगा।

हर प्रकार के स्कूल में हमें सर्वहारा राजनीति की सेवा करने वाली शिक्षा और उत्पादक श्रम के साथ शिक्षा को जोड़ने की कामरेड माओ त्से-तुङ द्वारा विकसित की गयी नीति व्यापक तौर पर लागू करनी होगी, ताकि शिक्षा प्राप्त करने वाले लोगों को नैतिक, बौद्धिक एवं शारीरिक तौर पर विकसित होने में तथा समाजवादी चेतना एवं संस्कृति से लैस मजदूर बनने में सक्षम बनाया जा सके।

स्कूली शिक्षा की अवधि घटा दी जानी चाहिए। पाठ्यक्रम अपेक्षतया कम लेकिन बेहतर होने चाहिए। शिक्षण-सामग्री व्यापक तौर पर रूपान्तरित की जानी चाहिए और कुछ मामलों में जटिल सामग्री के सरलीकरण से इसकी शुरुआत कर दी जानी चाहिए। हालांकि छात्रों का मुख्य काम अध्ययन करना है, पर उन्हें दूसरी चीजें भी सीखनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि, अपने अध्ययन के साथ ही उन्हें औद्योगिक काम, खेती-बाड़ी और सैनिक मामलों को भी सीखना-समझना चाहिए और जब सांस्कृतिक क्रान्ति के संघर्ष जारी हों तो उन संघर्षों में बुर्जुआ वर्ग की आलोचना करने में हिस्सा लेना चाहिए।

11. प्रेस में नाम लेकर आलोचना करने का सवाल

सांस्कृतिक क्रान्ति के जनान्दोलन के दौरान, बुर्जुआ और सामन्ती विचारधारा की आलोचना को सर्वहारा विश्व-दृष्टिकोण और मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा के प्रसार के साथ अच्छी तरह जोड़ा जाना चाहिए।

पार्टी के भीतर छद्मवेश में घुस आये विशिष्ट बुर्जुआ प्रतिनिधियों और विशिष्ट प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ अकादमिक 'अधिकारी विद्वानों' की आलोचना आयोजित की जानी चाहिए और इसमें दर्शनशास्त्र इतिहास, राजनीतिक अर्थशास्त्र और शिक्षा में तथा साहित्य-कला की कृतियों एवं सिद्धान्तों में, प्राकृतिक विज्ञान के सिद्धान्तों में और दूसरे क्षेत्रों में मौजूद विविध प्रकार के प्रतिक्रियावादी विचारों की आलोचना भी शामिल होनी चाहिए।

किसी भी व्यक्ति की प्रेस में नाम लेकर आलोचना करने का निर्णय उसी स्तर की पार्टी कमेटी द्वारा विचार-विमर्श के बाद लिया जाना चाहिए, और कुछ मामलों में इसे स्वीकृति के लिए ऊपरी स्तर की कमेटी के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

12. वैज्ञानिकों, तकनीशियनों और कार्यकारी स्टाफों के आम सदस्यों के प्रति नीति

जहां तक वैज्ञानिकों, तकनीशियनों और कार्यकारी स्टाफों के आम सदस्यों का सवाल है, जब तक वे देशभक्त हैं, कर्मठतापूर्वक काम करते हैं, पार्टी और समाजवाद के विरुद्ध नहीं है,, और किसी बाहरी देश के साथ अवैध सम्बन्ध नहीं रखते, वर्तमान आन्दोलन में हमें 'एकता, आलोचना, एकता' की नीति लागू करना जारी रखना चाहिए। उन वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक एवं तकनीकी कर्मियों का विशेष ख्याल रखा जाना चाहिए जिन्होंने महत्वपूर्ण काम किये हैं। उनके विश्व दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली को क्रमशः रूपान्तरित करने में उनकी सहायता करने के प्रयास किये जाने चाहिए।

13. शहरों और देहातों में जारी समाजवादी शिक्षा आन्दोलन के साथ एकता कायम करने की व्यवस्था करने का सवाल

बड़े और मंझोले शहरों में सांस्कृतिक और शैक्षिक इकाइयां और पार्टी एवं सरकार के नेतृत्वकारी अंग वर्तमान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के संकेन्द्रण-बिन्दु हैं।

महान सांस्कृतिक क्रान्ति ने शहरों और देहातों, दोनों ही जगहों पर समाजवादी शिक्षा आंदोलन को समृद्ध किया है और इसके स्तर को ऊंचा उठाया है। इन दोनों आंदोलनों को घनिष्ठ रूप से जोड़कर चलाने के प्रयास किये जाने चाहिए। विशिष्ट परिस्थितियों की रोशनी में विभिन्न क्षेत्रों और विभागों में इसके लिए व्यवस्था की जानी चाहिए।

देहातों में और नगरों के उद्यमों में इस समय चल रहे समाजवादी शिक्षा आंदोलन को उन जगहों पर अस्त-व्यस्त नहीं किया जाना चाहिए जहां मूल व्यवस्थाएं अनुकूल हैं और आंदोलन ठीक से चल रहा है, बल्कि इसे मूल व्यवस्थाओं के अनुरूप जारी रखा जाना चाहिए। लेकिन, वर्तमान महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में उठने वाले सवालों को सही समय पर विचार-विमर्श के लिए जनता के सामने रखा जाना चाहिए, ताकि सर्वहारा विचारधारा को जोरदार तरीके से और आगे विकसित किया जा सके और बुर्जुआ विचारधारा का निर्मूलन किया जा सके।

कुछ जगहों पर समाजवादी शिक्षा आंदोलन को संवेग प्रदान करने के लिए और राजनीति, विचारधारा, संगठन एवं अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों में चीजों की सफाई करने के लिए महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का केन्दबिन्दु के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। जहां भी स्थानीय पार्टी-कमेटी इसे उपयुक्त समझती है, वहां ऐसा किया जा सकता है।

14. क्रान्ति पर दृढ़ पकड़ कायम रखो और उत्पादन को बढ़ावा दो

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का उद्देश्य जनता की विचारधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना और इसके परिणामस्वरूप सभी कार्यक्षेत्रों में महत्तर, तीव्रतर, बेहतर और अधिक लाभकारी परिणाम प्राप्त करना है। यदि जनता पूरी तरह जागृत हो और समुचित व्यवस्था मौजूद हो

तो सांस्कृतिक क्रान्ति और उत्पादन दोनों को, बिना एक -दूसरे को बाधा पहुंचाये, साथ-साथ चलाना सम्भव है और साथ ही अपने सभी कामों में ऊंची गुणवत्ता की गारण्टी भी की जा सकती है।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति हमारे देश में सामाजिक उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए एक प्रबल प्रेरक शक्ति है। महान सांस्कृतिक क्रान्ति की उत्पादन के विकास के समतुल्य रखने का कोई भी विचार गलत है।

15. सशस्त्र सेनाएं

सशस्त्र सेनाओं में, सांस्कृतिक क्रान्ति और समाजवादी शिक्षा आन्दोलन पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के सैन्य आयोग और जनमुक्ति सेना के सामान्य राजनीतिक विभाग के निर्देशों के अनुसार चलाया जाना चाहिए।

16. माओ त्से-तुङ विचारधारा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में कर्मो का मार्गदर्शक है

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में, माओ त्से-तुङ विचारधारा के महान लाल झण्डे को ऊपर उठाये रखना और सर्वहारा राजनीति को कमान में रखना अनिवार्य है। अध्यक्ष माओ त्से-तुङ की रचनाओं के सर्जनात्मक अध्ययन और अमल के आन्दोलन को मजदूरों, किसानों और सैनिकों के जनसमुदाय के बीच, कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों के बीच आगे बढ़ाया जाना चाहिए और माओ विचाराधारा को सांस्कृतिक क्रान्ति में कर्मो का मार्गदर्शक मानना चाहिए।

इस जटिल महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में, सभी स्तरों की पार्टी-कमेटियों को अध्यक्ष माओ की रचनाओं का अध्ययन और उन्हें अमल में लाने का काम अत्यधिक कर्तव्यनिष्ठा के साथ और सर्जनात्मक ढंग से करना चाहिए। विशेष तौर पर उन्हें सांस्कृतिक क्रान्ति के बारे में और पार्टी के नेतृत्व के तरीकों के बारे में माओ की रचनाओं का, जैसे, 'नव जनवाद के बारे में' 'येनान की कला-साहित्य गोष्ठी में भाषण', 'जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही तरीके से हल करने के बारे में', 'चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रचार कार्य के बारे में भाषण', 'नेतृत्व के तरीकों से सम्बन्धित कुछ सवाल' 'पार्टी-कमेटियों के काम करने के तरीके' जैसी रचनाओं का बार-बार अध्ययन करना चाहिए।

हर स्तर की पार्टी-कमेटियों को अध्यक्ष माओ द्वारा बरसों से दिये जा रहे निर्देशों का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए, यानी कि उन्हें 'जनसमुदाय से लेकर जन समुदाय को लौटा देने' की जनदिशा को व्यापक तौर पर लागू करना चाहिए और यह कि उन्हें शिक्षक बनने से पहले शिष्य होना चाहिए। उन्हें एकतरफा या संकीर्ण होने से बचने की कोशिश करनी चाहिए। उन्हें भौतिकवादी द्वंद्ववाद की हिफाजत करनी चाहिए और अधिभौतिकवाद एवं वितण्डावाद का विरोध करना चाहिए।

कामरेड माओ त्से-तुङ की अध्यक्षता वाली पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के नेतृत्व में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति को देदीप्यमान विजय प्राप्त होनी ही है।

सांस्कृतिक क्रान्ति के सैद्धान्तिक आधार के बारे में

• जार्ज थॉमसन

चीन में **सांस्कृतिक क्रान्ति** 1917 के बाद की रूसी क्रान्ति के बाद की सबसे बड़ी ऐतिहासिक घटना है। 'सर्वहारा अधिनायकत्व के सुदृढ़ीकरण, पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने और समाजवाद के निर्माण' के उद्देश्य से शुरू की गई इस क्रांति का नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी और **माओ त्से-तुङ** ने किया। यह 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के अंतर्गत क्रांति को जारी रखने' के माओ के सिद्धान्त पर आधारित है। इस लेख का उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि किस प्रकार माओ का यह सिद्धान्त लेनिन द्वारा 1917 की क्रान्ति के दौरान और उसके बाद **लेनिन** द्वारा विकसित और व्यवहृत सर्वहारा अधिनायकत्व के मार्क्सवादी सिद्धान्त पर आधारित है। लेनिन ने लिखा है :

''वे लोग अभी मार्क्सवादी नहीं बने हैं जो केवल वर्ग-संघर्ष को स्वीकार करते हैं..... सिर्फ वही एक मार्क्सवादी है जो वर्ग-संघर्ष की स्वीकृति को **सर्वहारा के अधिनायकत्व** की स्वीकृति तक विस्तारित करता है....यही वह कसौटी है जिस पर मार्क्सवाद की **वास्तविक** समझदारी और स्वीकृति को परखा जाना चाहिए।''

('राज्य और क्रान्ति')

बुर्जुआ वर्ग का अधिनायकत्व

वर्ग समाज शोषण पर आधारित होता है। शोषक ही शासक वर्ग होते हैं और शोषित जन शासित वर्ग होते हैं। शासक वर्ग अपना शासन राज्य के साधनों के जरिए कायम करता है जो कि एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग या वर्गो के बलपूर्वक दमन का यंत्र होता है। इसके प्रमुख उपकरण सेना और पुलिस होते हैं।

इस तरह, दास स्वामित्व वाला, सामंती और पूंजीवादी -- वर्ग समाज का हर रूप शासक वर्ग का अधिनायकत्व होता है। पूंजीवादी -- यानी बुर्जुआ -- समाज में यह कम या ज्यादा जनवादी हो सकता है; यह सार्विक मताधिकार पर आधारित संसदीय चुनावों की इजाजत भी दे सकता है, लेकिन फिर भी यह एक अधिनायकत्व ही है। 'यह हर हाल में धनी के लिए जनवाद होता है और गरीब के लिए झांसापट्टी' (*लेनिनः 'सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की'*) --यानी कि यह 'संसदीय प्रणाली के मुखौटे वाला बुर्जुआ वर्ग का अधिनायकत्व होता है' (*कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 30, पृ. 100)।

इसलिए मजदूरों से सर्वाधिक सुसंगत और अटल क्रांतिकारी जनवाद की स्पिरिट के साथ बुर्जुआ जनवादी अधिकारों के अधिकतम इस्तेमाल का पुरजोर आग्रह करने (देखिए, कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड - 21, पृ. 409) के साथ ही लेनिन ने उन्हें आगाह भी किया कि वे इस मुगालते में न आ जायें कि वे संसदीय साधनों से सत्ता हासिल कर सकते हैं (देखिए, *कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड - 25, पृ. 388, 400-4, खण्ड - 29, पृ. 510, खण्ड - 30, पृ. 263-4) उन्होंने लिखा है, ''समाजवाद की जीत की मूलभूत शर्तों में से एक यह है कि मजदूरों को शस्त्रसज्जित किया जाये और पूंजीपति वर्ग को निशशस्त्र कर दिया जाये।'' (देखिए, कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड-29, पृ. 108, यह भी देखें, खण्ड 23, पृ. 325-6)। माओ त्से-तुङ का यही मतलब है, जब वे कहते हैं कि ''राजनीतिक सत्ता का जन्म बन्दूक की नली से होता है।''

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व

सत्ता हासिल करने के बाद सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ जनवाद का उन्मूलन कर देता है और इसके स्थान पर समाजवादी जनवाद कायम करता

है :

"सर्वहारा वर्ग सत्ता हासिल कर लेता है, शासक वर्ग बन जाता है, बुर्जुआ संसदवाद और बुर्जुआ जनवाद को कुचल देता है, पूंजीवाद की ओर वापस लौटने के **सभी** अन्य वर्गों के **सभी** प्रयासों को दबा देता है, मेहनतकश अवाम को **वास्तविक** आजादी और जनवाद देता है (जो केवल तभी अमल में आ सकता है जब उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व का **खात्मा कर दिया जाये**) और बुर्जुआ वर्ग से जो कुछ भी **ले लिया गया रहता है,** उसे सिर्फ सर्वहारा वर्ग के 'अधिकार में' ही नहीं देता है, बल्कि **वास्तविक** इस्तेमाल के लिए देता है" *(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 29, पृ. 511)।

और इस तरह पहली बार ऐसा होता है कि जनवाद "थैलीशाहों के लिए जनवाद नहीं बल्कि गरीबों के लिए जनवाद हो जाता है, जनता के लिए जनवाद हो जाता है" *(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 25, पृ. 461-2)।

बुर्जुआ वर्ग के सत्ताच्युत कर दिये जाने के बाद वर्ग-संघर्ष समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि कई मामलों में पहले से भी अधिक उग्र हो जाता है :

"सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का अर्थ है नये वर्ग के द्वारा एक **पहले से भी अधिक शक्तिशाली** शत्रु, बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध सर्वाधिक दृढ़निश्चयी और निर्मम संघर्ष जिसका प्रतिरोध सत्ताच्युत होने (भले ही सिर्फ एक देश में) के बाद **दस गुना** बढ़ गया है, और जिसकी ताकत सिर्फ अन्तरराष्ट्रीय पूंजी की शक्ति में ही नहीं, सिर्फ उसके अन्तरराष्ट्रीय रिश्तों की शक्ति और टिकाऊपन में ही नहीं, बल्कि **आदतों की ताकत** में भी निहित है और **छोटे पैमाने के उत्पादन** की शक्ति में भी निहित है। दुर्भाग्यवश, छोटे पैमाने का उत्पादन अभी भी दुनिया में व्यापक तौर पर फैला हुआ है, और छोटे पैमाने का उत्पादन प्रतिदिन, प्रतिघण्टा, स्वतःस्फूर्त रूप से और बड़े पैमाने पर पूंजीवाद और बुर्जुआ वर्ग **पैदा करता रहता है"** *(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 31, पृ. 23-24, साथ ही यह भी देखें, खण्ड 29 पृ. 189 खण्ड 30, पृ. 115)।

"हमारे देश में बुर्जुआ वर्ग पर जीत हासिल हो गयी है, पर अभी इसे निर्मूल नहीं किया जा सका है, अभी इसे नष्ट नहीं किया जा सका है और यहां तक कि अभी इसे पूरी तरह तोड़ा भी नहीं जा सका है। यही कारण है कि आज हमें बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ संघर्ष के एक नये और उच्चतर रूप का सामना करना पड़ रहा है, पूंजीपति वर्ग के सम्पत्तिहरण के अत्यधिक सरल कार्यभार से ऐसी परिस्थितियां तैयार करने के बहुत अधिक जटिलतर और कठिनतर कार्यभार में संक्रमण का सामना करना पड़ रहा है, जिन परिस्थितियों में बुर्जुआ वर्ग का जीवित रह पाना या एक नये बुर्जुआ वर्ग का जन्म ले पाना असंभव हो जाये" *(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 27, पृ. 244-5)।

"यह अधिनायकत्व शोषकों, पूंजीपतियों, भूस्वामियों और उनके कारकूनों के प्रतिरोध को कुचलने के लिए बल के निर्मम, प्रचण्ड, तीव्र और दृढ़निश्चयी प्रयोग की मांग करता है.... लेकिन सर्वहारा अधिनायकत्व का सारतत्व सिर्फ बल में, या यहां तक कि मुख्यतः बल में ही निहित नहीं है। इसकी मुख्य विशेषता मेहनतकश अवाम के अगुआ दस्तों को, उनके हरावल का, उनके एकमात्र नेता सर्वहारा वर्ग का संगठन और अनुशासन है, जिसका लक्ष्य समाजवाद का निर्माण करना, समाज के वर्गों में बंटवारे को मिटा देना, समाज के सभी सदस्यों को मेहनतकश जनता का हिस्सा बना देना और मनुष्य द्वारा मनुष्य के हर प्रकार के शोषण के आधार को समाप्त कर देना है" *(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 29, पृ. 388)।

"वर्गों का उन्मूलन एक लम्बे, कठिन और हठी **वर्ग संघर्ष** की मांग करता है, जो पूंजीवादी शासन के उखाड़ फेंके **जाने के बाद**, बुर्जुआ राज्य के विध्वंस **के बाद**, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना **के बाद**, **लुप्त नहीं होता**...... बल्कि सिर्फ अपने रूप बदल लेता है और कई मामलों में और अधिक उग्र हो उठता है" *(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 29, पृ. 389)।

"सर्वहारा अधिनायकत्व का अर्थ वर्ग-संघर्ष की समाप्ति नहीं, बल्कि नये रूप में और नये हथियारों के साथ इसका जारी रहना है। यह अधिनायकत्व तबतक अपरिहार्य है जबतक कि वर्ग मौजूद रहते हैं, जबतक कि एक देश में सत्ताच्युत बुर्जुआ वर्ग अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर अपने हमलों को दसगुना घनीभूत रूप में जारी रखता है"*(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 32, पृ. 460)।

इस तरह, लेनिन के अनुसार, बुर्जुआ वर्ग को उखाड़ फेंकने के बाद एक लम्बे समय तक सर्वहारा वर्ग के लिए अपना अधिनायकत्व कायम रखना अनिवार्य है ताकि ऐसी परिस्थितियां तैयार हो सकें जिनमें "बुर्जुआ वर्ग का जीवित रह पाना या एक नये बुर्जुआ वर्ग का जन्म ले पाना असंभव हो जाये।" केवल तभी जाकर वर्ग संघर्ष का अंत हो सकेगा।

माओ त्से-तुङ ने लेनिन की अवस्थिति की एक बार फिर अभिपुष्टि की :

"समाजवादी समाज की काफी लम्बी ऐतिहासिक अवधि होती है। समाजवाद की इस पूरी ऐतिहासिक अवधि में, वर्ग, वर्ग-अन्तरविरोध और वर्ग-संघर्ष मौजूद रहते हैं, समाजवादी रास्ते और पूंजीवादी रास्ते के बीच संघर्ष जारी रहता है और पूंजीवादी पुनर्स्थापना का खतरा बना रहता है। हमें इस संघर्ष की दीर्घकालिक और जटिल प्रकृति को अवश्य पहचानना चाहिए। हमें अपनी चौकसी को उन्नत करना चाहिए। हमें समाजवादी शिक्षा का संचालन करना चाहिए। हमें वर्ग अन्तरविरोधों, और वर्ग संघर्ष को सही ढंग से समझना और संचालित करना चाहिए, हमें अपने और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोधों और जनता के आपसी अन्तरविरोधों के बीच फर्क करना चाहिए और उन्हें सही तरीके से हल करना चाहिए। अन्यथा हमारे देश जैसा एक समाजवादी देश अपने विपरीत में बदल जायेगा और पतित हो जायेगा और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो जायेगी।"

सांस्कृतिक क्रान्ति

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं कांग्रेस (1919) में बोलते हुए लेनिन ने कहा था :

"नौकरशाही के विरुद्ध हम अंत तक केवल तभी लड़ सकते हैं, उस पर सम्पूर्ण विजय केवल तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब पूरी आबादी सरकार के काम में भागीदारी करे। बुर्जुआ गणतंत्रों में यह न केवल असंभव है, बल्कि **कानून स्वयं इसे रोकता है**। सर्वोत्कृष्ट बुर्जुआ गणतंत्रों में भी, चाहे वे जितने भी जनवादी क्यों न हों, हजारों ऐसी कानूनी बाधाएं होती हैं जो मेहनतकश जनता को सरकार के कामों में भागीदारी से रोकती हैं। हमने किया सिर्फ यह है कि इन बाधाओं को समाप्त कर दिया है, लेकिन अभी भी हम उस मंजिल पर नहीं पहुंचे हैं जहां मेहनतकश जनता सरकार के कामों में भागीदारी कर सके। कानून के अतिरिक्त, अभी भी सांस्कृतिक स्तर का सवाल मौजूद है, जिसे आप किसी कानून के अधीन नहीं कर सकते। इस निम्न सांस्कृतिक स्तर का नतीजा यह है कि सोवियत, जो अपने कार्यक्रम के हिसाब से मेहनतकश जनता **द्वारा** सरकार की निकाय हैं, वे वास्तव में सर्वहारा वर्ग के सर्वाधिक उन्नत हिस्से के द्वारा मेहनतकश जनता **के लिए** सरकार की निकाय हैं, लेकिन अभी भी पूरी मेहनतकश जनता द्वारा सरकार की निकाय नहीं बन पाई हैं" *(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 29, पृ. 183)।

लेनिन ने इस विषय को एक बार फिर ग्यारहवीं कांग्रेस में उठाया और एक "सांस्कृतिक क्रान्ति" के लिए आहान करते हुए नारा प्रस्तुत

किया। तदनंतर इन नारे के तात्पर्य की स्तालिन द्वारा इस प्रकार व्याख्या की गई :

''नौकरशाही का सबसे सुनिश्चित निदान है मजदूरों और किसानों के सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाना। राज्यतंत्र में नौकरशाही को लानत भेजा जा सकता है और उसकी भर्त्सना की जा सकती है, हमारे व्यावहारिक कामों में नौकरशाही की निन्दा की जा सकती है और कोसा जा सकता है : लेकिन जब तक मेहनतकश जनसमुदाय एक ऐसा सुनिश्चित सांस्कृतिक स्तर हासिल नहीं कर लेगा जो राज्यतंत्र को स्वयं मेहनतकश अवाम द्वारा नीचे से नियंत्रित करने की संभावना, इच्छा और क्षमता उत्पन्न कर दे, तबतक सबकुछ के बावजूद नौकरशाही मौजूद रहेगी... सांस्कृतिक क्रान्ति के बारे में लेनिन के नारे का यही मतलब और महत्व है।'' *(स्तालिन : कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 10, पृ. 330-1)।

''और अंत में, हमारे आर्थिक संगठन.... ......इन सभी संगठनों में नौकरशाही के खात्मे के लिए हमें क्या करना होगा? इसका केवल एक ही उपाय है और वह यह कि नीचे से नियंत्रण को संगठित किया जाये, हमारी संस्थाओं में नौकरशाही की आलोचना संगठित की जाये, उनकी कमियों और गलतियों की व्यापक मेहनतकश जनता द्वारा आलोचना की जाये।'' *(स्तालिन : कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 11, पृ. 77)।

और आगे, कम्युनिज्म की शुरुआत तक की स्थिति पर नजर डालते हुए लेनिन ने स्पष्ट किया कि बड़े पैमाने के समाजवादी उत्पादन के विकास के जरिए श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि सर्वहारा वर्ग दो कामों को पूरा करे -- बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध संघर्ष को अंत तक चलाये और ''एक नया, उन्नततर सामाजिक बाण्ड, एक सामाजिक अनुशासन, वर्ग-सचेत और ऐक्यबद्ध मेहनतकश जनता का अनुशासन'' पैदा करे। उन्होंने आगे कहा :

''यह दूसरा काम पहले काम से अधिक कठिन है क्योंकि इसे महज बहादुराना सरगर्मी की कार्रवाइयों से पूरा नहीं किया जा सकता; इसके लिए **सीधे-सादे, रोजमर्रा के** कामों में सर्वाधिक दीर्घकालिक, सर्वाधिक दृढ़ और सर्वाधिक कठिन जनसामूहिक शौर्य की आवश्यकता होती है'' *(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 29, पृ. 423)।

नये कम्युनिस्ट सुब्बोतनिकों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है :

''जाहिर तौर पर, यह सिर्फ एक शुरुआत है, लेकिन यह एक अपवादपूर्ण रूप में महान महत्व वाली शुरुआत है। यह एक ऐसी क्रान्ति की शुरुआत है जो बुर्जुआ वर्ग को सत्ताच्युत करने की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन, अधिक ठोस, अधिक रैडिकल और अधिक निर्णायक है, क्योंकि यह हमारे खुद के दकियानूसीपन, अनुशासनहीनता, निम्नपूंजीवादी अहंकार पर एक जीत है, जघन्य पूंजीवाद से मजदूरों-किसानों को विरासत के रूप में हासिल आदतों पर एक जीत है। जब **यह** जीत मुकम्मिल हो जायेगी, तभी जाकर नया सामाजिक अनुशासन, समाजवादी अनुशासन पैदा हो सकेगा, तभी, और केवल तभी पूंजीवाद की वापसी असंभव हो पायेगी और कम्युनिज्म वास्तव में अजेय हो पायेगा'' *(कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 29, पृ. 411-12)।

चीन में जारी सांस्कृतिक क्रान्ति ने बुनियादी तौर पर हर मायने में उन्हीं चीजों को साकार कर दिखाया है जो लेनिन ने 1917 के बाद के वर्षों में सोवियत संघ के लिए सोचा था। यह उन्हीं जरूरतों के तकाजों से प्रेरित थी, उन्हीं खतरों को दूर करने के लिए इसकी योजना बनाई गई थी और यह उसी सैद्धान्तिक आधारशिला पर खड़ी की गई थी। साथ ही, माओ त्से-तुङ के नेतृत्व के जरिए यह उन तमाम, सकारात्मक और नकारात्मक ऐतिहासिक अनुभवों से समृद्ध और संबलित भी की गई है जो सोवियत जनता और चीनी जनता ने विगत पचास वर्षों के दौरान अर्जित किया है। और सर्वोपरि बात यह कि यह चीन में ही हुआ है कि माओ के नेतृत्व में मेहनतकश जन-समुदाय ने निरंतर, सामूहिक आलोचना और आत्मालोचना में लग जाने के लिए, संघर्ष की हर मंजिल पर अपने अनुभवों का विश्लेषण करने के लिए और इस तरह, अपना सांस्कृतिक स्तर उस मुकाम तक ऊंचा उठाने के लिए खुद को गोलबंद कर लिया है, जिस मुकाम पर पहुंचकर ''मेहनतकश वर्ग हर चीज में अपना नेतृत्व लागू कर सके।'' लेकिन संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ है, जैसाकि माओ त्से-तुङ ने कहा है :

''हमने महान जीत हासिल की है। लेकिन पराजित वर्ग अभी भी संघर्ष जारी रखेगा। ये लोग अभी भी इर्द-गिर्द हैं और यह वर्ग अभी भी मौजूद है। इसलिए हम अंतिम जीत की बात नहीं कर सकते। कई दशाब्दियों तक नहीं कर सकते। हमें अपनी चौकसी कदापि ढीली नहीं करनी चाहिए। लेनिनवादी दृष्टिकोण के अनुसार, एक समाजवादी देश की अंतिम विजय के लिए सिर्फ घरेलू स्तर पर ही सर्वहारा वर्ग और व्यापक जनसमुदाय के प्रयासों की आवश्यकता नहीं होती है, बल्कि इसके लिए विश्व क्रांति की विजय और पूरे भूमण्डल पर मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की व्यवस्था की समाप्ति भी जरूरी है जिसके बाद पूरी मानवता मुक्त हो जायेगी। इसलिए, हमारे देश में क्रान्ति की अंतिम विजय की हल्के ढंग से बात करना गलत है; यह लेनिनवाद के विपरीत है और तथ्यों से मेल नहीं खाती।''

इन शिक्षाओं पर दृढ़तापूर्वक आचरण करते हुए चीनी जनता ने पूरी दुनिया के सामने एक मिसाल पेश की है।

('चाइना पॉलिसी स्टडी ग्रुप', लंदन की मासिक बुलेटिन 'ब्रॉडशीट' के अक्टूबर 1969 अंक से साभार)

''लेकिन इतिहास क्या है? यदि इतिहास का अर्थ असाधारण महत्वोन्मादी नामों और महान युद्धों का सिलसिला मात्र है तो भारतीय इतिहास लिखना कठिन होगा। लेकिन किन्हीं लोगों के राजा का नाम जानने की अपेक्षा यदि इस बात का महत्व अधिक हो कि उन लोगों के पास हल था या नहीं, तो फिर भारत का एक इतिहास है... मैं यह परिभाषा स्वीकार करूंगा: उत्पादन के साधनों और संबंधों में सतत् परिवर्तनों की कालक्रमानुसार प्रस्तुति ही इतिहास है।

इस परिभाषा का लाभ यह है कि ऐतिहासिक वृतांतों की श्रृंखला से भिन्न इतिहास लिखा जा सकता है।''

- डी.डी. कोसाम्बी

स्तालिन के जन्मदिन (22 दिसम्बर) के अवसर पर

स्तालिन : एक मूल्यांकन

अंतरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में स्तालिन के मूल्यांकन का प्रश्न एक गंभीर प्रश्न के रूप में आज भी मौजूद हैं। साम्राज्यवादी प्रेस, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान फासीवाद को धूल चटाने वाले स्तालिन को 'अंकल जो' कहा करता था, वह लगातार स्तालिन के बारे में कुत्सा प्रचार करता रहा है। लासाल–बाकुनिन–काउत्स्की के यूरोपीय सामाजिक जनवादी चेले, नववामपंथी रंगरूट, "मार्क्सवादी" किताबी कीड़े और अल ब्राउडर – टीटो–ख्रुश्चेव के वंशज संशोधनवादी स्तालिन को कोसते हुए हमेशा ही झाग फेंकते रहे हैं और ईमानदार कम्युनिस्ट कतारों एवं नई पीढ़ियों को इतिहास के बारे में गंभीर रूप से दिग्भ्रमित करते रहे हैं।

माओ त्से–तुङ और उनके नेतृत्व में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने एक ओर जहां स्तालिन की दार्शनिक–विचारधारात्मक गलतियों की हमेशा ही आलोचना की और उनके विरुद्ध संघर्ष चलाया, वहीं दूसरी ओर उसने उनके अवदानों का वस्तुपरक मूल्यांकन करते हुए तमाम दुष्प्रचारों का मुंहतोड़ उत्तर दिया और एक महान सर्वहारा क्रान्तिकारी के रूप में स्तालिन का मूल्यांकन प्रस्तुत किया।

जिनके लिए विचारधारा कर्मों का मार्गदर्शक सिद्धान्त है, उनके लिए स्तालिन के मूल्यांकन का प्रश्न एक जीवित प्रश्न है। हम यहां एक मार्क्सवादी–लेनिनवादी दस्तावेज (बहस के लिए प्रस्तुत मसविदा) का स्तालिन विषयक अंश पाठकों के विचार–मंथन के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। – सम्पादक

1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद स्तालिन ने अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व और अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन का मार्गदर्शन किया। उन्होंने सर्वहारा विचारधारा में लेनिन के अवदानों की हिफाजत की और यह सूत्रबद्ध सार-संकलन प्रस्तुत किया कि लेनिनवाद साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्तियों के युग का मार्क्सवाद है। दक्षिणपंथियों और "वामपंथी" अवसरवादियों से अनवरत संघर्ष चलाते हुए उन्होंने सोवियत संघ को समाजवाद के रास्ते पर आगे बढ़ाया। त्रात्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव और बुखारिन आदि के हमलों को परास्त करते हुए उन्होंने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी उसूलों की तथा बोल्शेविक पार्टी और सोवियत राज्य के सर्वहारा चरित्र की हिफाजत की।

स्तालिन ने उद्योगों के स्वामित्व के समाजीकरण, कृषि के सामूहिकीकरण और एक पिछड़ी हुई उत्पादक शक्तियों वाले देश की अर्थव्यवस्था को एक सर्वथा नई बुनियाद पर खड़ा करके अपूर्व गति से उन्नत बनाने के जटिल और प्रचण्ड महाकाव्यात्मक संघर्ष में सोवियत संघ की जनता और पार्टी को नेतृत्व प्रदान किया। समाजवादी सामूहिक स्वामित्व और राजकीय स्वामित्व की स्थापना करके, स्वामित्व के समाजीकरण के काम को मुख्यतः पूरा करके और अर्थतंत्र के समाजवादी नियोजन की शुरुआत करके स्तालिन के नेतृत्व में बोल्शेविक पार्टी ने दो दशक के भीतर ही एक शक्तिशाली समाजवादी अर्थव्यवस्था का निर्माण कर डाला। यह सब कुछ मानव इतिहास में पहली बार हो रहा था और निस्संदेह, इस दौरान कुछ छोटी और कुछ बड़ी गलतियां भी हुईं, पर बुर्जुआ प्रचारकों और भाड़े के टट्टू कलमघसीटों के तमाम प्रचारों के विपरीत इतिहास की अकाट्य सच्चाई यह है कि स्तालिनकालीन समाजवादी निर्माण के दौर में करोड़ों-करोड़ मजदूरों और गरीब किसानों की पहलकदमी और सर्जनात्मकता पहली बार इतने बड़े पैमाने पर जागृत हुई थी, जिसकी उपलब्धियां हर मायने में चमत्कारिक थीं। शताब्दियों पुरानी दासता और उत्पीड़न के सम्बन्धों को नष्ट करने और हजारों वर्षों पुराने वर्ग समाज के लम्बे इतिहास से निर्णायक विच्छेद करने के लिए उठ खड़ी हुई जनता ने अभूतपूर्व क्षमता, दृढ़ता, शक्ति और सर्जनात्मकता के बल पर पूरे पूंजीवादी विश्व की घेरेबंदी और दबाव के बीच समाजवाद की स्थापना के लिए जुझते हुए, जीवन के हर क्षेत्र में विस्मयकारी कीर्तिमान स्थापित किये।

स्तालिन ने पूरब के देशों में उपनिवेशवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्ष के विकास, वहां कम्युनिस्ट पार्टियों के निर्माण एवं गठन और राष्ट्रीय जनवाद की लड़ाई में संयुक्त मोर्चे के निर्माण पर विशेष जोर दिया तथा कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के माध्यम से आम दिशा और आम नीतियां तय करने में इन देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों का विशेष मार्गदर्शन किया। साथ ही सोवियत संघ ने दुनिया भर में जारी क्रान्तिकारी संघर्षों की विशेष सहायता की। राष्ट्रीयता के प्रश्न, औपनिवेशिक प्रश्न और उत्पीड़ित राष्ट्रों के मुक्ति-संघर्ष के प्रश्न पर लेनिन के चिन्तन को आगे बढ़ाते हुए स्तालिन ने मार्क्सवादी सिद्धान्त को अपने महत्वपूर्ण अवदानों से समृद्ध बनाया।

दूसरे विश्व-युद्ध में स्तालिन के नेतृत्व में सोवियत जनता और लाल सेना ने नात्सी फौजों और फासीवादी धुरी को पराजित किया। पूर्वी यूरोप के देशों की मुक्ति और वहां क्रान्तिकारी राष्ट्रीय जनवादी सत्ताओं की स्थापना के बाद एक शक्तिशाली समाजवादी शिविर अस्तित्व में आया जिसने विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को नई प्रेरणा, नई शक्ति और नया संवेग प्रदान किया।

स्तालिन की इस ऐतिहासिक भूमिका और महत्वपूर्ण अवदानों के आधार पर हमारी यह

दृढ़ मान्यता है कि वे समाजवादी सोवियत संघ, अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग और विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के महान नेता थे। हम उनके अवदानों और गलतियों के माओ त्से-तुङ द्वारा प्रस्तुत मूल्यांकन और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं के आलोक में न केवल ख्रुश्चेवी संशोधनवादियों, त्रात्स्की पंथियों, ''नववामपंथी'' बदमाशों और हर तरह के धोखेबाज दक्षिणपंथियों-''वामपंथियों'' के स्तालिन-विषयक मूल्यांकनों और कुत्सा-प्रचारों को रद्द करते हैं, बल्कि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के एक छोटे से हिस्से में पैदा हुए उस भटकाव की भी कड़ी आलोचना करते हैं जो ऐतिहासिक वस्तुगत सीमाओं का ख्याल किये बिना, गैरद्वंद्वात्मक तरीकों से, स्तालिन की भूलों-गलतियों पर आज ''मुक्त चिन्तन'' कर रहे हैं और नई-नई थीसिसें प्रस्तुत कर रहे हैं। साथ ही हम इस कठमुल्ला अवस्थिति से भी सहमत नहीं हैं कि संशोधनवादियों और बुर्जुआओं के हमलों के विरुद्ध लड़ते हुए स्तालिन की गलतियों की चर्चा ही नहीं की जानी चाहिए। इस सोच से भी हमारी सहमति नहीं है कि स्तालिन ने कोई ऐसी महत्वपूर्ण गलती ही नहीं की, जिसका मूल्यांकन करना आज जरूरी है। स्तालिन के महान अवदानों और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की हिफाजत का एकमात्र सही रास्ता यही हो सकता है कि हम उनके सकारात्मक पक्षों के अतिरिक्त नकारात्मक पक्षों का भी विश्लेषण करें और यह बतायें कि किस तरह उनकी गलतियों के बहाने दुनिया भर के सभी नकली कम्युनिस्ट और बुर्जुआ वास्तव में अपने हमले का असली निशाना मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी उसूलों को बनाते रहे हैं। साथ ही आज समाजवाद की समस्याओं और पूंजीवादी पुनर्स्थापना के सभी कारणों को समझने का उद्यम भी तबतक सफल नहीं हो सकता जबतक स्तालिन की गलतियों के सही - संतुलित समाहार को हम आत्मसात नहीं कर लेते।

दुनिया के इतिहास में पहली बार समाजवादी निर्माण के महाकाव्यात्मक प्रयासों को नेतृत्व देते हुए विश्व सर्वहारा के महान नेता स्तालिन ने कुछ गलतियां भी कीं और उनमें से निश्चित ही कुछ गम्भीर और बड़ी गलतियां थीं। माओ ने ख्रुश्चेव द्वारा स्तालिन पर किये गये हमलों का जवाब देते हुए और चीन में समाजवादी प्रयोगों का समाहार करते हुए स्तालिन की उपलब्धियों और गलतियों का सही विश्लेषण किया, उनसे शिक्षा ली और समग्र मूल्यांकन के तौर पर उनको एक महान मार्क्सवादी-लेनिनवादी और अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा का एक महान नेता बनाया। हम इस मूल्यांकन को सर्वथा सही मानते हैं।

यह सही है कि साम्राज्यवादी देशों के एकछत्र प्रभुत्व वाली दुनिया में, एक पिछड़े हुए और जटिल परिस्थितियों वाले सोवियत संघ जैसे विशाल बहुराष्ट्रीय देश में पहली बार समाजवाद का निर्माण एक दुस्साध्य चुनौतीपूर्ण कार्य था। यह सही है कि अतीत का एक भी ऐसा उदाहरण स्तालिन के सामने नहीं था जिससे वे शिक्षा लेते। यह भी सही है कि 1924 से लेकर मृत्युपर्यन्त स्तालिन के सामने एक के बाद एक लगातार गम्भीर फौरी समस्याएं आती रहीं और लम्बे समय की नीतियों एवं कार्यक्रमों पर सोचने के लिए उनके पास समय का अभाव लगातार बना रहा। पर यह एक सच्चाई है कि क्रान्ति की शैशवावस्था के गम्भीर संकटपूर्ण अल्पकाल में ही लेनिन ने समाजवाद की समस्याओं पर जिस गहराई के साथ सोचना शुरू किया था, वह सिलसिला स्तालिन काल में जारी नहीं रह सका। लेकिन साथ ही, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सर्वहारा सत्ता के सुदृढ़ीकरण के बाद, स्तालिन काल में ही समग्र व सर्वांगीण रूप से समाजवादी रूपान्तरण का काम शुरू हुआ और इसी दौरान समस्याओं के कुछ ऐसे ठोस रूप और ऐसे नये आयाम भी सामने आये जो लेनिन के जीवन काल में स्पष्ट नहीं हुए थे।

इन वस्तुगत सीमाओं के बावजूद, जैसा कि माओ ने समाहार किया है, स्तालिन से राजनीतिक अर्थशास्त्र, आर्थिक नीति और समाजवादी निर्माण से सम्बन्धित कुछ ऐसी गम्भीर और कुछ ऐसी गौण गलतियां भी हुई जिनसे बचा जा सकता था। ये गलतियां मुख्यतः इस कारण से हुई कि कुछ समस्याओं का समाधान करने में स्तालिन भौतिकवादी द्वंद्ववादी पद्धति को समग्रतः एवं सूक्ष्मतः लागू करने में असफल रहे तथा एक हद तक आधिभौतिक पद्धति का शिकार हो गये।

स्तालिन की जो सर्वप्रमुख और बुनियादी गलती थी उसका मूल कारण भी उनकी चिन्तनप्रणाली में मौजूद यह आधिभौतिकवादी विच्युति ही थी जिसके चलते वे समाजवादी समाज की संरचना और इसकी आन्तरिक गति में निहित अन्तरविरोधों की सही पहचान नहीं कर सके। समाजवादी समाज में वर्ग संघर्ष की प्रकृति और उसके बुनियादी नियमों को न समझ सकने के कारण ही, आनुभविक और व्यावहारिक धरातल पर सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष चलाते हुए भी, उन्होंने 1936 में यह गलत सूत्रीकरण प्रस्तुत किया कि उत्पादन और विनिमय के साधनों पर निजी स्वामित्व के वैधिक रूपों की समाप्ति के बाद अब सोवियत संघ में शत्रुवत वर्ग-अन्तरविरोध और शोषक वर्ग मुख्यतः समाप्त हो चुके हैं तथा उन्नत समाजवादी सम्बन्धों और पिछड़ी उत्पादक शक्तियों के बीच का अन्तरविरोध ही अब सोवियत समाज का प्रधान अन्तरविरोध है। इस तरह समाजवादी संक्रमण के बारे में मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन के चिन्तन के सिरे को पकड़ने में वे असफल रहे। वे यह नहीं समझ सके कि स्वामित्व के वैधिक रूपों में परिवर्तन मात्र से वर्ग और वर्ग संघर्ष की परिस्थितियां समाप्त नहीं होती, क्योंकि ये परिस्थितियां उत्पादन सम्बन्धों से -- विनियोग की सामाजिक प्रक्रिया से जुड़ी हुई हैं। वे यह समझ पाने में असफल रहे कि उत्पादन के साधनों पर समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व के स्थापित हो जाने के बाद भी सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग के बीच का संघर्ष लगातार जारी रहता है और समाजवादी समाज के आन्तरिक अन्तरविरोधों से लगातार पैदा होता रहता है। स्तालिन की यह सर्वाधिक गम्भीर गलती थी जिसके परिणामस्वरूप सोवियत समाज में बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग के सतत् संघर्ष की प्रक्रिया को गम्भीर नुकसान पहुंचना ही था और यही हुआ।

समाजवादी समाज में जनता और शत्रु वर्गों के बीच के शत्रुतापूर्ण अन्तरविरोधों और जनता के बीच के गैर-शत्रुतापूर्ण अन्तरविरोधों के बीच फर्क न करने की स्तालिन की जिस गलत प्रवृत्ति की ओर माओ ने इंगित किया है, वह भी स्तालिन की उपरोक्त गलती से ही जुड़ी हुई थी। माओ के अनुसार, इनमें से पहले अन्तरविरोध का समाधान सर्वहारा अधिनायकत्व के द्वारा होना चाहिए जबकि दूसरे का समाधान जनवादी तरीकों से -- विचारधारात्मक संघर्ष और आलोचना-आत्मालोचना की पद्धति से होना चाहिए। पर स्तालिन-काल में ऐसा नहीं हो सका और वस्तुगत तौर पर क्रान्ति के शत्रुओं के दमन का दायरा काफी हद तक उन लोगों तक भी विस्तारित हो गया जो सोवियत नीतियों से असहमत या वैचारिक विरोधी होते हुए भी सर्वहारा वर्ग और समाजवाद के शत्रु नहीं थे।

उत्पादक शक्तियों के विकास पर अतिरिक्त बल देने और उसे समाजवाद की मूल प्रेरक शक्ति मानने की ही यह एक तार्किक परिणति, और समग्रता में, पद्धति में निहित आधिभौतिक प्रवृत्ति का ही यह एक स्वाभाविक परिणाम था कि स्तालिन का जोर तकनीक पर आवश्यकता से अधिक और इंसान पर कम था। अपने दृष्टिकोण एवं पद्धति में निहित आधिभौतिकता की प्रवृत्ति के चलते पार्टी एकता

के बारे में स्तालिन की सोच एकाश्मी एकता की सोच थी और पार्टी के भीतर सही एकता के लिए दो लाइनों के संघर्ष की अपरिहार्यता को वे स्पष्टतः पहचान नहीं सके थे। (माओ की सोच और पद्धति इसके एकदम विपरीत थी)। मूलतः इसी कारण से स्तालिन पार्टी के भीतर जारी दो लाइनों के संघर्ष को समाज में जारी वर्ग संघर्ष के ही एक रूप और विस्तार के रूप में नहीं देख सके, समाजवाद के दौर में पार्टी के सर्वहारा चरित्र की हिफाजत के लिए जनता से लगातार उसका जीवन्त सम्पर्क बनाये रखने तथा जनता से पार्टी के सीखने के सुसंगत रूपों को विकसित नहीं कर सके, और राज्य व्यवस्था एवं प्रबंध के कामों में समाजवादी चेतना के उन्नत होते जाने के साथ ही मजदूर वर्ग और मेहनतकश अवाम की क्रमशः बढ़ती भागीदारी को सुनिश्चित करने के स्पष्ट तौर-तरीके नहीं ढूंढ़ सके। इसी असफलता के चलते जनता की पहलकदमी को जागृत करने और उसे गोलबंद करने की जगह स्तालिन में प्रशासकीय कार्यविधि पर कुछ अधिक भरोसा करने की रुझान भी दिखाई देती है।

चिन्तन और कार्य-पद्धति में मौजूद आधिभौतिकवादी प्रवृत्ति के चलते ही स्तालिन समाजवादी समाज में कृषि और उद्योग, गांव और शहर तथा किसान और मजदूर के बीच के अन्तरविरोधों की भी एक सही संतुलित समझ कायम करने में असफल रहे। कृषि से बड़े पैमाने पर विनियोजित अधिशेष के आधार पर औद्योगीकरण की सोवियत नीति की माओ ने एकाधिक बार आलोचना प्रस्तुत की है।

स्तालिन की इन गम्भीर सैद्धान्तिक गलतियों का सांगोपांग समाहार करके उनकी शिक्षाओं को आत्मसात करना विचारधारा की सही हिफाजत और क्रान्तिकारी सामाजिक प्रयोगों के लिए जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक यह भी है कि हम इन गलतियों को उस समय की वस्तुगत सीमाओं-समस्याओं की पृष्ठभूमि में रखकर देखें। हम स्तालिन की गलतियों की आलोचना, "स्तालिन की तलवार" को और मजबूती से ऊंचा उठाने के लिए और अपनी विचारधारा के प्राधिकार को और अधिक दृढ़ बनाने के लिए करते हैं।

स्तालिन की कुछ गम्भीर सैद्धान्तिक गलतियों और कुछ गौण नीतिगत-रणनीतिगत भूलों एवं चूकों के बावजूद उनके पूरे जीवन-काल में सर्वहारा अधिनायकत्व कायम रहा, समाजवाद ने आगे की ओर लम्बे डग भरे और पूरी दुनिया में क्रान्ति की धारा को आगे बढ़ाने में सोवियत संघ ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस पूरी अवधि में समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष के नियमों की समझ के अभाव के बावजूद, आनुभविक स्तर पर बुर्जुआ तत्वों एवं बुर्जुआ अधिकारों को नियंत्रित करने का काम जारी रहा, समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की व्यवस्था सफलतापूर्वक लागू हुई, मेहनतकश जनता की पहलकदमी बनी रही और उत्पादन-सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पादक शक्तियों को लगातार विकसित करता रहा। स्तालिन की गलतियां एक क्रान्तिकारी और एक वैज्ञानिक की गलतियां थीं। वे एक उत्कट सर्वहारा क्रान्तिकारी थे। अपनी अन्तिम सांस तक उन्होंने साम्राज्यवादियों के दबाव के आगे झुकने से इंकार किया जो लगातार नाभिकीय शस्त्रास्त्रों से सोवियत संघ को तबाह कर देने की धमकियां दे रहे थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में स्तालिन ने स्वयं समाजवाद की समस्याओं पर सोचते हुए अतीत की अपनी गलतियों को ठीक करने की प्रक्रिया शुरू कर दी थी जो उनकी अन्तिम सांस तक जारी रही।

स्तालिन के बारे में एक टिप्पणी

अपनी पुस्तक 'चीन में सांस्कृतिक क्रान्ति' (पेंगुइन, 1969) में जोन रॉबिन्सन ने स्तालिन की इस स्थापना का उल्लेख किया है कि 'उत्पादन के साधनों में निजी सम्पत्ति के उन्मूलन से अपने आप वर्गविहीन समाज अस्तित्व में आ जाता है।' जोन रॉबिन्सन लिखती हैं कि 'स्तालिन ने ही सोवियत संघ में समाजवाद के आधार की हिफाजत की लेकिन उन्होंने उसकी अधिरचना (सुपरस्ट्रक्चर) को अपूरणीय क्षति भी पहुंचाई।'

स्तालिन के बारे में (माओ त्से-तुङ के नेतृत्व वाली) चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का (संदर्भ : 'ग्रेट डिबेट') मूल्यांकन यह था कि उनके गुणों का पलड़ा उनकी गलतियों की अपेक्षा कहीं अधिक भारी था, लेकिन उसका यह भी कहना था कि, संभवतः वर्तमान शताब्दी में इस प्रश्न पर अन्तिम नतीजे पर पहुंच पाना मुमकिन न हो।'

1934 तक सोवियत संघ के भीतर वर्ग-संघर्ष के बारे में स्तालिन का विश्लेषण त्रुटिरहित और सर्वथा स्पष्ट था। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 16वीं और 17वीं – दोनों ही कांग्रेसों में उन्होंने उन लोगों की आलोचना की जो सोचते थे कि सोवियत संघ में वर्ग संघर्ष अब समाप्त हो चुका है।

लेकिन नवम्बर 1936 में नये संविधान के प्रस्तावना वक्तव्य में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि 'सोवियत समाज में अब शत्रुतापूर्ण वर्गों का अस्तित्व नहीं रह गया है।, समाजवादी समाज की आंतरिक समरूपता और सामंजस्य पर जोर देते हुए उन्होंने इसके अन्तरविरोधों की अनदेखी की।

1939 में 18वीं पार्टी कांग्रेस में वे इससे कुछ आगे बढ़ गये। उन्होंने बाहरी शक्तियों की ओर से खतरे का उल्लेख तो किया लेकिन कहा कि देश में 'अब दमन करने के लिए कोई नहीं बचा है।' इस तरह उन्होंने संशोधनवाद के आंतरिक स्रोतों के खतरों की अनदेखी की।

स्तालिन ने जनता के बीच के अन्तरविरोधों और शत्रु के साथ अन्तरविरोधों के बीच फर्क न कर पाने की गंभीर गलती की। लोगों के प्रति उन्होंने नौकरशाहाना कठोरता और गैर-राजनीतिक पद्धतियों का व्यवहार किया तथा पूरी प्रक्रिया में जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित कर पाने में असफल रहे। बावजूद इसके, उन्होंने भूमि के सामूहिकीकरण में, औद्योगीकरण में और फासीवाद के ऊपर जीत हासिल करने में सोवियत राज्य का नेतृत्व किया। एक देश में समाजवाद के निर्माण के प्रति अडिग रहने के लिए पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता हमेशा ही, जबर्दस्त रूप से, स्तालिन की ऋणी रहेगी।

बुनियादी सवाल नेताओं की गलतियों का नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि महज ख्रुश्चेव, कोसीगिन, ब्रेझनेव और दूसरे सशोधनवादियों के विचलनों से सोवियत संघ में संशोधनवाद का उदय हो गया हो जैसा कि चार्ल्स बेतलहीम ने सर्वथा सटीक टिप्पणी की है : "यदि सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के लिए प्रतिकूल सामाजिक संबंध पहले से ही मौजूद नहीं होते तो (सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की) बीसवीं कांग्रेस की .... न तो वह विशिष्ट अंतर्वस्तु (यानी ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के प्रभुत्व की स्थिति) हो सकती है और न ही वह विशिष्ट प्रभाव" (मंथली रिव्यू, न्यूयार्क, मार्च 1969)

(जोसेफ नीधम, सिरिल ऑफर्ड, जोन रॉबिन्सन और जार्ज थॉमसन द्वारा संयोजित 'चाइना पॉलिसी स्टडी ग्रुप', लंदन की मासिक बुलेटिन 'ब्रॉडशीट' के मई 1969 अंक से साभार)

स्तालिन के समय में सोवियत समाजवाद

झूठ की जितनी गन्दगी और कुत्सा–प्रचार का जितना मलबा स्तालिन के समय के इतिहास और स्तालिन की स्मृतियों पर फेंका गया है, उतना शायद ही किसी और पर फेंका गया हो।

पर सच्चाई सिर चढ़कर बोलती है। ख्रुश्चेवी नकली कम्युनिज्म की तार्किक परिणति येल्त्सिन और झिरिनोवस्की के समय के रूप में सामने आ जाने के बाद, रूस की सड़कों पर उमड़ते जुलूसों–प्रदर्शनों में लेनिन के साथ ही स्तालिन के पोस्टर भी पटे नजर आने लगे हैं और 'स्तालिन जिन्दाबाद' के नारे सुनाई देने लगे हैं। यहां तक कि ख्रुश्चेव–ब्रेझनेव के वारिस ज्युगानोव की मंडली भी सत्ता–संघर्ष में कम्युनिज्म के नाम पर एक बार फिर ठगने के लिए अपने असली आकाओं के बजाय बीच–बीच में स्तालिन का नाम ज्यादा लेती रहती है। स्तालिन का भूत पूंजीवाद को फिर सता रहा है। इसलिए स्तालिन पर हमले लगातार जारी हैं। इस काम में कथित मार्क्सवादी अकादमीशियन स्व. ई.पी. थॉमसन, हॉब्सबॉम और लूकाच के अनुयाइयों से लेकर एजाज अहमद तक लगे हुए हैं जो सभी पूर्ववर्ती सामाजिक–जनवादियों की ही भांति बुर्जुआ जनवाद के विभ्रम के शिकार हैं, क्रान्तिकारी संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व को खारिज करते हैं तथा स्तालिन के समय की परिस्थितियों, समस्याओं और प्रयोगों की चर्चा किये बिना, "अत्याचार", "दमन" और "निरंकुशता" के लिए स्तालिन को कोसते रहते हैं।

हम जानते हैं कि स्तालिन के बारे में एच.जी.वेल्स, रोम्यां रोलां, अन्ना लुइस स्ट्रांग, श्रीमती सुनयात सेन अमेरिकी राजदूत डेविस ('मिशन टू मास्को'), होवर्ड के स्मिथ ('द लास्ट ट्रेन फार्म बर्लिन) आदि से लेकर नेहरू और राधाकृष्णन तक ने जो लिखा है, उनक हवाला देकर हम "डा. जिवागो"की इन आत्माओं का क्लेश नहीं हर सकते और इनकी वैचारिक दृष्टि के मोतियाबिन्द का इलाज नहीं कर सकते। यह वर्ग–दृष्टि और वर्ग–अवस्थिति का सवाल है।

यहां स्तालिन के जन्मदिन के अवसर पर हम 'कामरेड' पत्रिका में छः वर्षों पूर्व प्रकाशित लेख का एक अंश प्रकाशित कर रहे हैं जिसमें स्तालिनकालीन समाजवादी निर्माण की महती उपलब्धियों का एक संक्षिप्त ब्योरा दिया गया है। – सम्पादक

लेनिन के समय में

1918 से 1921 के बीच नवजात सोवियत राज्य को अन्तरराष्ट्रीय तौर पर संगठित सशस्त्र प्रतिक्रान्ति से बचाने के लिए "युद्ध कम्युनिज्म" की नीति अपनायी गयी। इसके अन्तर्गत बड़े पैमाने पर राष्ट्रीयकरण करना (अधिकांश मामलों में यह एक औपचारिक कदम था क्योंकि कारखानों पर मजदूरों ने पहले ही अपना अधिकार कर लिया था), कृषि उत्पादन की अनिवार्य वसूली (जिसे किसान स्वेच्छा से अथवा अनिच्छापूर्वक दे ही देते थे क्योंकि सोवियत राज्य ने जमींदार को खत्म कर दिया था) और व्यापार का राज्य के हाथों में केन्द्रीकरण शामिल था। लेकिन व्यवस्थित रूप से समाजवादी निर्माण अभी शुरू होना बाकी था।

लेकिन 1921 तक तात्कालिक बाहरी आक्रमण को पीछे धकेल दिये जाने के बाद सोवियत राज्य के सामने एक गम्भीर खतरा उपस्थित था। विश्व युद्ध क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के सात वर्षों ने रूसी अर्थव्यवस्था को पूरी तरह अशक्त कर दिया था। राज्य की हिफाजत के लिए सभी संसाधनों को लगा देने की आवश्यकता, पूंजीपतियों द्वारा बड़े पैमाने के उद्योगों को छोड़ देने तथा तोड़-फोड़ करने और युद्धों द्वारा हुए भौतिक विध्वंस ने मिलकर आर्थिक जीवन को पंगु बना दिया था। रूस की अन्तरराष्ट्रीय घेरेबंदी जारी थी। 1920 में बड़े पैमाने के उद्योगों का सकल राष्ट्रीय उत्पादन 1913 के स्तरमात्र 14.4 प्रतिशत था, सीमेन्ट उत्पादन युद्ध-पूर्व के स्तर का मात्र 1 प्रतिशत रह गया था – यह 1913-21 के बीच पूंजीनिवेश के करीब-करीब ठप हो जाने का नतीजा था। 1920 में कृषि पैदावार युद्ध पूर्व की पैदावार का आधा थी। सबसे जरूरी उपभोक्ता सामग्रियों का गम्भीर अभाव था।

बोल्शेविकों के समर्थन का आधार खतरे में था। किसानों को अपनी उपज के बदले में बहुत कम वस्तुएं मिल रही थी और उनका मोहभंग हो रहा था, पहले के तमाम सर्वहारा अब फैक्टरियों में काम नहीं कर रहे थे बल्कि उन्हें अपनी आजीविका के लिए विभिन्न निम्न-बुर्जुआ धंधों और यहां तक कि काले बाज़ार तक का सहारा लेना पड़ रहा था। अग्रिम पंक्ति के बहुत से लोग युद्ध में और उसके बाद सोवियत राज्य की रक्षा में मारे जा चुके थे। मजदूरों का राज्य बड़ी संख्या में अपने मजदूरों को खो रहा था।

तब बोल्शेविकों ने जो रास्ता अख्तियार किया, वह क्रमबद्ध पीछे हटना था। मध्यम और लघु निजी उद्योगों और निजी आन्तरिक व्यापार की अस्थायी पुनर्स्थापना की गयी और अनिवार्य कृषि वसूली की जगह हल्के कराधान ने ले ली। विदेशी उद्योगों को कुछ खास क्षेत्रों में काफी लाभप्रद छूटें दी गयीं। राष्ट्रीकृत बड़े पैमाने के 'मास मार्केट' उद्योगों को भी पूंजीवादी आधार पर चलाया जाने लगा, यद्यपि यह सख्ती के तहत था। राजकीय उद्यमों को मुनाफे के आधार पर काम करना था। कारखानों के प्रबंधकों को मजदूरी तय करने में स्वायत्तता दी गयी और उन्हें अंशतः मुनाफे पर कमीशन के आधार पर वेतन दिया जाता था। नयी आर्थिक नीति का चरित्र इसी प्रकार का था।

ख्रुश्चेवों और गोर्बाचेवों के विपरीत, जो समाजवादी सम्बन्धों को मजबूत बनाने वाले कहकर अपने "सुधारों" की दलाली करते हैं, लेनिन इसे स्पष्टतः राजकीय पूंजीवाद कहते थे और ऐसा नहीं कहने वालों की भर्त्सना करते थे। "विनिमय की स्वतंत्रता का मतलब ही हो जाता है पूंजीवाद के लिए स्वतंत्रता। हम इसे खुले तौर पर कहते हैं और इस पर जोर देते हैं। हम इसे जरा भी नहीं छिपाते। यदि हम इसे छिपाने का प्रयास

करेंगे तो हमारे लिए बड़ी कठिन स्थिति हो जायेगी।'' (संकलित रचनाएं, (अंग्रेजी) खंड 32, पृ. 490) इसे राजकीय पूंजीवाद की ओर पीछे हटना घोषित किया गया। यह सर्वहारा राज्य द्वारा संगठित और नियंत्रित पीछे हटना था।

लेनिन ने नयी आर्थिक नीति का समर्थन केवल उत्पादन को फिर से गति देने के लिए नहीं किया था -- जो काम इसने तेजी से किया -- बल्कि बोल्शेविकों के लिए अर्थशास्त्र के, अर्थव्यवस्था को चलाने के एक विशाल स्कूल के रूप में किया था, ताकि वे उस बुर्जुआ वर्ग को परास्त करने योग्य हो सकें, जो अभी भी उनके बीच था। यानी, नयी आर्थिक नीति एक ऐसे समय में तैयार की गयी थी जबकि सोवियत संघ को अभी समाजवादी निर्माण से होकर गुजरना था, जबकि ख्रुश्चेव और उसके उत्तराधिकारियों ने छठे दशक के उत्तरार्द्ध से जिसे संगठित किया, वह एक स्थापित समाजवादी अर्थव्यवस्था से दूर हटना था।

दरअसल, नयी आर्थिक नीति राजकीय पूंजीवाद की ओर पीछे हटना था ताकि पूंजीवादी दुर्ग पर एक बार फिर धावा बोला जा सके, ताकि सर्वहारा राज्य के अन्तर्गत वर्ग-संघर्ष जारी रखा जा सके, ताकि ''सोवियत राज्य के राजनीतिक लाभों के लिए आर्थिक बुनियाद डाली जा सके।'' (संकलित रचनाएं (अंग्रेजी) खण्ड 33, पृ. 73)। यह अनुशासित पीछे हटना मजदूरों के शासन के लिए उतना ही निर्णायक था जितना कि इसके पहले चला गृहयुद्ध।

बोल्शेविकों ने अर्थशास्त्र सीखा, नयी आर्थिक नीति राजकीय पूंजीवाद की ओर पीछे हटने से समाजवाद की ओर बढ़ाव में विकसित हो गयी। (''एक साल से हम लोग पीछे हटते रहे हैं। पार्टी की ओर से अब हमें इसे रोक देना होगा'' -- लेनिन, ग्यारहवीं कांग्रेस)। तीसरे दशक के मध्य से, राज्य ने निजी व्यापारियों और निजी उद्यमियों को हटाना शुरू किया और 1932 तक उत्पादन या व्यापार को बाधित किये बिना ये लगभग समाप्त कर दिये गये। राजकीय उद्यमों के प्रबंधों की स्वायत्तता को कदम दा कदम सीमित किया गया और साथ ही कदम बा कदम, शाखा दर शाखा समाजवादी नियोजन भी लागू किया गया।

स्तालिन के नेतृत्व में समाजवादी निर्माण

फिर भी तीसरे दशक के अन्त तक पूंजीवादी सम्बन्धों का एक प्रमुख गढ़ बचा रह गया था -- और वह था कृषि क्षेत्र। वहां कुलकों, एक धनी किसान वर्ग, का अस्तित्व बना हुआ था। वे सोवियत राज्य की अधिकाधिक और खुली अवज्ञा करते थे, टैक्स अदा करने से और अनाज बेचने से इंकार करते थे। दूसरी तरफ, लाखों छोटे किसान आदिम युग के साधनों से छोटे-छोटे अलाभप्रद जमीन के टुकड़ों पर खेती कर रहे थे। जैसा कि सामूहिकीकरण के एक जाने-माने बुर्जुआ आलोचक ने भी स्वीकारा है, ''बड़े पैमाने पर विकुलकीकरण की इस प्रक्रिया को समझने के लिए कंगाली की इस स्थिति को भी दिमाग में रखना जरूरी है जिसमें लाखों बेदन्याक (गरीब किसान) रहते थे। प्रायः ही वे भूखे पेट रह जाते थे उनके पास न जूते थे, न कमीजें और न ही आराम की कोई अन्य वस्तु। ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त तनाव और कुलकों को बेदखल करने की व्यग्रता में 'बेदन्याकों' की स्थिति की दयनीयता का और उस नफरत का बहुत अधिक योगदान था जो वे अपने उन अधिक भाग्यशाली पड़ोसियों के प्रति अनुभव करने में सक्षम थे, जो मौका पाते ही कठोर निर्ममता से शोषण करते थे।'' (एम. लेविन, रूसी किसान तथा सोवियत सत्ता, मार्टिन निकोलस की 'रूस में पूंजीवादी पुनर्स्थापना' में उद्धृत, पृ. 21)

इस स्थिति में आधुनिक कृषि के विकास, किसानों के सहकारी प्रयासों को मजबूत करने और कुलकों के (प्रकट और गुप्त) विद्रोह को पहले ही बेकार कर देने के लिए कृषि के सामूहिकीकरण का एक अभियान शुरू किया गया। इसे कुलकों के तीव्र प्रतिरोध का सामना करना पड़ा जो भारी संख्या में मवेशियों को सामूहिक फार्म में लाने के बजाय उन्हें अकारण ही मौत के घाट उतार देते थे (यह विनाश लम्बे समय तक सोवियत कृषि के विकास में एक बाधक बना रहा) और गरीब किसानों को फसलों पर कब्जा करने देने के बजाय उन्हें नष्ट कर देते थे। इसी बीच, पार्टी के भीतर, जहां एक हिस्से ने एक देश में समाजवाद के निर्माण की सम्भावना से इंकार किया था (त्रात्स्की), वहीं एक अन्य हिस्से (बुखारिन) ने कुलकों के बचाव के पक्ष में आवाज उठायी। उन्होंने पार्टी सदस्यों और गरीब किसानों द्वारा चलाये जाने वाले सामूहिकीकरण अभियान में हुई गलतियों का तत्काल फायदा उठाया जो कुलकों को दबाने में प्रायः कुछ ज्यादतियां कर बैठते थे या किसानों को सहकारी फार्मों में शामिल करने के लिए जोर-जबर्दस्ती का सहारा लेते थे। स्तालिन ने तोड़-फोड़ करने वालों के प्रति सावधान करने के साथ ही अपने लेख में इन गलतियों की आलोचना की। (सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक)का इतिहास, संक्षिप्त कोष में उद्धृत, पृ. 308)। खासतौर पर उन्होंने मध्यम किसानों को अपने पक्ष में करने की जरूरत पर जोर दिया। इस प्रक्रिया में किसानों के बीच पार्टी-उपकरण मजबूत किये गये (1930 से 1934 के बीच ग्रामीण सदस्यता 400,000 से बढ़कर 800,000 हो गयी) और कुलकों का पर्दाफाश जारी रहने तथा पूरे ग्रामीण क्षेत्र में किसानों में राजनीतिक चेतना पैदा करने के लिए कदम उठाये गये। सबसे पक्के पुराने बोल्शेविकों में से चुने गये। 17000 पार्टी सदस्यों को मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों में राजनीतिक विभाग कायम करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में भेजा गया जो समाजवादी निर्माण के अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दुओं के तौर पर सामूहिक फार्मों के लिए काम कर रहे थे।

1934 के अन्त तक 240,000 सामूहिक फार्मों के दायरे में सोवियत संघ के करीब 75 प्रतिशत किसान परिवार और खेती लायक जमीन का करीब 90 प्रतिशत भाग आ चुका था। इस समय तक 281,000 ट्रैक्टर और 32,000 हार्वेस्टर कम्बाइन ग्रामीण क्षेत्र में काम कर रहे थे, जो अभी हाल तक यंत्रीकरण से अछूता था। यंत्रीकरण ने तेजी से बढ़ते उद्योगों के लिए श्रम को मुक्त किया और औद्योगीकरण तेजी से हुआ : 1937 तक मजदूर और कर्मचारी कुल आबादी का लगभग 36 प्रतिशत हो गये जबकि किसान 64 प्रतिशत से कम रह गये, जबकि 1928 में कुल आबादी में मजदूरों और कर्मचारियों का प्रतिशत उपरोक्त संख्या का लगभग आधा था। ख्रुश्चेव के शासन में तैयार किये आंकड़ों के मुताबिक 1928 से 1943 (सामूहिकीकरण और कुलकों के प्रतिरोध के वर्ष) के बीच सकल कृषि उपज गिर कर 1913 के स्तर तक पहुंच गयी; इसके बावजूद 1937 तक यह 1933 की कुल उपज से 33 प्रतिशत तक बढ़ चुकी थी। (यद्यपि मवेशियों की स्थिति अभी भी पिछड़ी हुई थी, पर फसलों का उत्पादन अपेक्षाकृत तेजी से बढ़ा)। सामूहिकीकरण से पहले की तुलना में वसूली काफी ज्यादा होने लगी थी। चौथे दशक के मध्य तक सोवियत सरकार इस स्थिति में पहुंच गयी थी कि उसने रोटी तथा अन्य वस्तुओं की राशनिंग समाप्त कर दी और खाद्य सामग्रियों की बिक्री से प्रतिबंध हटा लिए।

1921 में, पूरे देश के लिए एक आर्थिक योजना तैयार करने के लिए राजकीय योजना आयोग, गॉस्प्लान की स्थापना की गयी। लेकिन पहली पंचवर्षीय योजना 1928 में जाकर बनायी जा सकी। योजना में बहुत तेज औद्योगीकरण को आवश्यक बताया गया। पर इस औद्योगीकरण के लिए संसाधन कहां से आते? एक ऐसी सरकार के लिए विदेशी कर्ज भी नहीं मिलने वाले थे, जिसे पूंजीवाद के लिए खतरे के रूप में देखा जा

रहा था। उद्योग पर्याप्त मात्रा में अतिरिक्त पूंजी पैदा करने के लिए बहुत कमजोर समझे जा रहे थे। रास्ता एक ही था कि सचेतन तौर पर कृषि क्षेत्र की दृष्टि से कुर्बानियां देते हुए कृषि की अतिरिक्त उपज को योजना का आधार बनाया जाये -- यह मानते हुए कि जैसे-जैसे औद्योगीकरण बढ़ेगा, यंत्रीकरण तथा बेहतर कृषि व्यवस्था से कृषि को कहीं ज्यादा लाभ मिलने लगेंगे।

योजना की प्राथमिकताएं सर्वहारा के हितों के मुताबिक तय की गयी थीं ; ये हित तात्कालिक भौतिक फायदों के अर्थ में नहीं बल्कि एक समाजवादी समाज के निर्माण और उसके लिए आवश्यक भौतिक आधार का निर्माण करने की शर्तों से निर्धारित थे। इस प्रकार निवेश की तात्कालिक प्राथमिकताएं थीं -- रक्षा और भविष्य : सोवियत राज्य की रक्षा (जो प्रतिक्रियावादी पूंजीवाद का मुख्य निशाना था, विशेषकर फासिज्म के उदय के बाद) और भावी उत्पादन। इस प्रकार उत्पादन के साधनों के उत्पादन के लिए, भविष्य के साधनों के उत्पादन के लिए, भविष्य में और व्यापक उत्पादन के लिए तात्कालिक उपभोग का त्याग किया गया। इस प्रकार, भारी उद्योगों -- अवरचनागत और इंजीनियरिंग उद्योगों -- पर मुख्य जोर दिया गया।

मेहनतकश लोगों का इसके लिए, उनकी अपनी योजना के लिए उत्साह और सहयोग ऐसा था कि पहली पंचवर्षीय योजना निर्धारित समय के पहले ही पूरी हो गयी -- चार वर्ष और तीन महीने में। औद्योगिक उत्पादन वस्तुतः दोगुना हो गया। ट्रैक्टर, आटोमोबाइल, वायुयान, रसायन, कृषि यंत्र, मशीनटूल्स, इंजीनियरिंग और युद्ध सामग्री जैसे नये उद्योग एकदम धूल से खड़े किये गये, तकनीशियनों की भारी कमी के बावजूद। लोहा और इस्पात, तेल और विद्युत, सब चमत्कारिक गति से बढ़े। जीवनस्तर, विशेषकर भारी उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों का जीवनस्तर ऊपर उठा; मजदूरी में 103.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। और, 1932 तक, जहां पूंजीवादी देशों में महामंदी का कहर बरपा हो रहा था और अमेरिका में 1 करोड़ 15 लाख, जर्मनी में 56 लाख और ग्रेट ब्रिटेन में 23 लाख बेरोजगार थे, वहीं सोवियत संघ में बेराजगारी का उन्मूलन कर दिया गया था। अमेरिकी उदारवादी पत्रिका नेशन ने नवम्बर 1932 में लिखा, ''पंचवर्षीय योजना के चार वर्षों में वाकई असाधारण विकास हुआ है।.....रूस नये जीवन के भौतिक और सामाजिक सांचों के निर्माण के रचनात्मक कार्यभार को पूरा करने में युद्धकालीन तीव्रता के साथ जुटा हुआ है। देश का नक्शा वाकई इतना ज्यादा बदला जा रहा है कि इसे पहचानना मुश्किल होगा।''

द्वितीय पंचवर्षीय योजना भी निर्धारित समय से पहले पूरी हो गयी -- चार वर्ष और तीन महीनों में। इसका लक्ष्य पूरी अर्थव्यवस्था का तकनीकी पुनर्गठन था -- इस योजना के अन्त तक देश के कुल औद्योगिक उत्पादन का 4/5 हिस्सा ''पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनावधि के दौरान निर्मित अथवा पूरी तरह पुनर्गठित नये उद्यमों'' द्वारा होना था। यह ''नये उद्यम और नयी तकनीक के संचालन के सभी पक्षों में दक्षता'' और साथ ही ''श्रम की उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार, उत्पादन लागतों को नीचे लाने तथा उत्पाद के स्तर में निश्चित सुधार'' की मांग करता था। (डॉब द्वारा उद्धृत, सोवियत इकोनामिक डेवलपमेण्ट सिन्स 1917)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1933-37) सफल हुई -- औद्योगिक उत्पादन 1932 की तुलना में दोगुना हो गया। (यह 1913 के आंकड़ों का 500 प्रतिशत था) योजना के अन्त तक 4500 नये औद्योगिक उद्यमों को अधिकृत किया गया जो कुल औद्योगिक उत्पादन का 80 प्रतिशत पैदा कर रहे थे। विद्युत उत्पादन 2600 करोड़ किलोवाट-घण्टा हो गया -- 1932 की तुलना में दोगुना और 1913 का तेरह गुना। सभी अवरचनागत उद्योगों में असाधारण तेजी से वृद्धि हुई। नयी आर्थिक नीति की समाप्ति के समय औद्योगिक देशों में रूस का स्थान पांचवां था, जैसा कि निम्न तालिका में प्रदर्शित है:-

देश	विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन का प्रतिशत
1.अमेरिका	46.9
2. जर्मनी	11.9
3. ग्रेट ब्रिटेन	8.46
4. फ्रांस	7.84
5. सोवियत संघ	4.42

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर सोवियत संघ औद्योगिक देशों में दूसरे स्थान पर आ गया था -

देश	विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन का प्रतिशत
1. अमेरिका	38.16
2. सोवियत संघ	14.99
3. जर्मनी	10.33
4. ग्रेट ब्रिटेन	8.16
5. फ्रांस	5.25

सोवियत विकास की यह अद्‌भुत रफ्तार आधुनिक समय में अतुलनीय थी।

औद्योगिक विकास की दर

देश		औद्योगिक विकास
	1913(सूचकांक)	1937
सोवियत संघ	100	816.4
अमेरिका	100	156.9
जर्मनी	100	129.3
ग्रेट ब्रिटेन	100	111.9
फ्रांस	100	101.2

(विभिन्न देशों में 1913 के उत्पादन को प्रत्येक देश के सूचकांक के तौर पर लिया गया है, 1937 के प्रत्येक देश के उत्पादन की इस संख्या के गुणज के रूप में गणना की गयी है) -- स्तालिन, 18वीं पार्टी कांग्रेस में प्रस्तुत रिपोर्ट, लेनिनवाद की समस्याएं (अंग्रेजी) पृ. 893 चीनी संस्करण।

मॉरीस डॉब्ब के शब्दों में, ''उद्योगों की मात्रात्मक वृद्धि को संक्षेप में इन सूचकों के जरिए जाना जा सकता है -- 1928 से 1938 के दशक के दौरान लोहा और इस्पात उद्योग की उत्पादक क्षमता चार गुना बढ़ गयी, कोयले की साढ़े तीन गुना, तेल की करीब तीन गुना और विद्युत ऊर्जा की लगभग सात गुना बढ़ गयी थी, जबकि इसी दौरान नये उद्योगों की एक पूरी कतार स्थापित की जा चुकी थी, जैसे वायुयान, भारी रसायन, जिनमें प्लास्टिक व कृत्रिम रबर शामिल हैं, एलुमिनियम, तांबा, निकिल और टिन। सोवियत संघ दुनिया में ट्रैक्टरों और रेल इंजनों का सबसे बड़ा उत्पादक और तेल, सोना तथा फास्फेट का दूसरे नम्बर का सबसे बड़ा उत्पादक बन गया था।'' (डॉब्ब, उपरोक्त, पृ. 454)

सर्वहारा नियोजन ने सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों में अपने को जिन रूपों में अभिव्यक्त किया, उनमें से कुछ हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

शिक्षा

''साक्षरता कम्युनिज्म का रास्ता तैयार करती है'' -- तीसरे दशक के एक पोस्टर पर लिखी इबारत थी। बोल्शेविकों ने शिक्षा को इतनी गम्भीरता से लिया कि घमासान गृह युद्ध (1918-21) के दौरान भी उन्होंने निरक्षरता के विरुद्ध अभियान चलाया और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मजदूरों के लिए फैक्टरियों, खानों और रेलपथों के किनारे विशेष स्कूल स्थापित किये गये। शैक्षिक अभियान में अधिक संख्या में आम लोगों तक पहुंचने के नये-नये उपाय निकले। 1920 से 1940 के बीच पांच करोड़ प्रौढ़ व्यक्तियों ने लिखना-पढ़ना सीखा। 1914-15 में स्कूलों तथा अन्य शिक्षा संस्थानों में विद्यार्थियों की कुल संख्या 99 लाख थी, 1956-57 में यह 3 करोड़ 55 लाख थी।

निम्न तालिका बहुत कुछ कहती है -

9-49 आयु वर्ग में साक्षरता

	पुरुष	स्त्री	दोनों
1897	39.1	13.7	26.3
1926	71.5	42.7	56.6
1939	95.1	83.4	89.1
1959	99.3	97.8	98.5

प्राथमिक शिक्षा और काम के साथ शिक्षा पर अधिक जोर दिया गया, जो कि राजनीतिक प्राथमिकताओं से मेल खाता था।

जन स्वास्थ्य

मार्क जी. फील्ड नाम के एक बुर्जुआ जन स्वास्थ्य विशेषज्ञ ने 1960 में सोवियत जन स्वास्थ्य व्यवस्था के सिद्धान्तों का सही सार-संकलन इन शब्दों में किया था, ''किसी भी अन्य गतिविधि की तरह स्वास्थ्य रक्षा भी नियोजित होनी चाहिए, निर्दिशीयता (अर्थात समानता) होनी चाहिए, स्वास्थ्य रक्षा राज्य द्वारा पोषित एक मुफ्त सामाजिक सेवा है, जनता का स्वास्थ्य जनता की जिम्मेदारी है और इसमें व्यापकतम जन-भागीदारी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, सिद्धान्त और व्यवहार में एकता होनी चाहिए, और कुछ समूहों की चिकित्सा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए'' (जिनका स्वास्थ्य सेवाओं और राज्य के संचालन के लिए आवश्यक है)। (देखिये एनसाइक्लापीडिया ऑफ रशिया एण्ड सोवियत यूनियन, सं. एम.टी. फ्लोरिंस्की, न्यूयार्क)

स्वास्थ्य सेवाओं में आयी चतुर्दिक क्रान्ति को कुछ आंकड़ों से मापा जा सकता है। अस्पतालों में शैयाओं की संख्या 1913 में 207,00 से छः गुना बढ़कर 1956 में 136,000 हो गयी (और ठीक-ठीक देखें तो 1913 में 13 शैया प्रति 10000 से बढ़ कर 1956 में 68 शैया प्रति 10000)। चिकित्सकों की संख्या पन्द्रह गुना से ज्यादा बढ़ी --- 1913 में 23.000 से 1940 में 1.42,000 और 1958 में 3,62,000। 1958 में प्रति 10,000 निवासियों पर डाक्टरों की संख्या इंग्लैण्ड में 8.8 और अमेरिका में 12 थी, पर सोवियत संघ में यह संख्या थी 17। यह अद्भुत बड़ी संख्या में औरतों को प्रशिक्षित किये जाने के कारण सम्भव हुआ। क्रान्ति के पहले डाक्टरों का 10 प्रतिशत औरतें थीं, 1940 तक 60 प्रतिशत और 1958 तक 75 प्रतिशत औरतें थी।

इसने लोगों के जीवन को कैसे बदला? आंकड़े बड़ी सरलता से इसकी कहानी बयान करते हैं -- कम से कम इसके एक हिस्से की।

	1913	1944	1950	1955
जन्म प्रति 1000	47	31.3	26.7	25.7
मृत्युप्रति1000	30.2	18.1	9.7	7.2
शिशु मृत्यु प्रति 1000 जन्म (1 वर्ष से कम आयु में)	273	184	81	60

	यूरोपीय रूस		पूरा रूस
	1896-97	1926-27	1958-58
औसत आयु प्रत्याशा (पुरुषों की)	31	42	64
औसत आयु प्रत्याशा (स्त्रियों की)	33	47	71
कुल आबादी की औसत आयु प्रत्याशा	32	44	68

नोट : रूस का यूरोपीय भाग अधिक विकसित था।

फील्ड इसका समाहार इन शब्दों में करता है -- ध्यान रहे कि वह एक विशुद्ध बुर्जुआ विद्वान की तरह से यह करता है -- ''सोवियत शासन ने पिछले चार दशकों में जन सेवा के तौर पर प्रदान की जाने वाली चिकित्सकीय उपचार और निरोधक चिकित्सा की एक व्यवस्था कायम की है जिसका विस्तार इस क्षेत्र में राष्ट्रीय पैमाने पर किये गये किसी भी प्रयास से अधिक व्यापक है।''

औरतों की आजादी

औरतों की आजादी की लम्बी यात्रा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भौतिक पक्ष था, सामाजिक श्रम में उनकी बढ़ती हुई भागीदारी। 1914 में जहां फैक्ट्री मजदूरों के बीच कुल श्रमशक्ति का 25 प्रतिशत औरतें थीं, वहीं यह संख्या बढ़कर 1929 में 28 प्रतिशत, 1940 में 41 प्रतिशत और 1950 में 45 प्रतिशत हो गयी। (यह उपलब्धि इस तथ्य की रोशनी में और भी प्रभावशाली है कि केवल 1913 और 1937 के बीच उद्योगों में आठ गुना की वृद्धि हुई थी और स्वाभाविक तौर पर कुल औद्योगिक श्रम शक्ति भी इसके साथ ही बढ़ गयी थी।) यद्यपि संचार सेवाओं, व्यापार, जन भोजनालयों, जन स्वास्थ्य और शिक्षा में औरतों का अनुपात विशेष रूप से अधिक था, लेकिन धातुकीय, धातुकर्म मशीन निर्माण, खदान और निर्माण उद्योगों में भी औरतें कार्यरत थीं। उद्योगों में उच्च पदों पर औरतें अभी भी अल्पसंख्या में ही थी (1957 में 10 प्रतिशत), लेकिन इस स्तर पर संख्या में तेजी से वृद्धि हुई थी (13000 तक)। यह उल्लेखनीय है कि औरतें उद्योगों में कुल तकनीशियनों का 59 प्रतिशत थीं।

कानूनन औरतों को समान काम के लिए समान वेतन तथा प्रसव के पहले और बाद में दो तिहाई वेतन के साथ आठ हफ्ते का प्रसूति अवकाश दिया जाता था; गर्भधारण के कारण नौकरी से हटाने के विरुद्ध कानूनी गारण्टी थी। औरतों को घरेलू श्रम से मुक्त करने के लिए न केवल जन भोजनालयों की व्यवस्था का व्यापक विस्तार किया गया, बल्कि 1959 तक शिशुगृह और बाल विहार 40 लाख बच्चों की देखभाल करते थे और इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में 30 लाख बच्चों की देखभाल मौसमी शिशुगृहों में होती थी।

समाजवादी निर्माण द्वारा सामाजिक संघटन में परिवर्तन कैसे लाया गया।

	1913	1959
1. कुल आबादी में ग्रामीण आबादी का प्रतिशत	82.1	52.1
2. कुल आबादी में शहरी आबादी का प्रतिशत	17.9	47.9
3. निजी किसान/दस्तकार	66.7	0.3
4. सामूहिक किसान	-	31.4
5. मजदूर और कर्मचारी (इसमें मजदूर का हिस्सा)	14.6	50.2

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1938-42, लेकिन 1941 में युद्ध के कारण बाधित) में भी प्राथमिकताओं पर जोर तथा वृद्धि दरें पहली दो योजनाओं की तरह ही जारी रहीं, सिवाय इसके कि अब जर्मनों और जापानियों के आसन्न हमले को देखते हुए रक्षा सर्वोच्च प्राथमिकता में आ गयी थी। और जब विश्व युद्ध का कहर रूस पर टूटा तो उसने सोवियत अर्थव्यवस्था को जबर्दस्त नुकसान पहुंचाया। डॉब्ब लिखते हैं, --

"(जर्मन) आक्रमण के परिणामस्वरूप, सोवियत अर्थव्यवस्था को युद्ध पूर्व के कोयला उत्पादन का आधे से दो तिहाई के बीच, लौहअयस्क उत्पादन का 60 प्रतिशत, अनाज के खेतों का करीब आधा भाग, चुकंदर की पैदावार का 9/10 भाग और सुअरों की आधी संख्या गंवानी पड़ी। अल्यूमिनियम उत्पादन के तीन केन्द्रों में से दो जर्मन अधिकृत क्षेत्र में थे. ..1941-42 के जाड़ों में इंजीनियरिंग उद्योग की उत्पादक क्षमता के 20 से 25 प्रतिशत का नुकसान इसके अधिकृत क्षेत्र में चले जाने के कारण हुआ, इसके बावजूद कि इसके कुछ हिस्सों को वहां से हटा लिया गया था। देश के खाद्यान्न उद्योग को अपने पूंजीगत उपकरणों का 40 प्रतिशत गंवाना पड़ा।" (डॉब्ब, उपरोक्त, पृ. 297-98)

सोवियत अर्थव्यवस्था ऐसे घातक आक्रमण के बाद खड़ी कैसे रह गयी? यह अविश्वसनीय लगता है, पर पूरी की पूरी फैक्टरियां बहुत बड़े पैमाने पर और जबर्दस्त रफ्तार से सैकड़ों यहां तक कि हजारों मील दूर स्थानान्तरित कर दी गयीं। यह कार्रवाई अपने आप में अभूतपूर्व थी, लेकिन इसकी गति तो और भी विस्मयकारी थी। अनेक उदाहरणों में से एक वोरोशिलोव फैक्टरी का है जो दनीप्रोपेत्रोव्स्क से हटायी गयी और उराल प्रदेश में मध्य सितम्बर में पहुंची; 10 अक्टूबर तक इसने उत्पादन शुरू कर दिया था और दिसंबर तक यह अपने पुराने उत्पादन से ज्यादा पैदा करने लगी थी। पूरी की पूरी वायुयान फैक्टरियों के हिस्से जोड़कर पांच हफ्तों में उन्हें फिर से खड़ा कर दिया गया, छः महीने में होने वाले निर्माण के कामों को पन्द्रह दिनों में पूरा किया गया, (ब्रिटिश पत्रिका इकोनामिस्ट की 1942 की रिपोर्ट के अनुसार), और जिन क्षेत्रों में युद्ध चल रहा था, वहां तक में उत्पादन जारी रहा।

इस क्षमता के पीछे एक हद तक यह भी कारण था कि सोवियत संघ ने युद्ध के लिए पहले से तैयारी की थी और अपनी फैक्टरियों का निर्माण इस तरह से किया था ताकि उन्हें तेजी से "रिअसेम्बल" किया जा सके। पर इसके पीछे एक अन्य कारक था, जो इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण था। यही वह कारक है जिससे पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता को समझा जा सकता है।

वह कारक यह था कि देश में एक केन्द्रीकृत योजना थी और मेहनतकश लोग उसे अपना समझते थे। योजनाओं को सर्वहारा की आवश्यकता और विवेक की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता था और रूसी मजदूर उनके लिए जीतोड़ मेहनत करते थे क्योंकि वे जानते थे कि उनके श्रम का लाभ किसी शोषक को नहीं जायेगा, बल्कि यह समाजवाद का निर्माण करेगा। यदि कोई इसे नहीं समझेगा तो कोई यह अनुमान नहीं लगा पायेगा कि ऐसे असाधारण प्रयास कैसे किये गये। पूंजीवाद के समर्थक इन उपलब्धियों को (जिन्हें वे नकारते नहीं हैं) तथाकथित दमन और मजदूरों में भय का परिणाम बताते हैं। पर अगर यही बात थी तो नाज़ी हुकूमत ऐसे ही परिणाम हासिल करने में क्यों असफल रही? सातवें और आठवें दशक के संशोधनवादी नेता अपने हाथ में व्यापक दमन तंत्र के बावजूद उन वृद्धि दरों को बनाये रखने में क्यों असफल रहे जो समाजवाद के दौरान हासिल की गयी थीं?

दरअसल, श्रम के प्रति जनता का उत्साह और सर्वहारा राज्य से उसका तादात्म्य अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता था। हर ऐसी अभिव्यक्ति मजदूरों और उत्पादन के साधनों का एका फिर से स्थापित करने की दिशा में एक कदम होती थी। ऐसी पहली अभिव्यक्ति गृहयुद्ध के ही दौरान (1918-21) उभर कर सामने आयी। मास्को कजान रेलवे वर्कशाप के कम्युनिस्ट मजदूरों और उनके हमदर्दों ने नये राज्य की रक्षा की खातिर उत्पादन को आगे बढ़ाने के लिए बिना किसी आर्थिक लाभ के, स्वेच्छा से काम के घण्टों के अतिरिक्त समय में और शनिवार के अवकाश में काम करना शुरू किया। यह आन्दोलन दूसरे क्षेत्रों और दूसरे उद्योगों में भी फैल गया। इन "सुब्बोतनिकों" के दौरान मजदूरों की उत्पादकता अपेक्षाकृत काफी ज्यादा होती थी। उत्पादकता के नये स्तर औरों के लिए अनुकरणीय मानक बन गये। समाजवादी पहलकदमी और सत्ता की इन "नयी कोंपलों" का स्वागत करते हुए और इन्हें "असाधारण महत्व" का बताते हुए लेनिन ने लिखा था, "यह एक ऐसी क्रान्ति की शुरुआत है जो (बुर्जुआ वर्ग को) उखाड़ फेंकने से ज्यादा कठिन, ज्यादा ठोस, ज्यादा आमूल और ज्यादा निर्णायक है, क्योंकि यह हमारे खुद के रूढ़िवाद, अनुशासनहीनता, निम्न-मध्यवर्गीय अहंवाद पर विजय है, अभिशप्त पूंजीवाद द्वारा मजदूरों-किसानों के लिए छोड़ी गयी विरासत पर विजय है। जब इस विजय का सुदृढ़ीकरण हो जायेगा, केवल तभी नये सामाजिक अनुशासन, समाजवादी अनुशासन, की रचना की जा सकेगी, तब, और केवल तभी पूंजीवाद की ओर पश्चगमन (जोर हमारा) असम्भव हो जायेगा, और कम्युनिज्म वास्तव में अपराजेय हो जायेगा।" (संकलित रचनाएं (अंग्रेजी) खण्ड 29, पृ. 422)

लेनिन की इस समझदारी की 1956 के बाद संशोधनवादियों द्वारा उठाये गये एक-एक कदम से अहंवाद को फिर पैदा करना, व्यक्तिगत प्रतियोगिता भौतिक प्रोत्साहनों के पीछे भागना और डण्डे के जोर से लागू अनुशासन से तुलना करके देखा जा सकता है।

पहले पहल 'सुब्बोतनिक' स्वतः स्फूर्त ढंग से, केन्द्रीय कमेटी के एक पत्र के प्रभाव में शुरू हुए, पर उन्हें स्वतःस्फूर्तता पर नहीं छोड़ा जा सकता था। "हमें इन नयी कमजोर कोंपलों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए हमें इन पर बहुत अधिक ध्यान देना चाहिए, इनके विकास के लिए सब कुछ करना चाहिए और इनकी "देखभाल" करनी चाहिए....... कम्युनिस्ट सुब्बोतनिक कम्युनिज्म की वास्तविक शुरुआत के रूप में असाधारण रूप में मूल्यवान है...... कम्युनिज्म की शुरुआत तब होती है जब आम मज़दूर श्रम की उत्पादकता बढ़ाने में, कठिन मेहनत की परवाह किये बिना, उत्साहपूर्ण सरोकार दिखाते हैं, अनाज के हर दाने, कोयला, लोहा और दूसरे उत्पादों की परवाह करते हैं जो श्रमिकों के अपने या निकट सम्बन्धियों के नहीं बल्कि 'दूर' के सम्बन्धियों यानी समाज के होते हैं -- उन लाखों करोड़ों के जो पहले एक समाजवादी राज्य में और फिर सोवियत गणतंत्रों के संघ के रूप में एकताबद्ध हुए हैं।

सुब्बोतनिकों के पीछे निहित भावना समाजवाद के पूरे दौर में विविध रूपों में सामने आयी। "वास्क्रेस्निक" -- पहली पंचवर्षीय योजना में

औद्योगीकरण अभियान के लिए स्वैच्छिक ओवरटाइम, "धुरंधर कार्यदस्ता" (शॉक वर्क टीम) आंदोलन, जिसमें मजदूर उत्पादन बैठकों में भाग लेते थे जिनमें मौजूद कार्यपद्धतियों के सभी पक्षों की आलोचना की जाती थी ताकि मजदूरों की पहलकदमी को बाहर लाया जा सके और उत्पादन को आगे बढ़ाया जा सके; 1935 में एक मजदूर द्वारा शुरू किया गया स्ताखानोवाइट आंदोलन, जिसने श्रम की उत्पादकता को व्यापक रूप से बढ़ाया (कमरतोड़ मेहनत से नहीं, बल्कि श्रम और टीम वर्क के पुनर्विभाजन के आधार पर पद्धति और डिजाइन को अधिक वैज्ञानिक बनाकर), "पब्लिक टगबोट" जिसमें उन इकाइयों के मजदूर जो अपनी समस्याएं हल कर रही थीं और योजना पूरी कर रही थीं, उन उद्यमों में जाते थे जो समस्याओं का सामना कर रहे थे और उन्हें हल करने में मदद करते थे, "प्रतिनियोजन" -- जिसमें मजदूर योजना लक्ष्यों की आलोचना करते थे और अपने स्वयं की सुधारी हुई और उन्नत योजनाएं तैयार करते थे, और इस प्रक्रिया में उत्पादन के संगठन तथा प्रबंध की भी जानकारी हासिल करते थे।

जो बुर्जुआ विद्वान वृद्धि दरों की बाल की खाल निकालते हैं कि 1937 में औद्योगिक उत्पादन 1913 के मुकाबले आठ गुना अधिक था, जैसा कि स्तालिन ने बताया था, या यह छः गुना ही अधिक था, वे भी इस बात से इंकार नहीं करते कि वृद्धि अद्भुत थी और कि अविश्वसनीय कारनामे कर दिखाये गये। लेकिन इसमें मूल बात यह है कि यह सब कुछ पूंजीवाद में मजदूरों द्वारा उत्पादन की रफ्तार बढ़ाने की सबसे बड़ी "उत्प्रेरणा" यानी नौकरी से निकाले जाने और बेरोजगारी के भयंकर खतरे के बिना ही हासिल किया गया। मैनेजमेण्ट मनमाने तरीके से लोगों को काम पर रख और निकाल नहीं सकता था। औद्योगिक विवादों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतें थीं जिनमें केवल मजदूरों की ही पहुंच थीं; वहां मैनेजमेण्ट केवल प्रतिवादी ही हो सकता था।

जैसे श्रम पण्य वस्तु नहीं था, वैसे ही उत्पादन के साधन भी पण्य वस्तु नहीं थे। उद्यम अपने स्वयं के मुनाफे से उत्पादन के साधन नहीं प्राप्त कर सकते थे। सारे मुनाफे राज्य के हवाले किये जाते थे और केन्द्रीय योजना सर्वहारा नियोजन के हितों के अनुसार उत्पादन के साधनों का आवण्टन करती थी।

यहां उस कपट और धोखे से भरी राजनीतिक लड़ाई का ब्यौरा देना सम्भव नहीं है, जिसके द्वारा संशोधनवादियों ने स्तालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ में सत्ता पर कब्जा किया। .... ख्रुश्चेव के नेतृत्व में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना, जाहिर है कि पूंजीवाद के नाम से नहीं की गयी - यह आम जनता में समाजवाद से जुड़ाव और इसकी हिफाजत करने की भावना को बताता है। इसके बजाय ख्रुश्चेव ने बहस की शुरुआत स्तालिन के खिलाफ भयंकर गुप्त व्यक्तिगत हमले से की (जो मेहनतकश लोगों के लिए समाजवादी निर्माण के प्रतीक थे) और इसके तत्काल बाद समाजवाद को मजबूत बनाने के नाम पर अर्थव्यवस्था का "विकेन्द्रीकरण" करने वाले व्यापक परिवर्तन किये। जहां लेनिन ने सीधे-स्पष्ट तौर पर कहा था कि नयी आर्थिक नीति के पूंजीवादी उपाय राजकीय पूंजीवाद की ओर पीछे हटना है और इस प्रकार मजदूर वर्ग को वर्ग संघर्ष जारी रखने तथा समाजवाद का निर्माण करने के लिए लैस किया, वहीं ख्रुश्चेव ने अपने द्वारा शुरू किये जा रहे पूंजीवादी उपायों को "कम्युनिज्म की ओर आगे बढ़ने" का एक हिस्सा घोषित किया; बल्कि तथ्य तो यह है कि उसने 1980 को वह तिथि घोषित किया; जब सोवियत संघ में "वर्ग विहीन" समाज कायम हो जायेगा।

न तो ख्रुश्चेव और न ही उसके उत्तराधिकारी के लिए पूंजीवादी पुनर्स्थापना का मार्ग सुगम रहा है। नेतृत्व में होने वाले उथल-पुथल और आर्थिक नीति में टेढ़े-मेढ़े परिवर्तन विभिन्न पूंजीवादी धड़ों के बीच सत्ता के लिए खींच-तान और साथ ही पूंजीवादी पुनर्स्थापना की प्रक्रिया में पैदा होने और उत्तरोत्तर तीव्र होते जाने वाले अन्तरविरोधों को हल करने या नियंत्रित करने के संशोधनवादियों द्वारा अनिवार्यतः असफल प्रयासों से यह साफ जाहिर है।

(पृष्ठ 20 का शेष)

पूंजीवादी पथगामियों ने उठाया। प्रतिक्रान्तिकारी तख्तापलट के बाद, पहला मौका मिलते ही देङ सियाओ-पिङ ने क्रान्तिकारी कमेटियों को गैरकानूनी करार दे दिया। यदि ये कमेटियां सरकार की मातहत संस्थाएं न बना दी गई होतीं तो यह कार्य कठिन होता, सर्वहारा अधिनायकत्व का आधार व्यापक होने के चलते वर्ग शक्ति संतुलन बुर्जुआ शक्तियों के इस हद तक अनुकूल नहीं होता और पूंजीवादी पथगामियों के लिए प्रतिक्रान्तिकारी तख्तापलट अपेक्षाकृत काफी कठिन होता। वैसे यह मुद्दा और अधिक विस्तृत और गहरी विवेचना की मांग करता है, पर कुल मिलाकर हमारी यह मान्यता है तकि मेहनतकश वर्गों को प्रत्यक्षतः सत्ता हस्तान्तरित करते जाने, शासन सूत्र, सीधे उनके हाथों में सौंपते जाने, नीति निर्धारण और निर्णय की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी बढ़ाते जाने और इस तरह सर्वहारा अधिनायकत्व के आधार को ज्यादा से ज्यादा व्यापक बनाते जाने के अनिवार्य कार्यभार को पूरा करने में, आम दिशा सही होते हुए भी चीन की पार्टी की कुछ सीमाएं और असफलताएं रही हैं। यदि यह काम सही ढंग से जारी रहता और पेरिस कम्यून के आदर्शों को प्रभावी ढंग से व्यवहार में रूपान्तरित किया गया होता तो केन्द्रीय कमेटी सहित ऊपरी कमेटियों में बैठे हुए और राज्य के अहम पदों पर आसीन मुट्ठी भर पूंजीवादी पथगामियों द्वारा छल-नियोजन, षड्यंत्र और फिर तख्तापलट का काम बहुत अधिक कठिन होता और लगातार जारी वर्ग-संघर्ष में पहलकदमी सर्वहारा वर्ग और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के हाथों में बनाये रखने के लिए परिस्थितियां अपेक्षतया अधिक अनुकूल होतीं।

एक बार फिर यह रेखांकित कर देना जरूरी है कि विगत महान प्रयोगों का सांगोपांग मूल्यांकन वर्तमान परिस्थितियों में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए सम्भव नहीं है। और न ही यह आज का फौरी कार्यभार है। आज हम स्तालिन काल से लेकर महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति तक की गलतियों और विच्युतियों को महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के सिद्धान्त और मार्क्स-एंगेल्स, लेनिन और माओ की शिक्षाओं की रोशनी में ही देख सकते हैं। और हमें यही करना चाहिए। और यही हमारी जरूरत है। उन्नत स्तर के सामाजिक प्रयोग हमसे ऊंचे धरातल पर विगत प्रयोगों के विचारधारात्मक समाहार की मांग करेंगे और वे ही हमें इसके लिए आवश्यक क्षमता एवं वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि भी देंगे। आज हमारे समाहार का मुख्य उद्देश्य केवल यही हो सकता है कि हर तरह के विभ्रमों -विचलनों से मुक्त होकर हम अपने पांच महान शिक्षकों के सिद्धान्त और व्यवहार से निःसृत बहुमूल्य शिक्षाओं को आत्मसात करें, विगत प्रयोगों के सकारात्मक-नकारात्मक अनुभवों से सीखें, विचाराधारा की अपनी समझदारी को क्रमशः दृढ़ से दृढ़तर बनाते जायें, विचारधारात्मक एकता को मजबूत बनाते हुए कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी कतारों को नये सिरे से एक अभेद्य दुर्ग के रूप में सजायें, एक सच्ची सर्वहारा पार्टी के निर्माण और गठन की दिशा में आगे बढ़ें और नई-नई व्यूह रचनाएं करते हुए वर्ग-युद्ध में सन्नद्ध हो जायें। ●

रूसी क्रांति का मूलभूत अभिप्राय

•

रोज़ा लक्ज़ेमबर्ग

रूसी क्रांति विश्वयुद्ध की सबसे जबरदस्त घटना है। उसका उद्भव, उसका अभूतपूर्व उग्रपरिवर्तनवाद, उसके अमिट नतीजे सब कुछ उस लफ्फाजी पर करारे तमाचे हैं, जिसे सामाजिक जनवादियों ने युद्ध की शुरुआत के समय जर्मन साम्राज्यवाद के विजय अभियान के लिए सैद्धान्तिक आवरण की तरह पेश किया था। मेरा तात्पर्य उन कथनों से है जिनके अनुसार जर्मन संगीनों का पवित्र उद्देश्य रूसी जारशाही का तख्ता पलटकर वहां की उत्पीड़ित जनता को मुक्त करना था।

रूस में क्रांति के जबरदस्त प्रवाह के साथ वर्ग संबंधों में आए गंभीर उलटफेर ने हर तरह की सामाजिक और आर्थिक समस्या को उभारा है और उनकी अपनी आन्तरिक गति का यह अपरिहार्य फल है कि ये समस्यायें बुर्जुआ रिपब्लिक के प्रारंभिक दौर से क्रांति की अगली मंजिलों तक लगातार उभरती जा रही हैं यहां तक कि आखिरकार जारशाही की समाप्ति अब एक मामूली सी घटना नजर आती है। ये सब चीजें स्पष्टतः दिखाती हैं कि रूस की मुक्ति युद्ध की या जारशाही की फौजी पराजय की उपलब्धि नहीं थी, न ही वह 'जर्मन मुट्ठी में जर्मन संगीनों' की देन थी जैसे कि काउत्स्की के संपादन में 'न्यू जीट' अखबार में दावा किया गया था। उसके विपरीत -- उसकी जड़ें उसी रूस की जमीन में गहरी जमी थीं और भीतर से पूरी तरह विकसित हो चुकी थीं। जर्मन सामाजिक जनवादियों के सैद्धान्तिक आशीर्वाद के साथ आक्रामक जर्मन साम्राज्यवाद का फौजी दुःस्साहस रूस में क्रांति नहीं लाया, उलटे उसने कुछ समय तक उसमें रुकावट ही डाली, कुछ समय के लिए उसे स्थगित ही किया (1911-13 के तूफानी उभार के बाद), और उसके विस्फोट के बाद उसके लिए कठिनतम और अति अस्वाभाविक परिस्थितियां ही पैदा कीं।

इसके अलावा यह घटनाक्रम निर्णायक रूप से काउत्स्की और सरकारी सामाजिक जनवादियों के उग्र सिद्धान्त का खण्डन करता है जिसके अनुसार आर्थिक रूप से पिछड़ा और प्रमुख रूप से कृषि पर निर्भर रूस सामाजिक क्रांति या सर्वहारा अधिनायकवाद के लिए परिपक्व नहीं था। इस सिद्धान्त के अनुसार रूस में सिर्फ बुर्जुआ क्रांति ही संभव थी और यह सिद्धांत रूसी श्रमिक आन्दोलन के मौकापरस्त हिस्से ने, तथाकथित मेन्शेविकों ने भी अपना रखा है। इसी अवधारणा में से समाजवादियों और बुर्जुआ उदारवाद के बीच गठजोड़ की रणनीति निकलती है। रूसी क्रांति की इस बुनियादी अवधारणा और उससे अपने आप निकलने वाली रणनीति के सवालों पर उनकी मान्यताओं के कारण ही रूस और जर्मनी के मौकापरस्त खुद को जर्मनी के सरकारी समाजवादियों के साथ एकमत पाते हैं। इन तीनों के अनुसार रूसी क्रांति को उस मंजिल तक पहुंचकर रुक जाना चाहिए था जिसे जर्मन साम्राज्यवाद ने युद्ध संचालन में अपना पवित्र उद्देश्य बना रखा था। यानी सामाजिक जनवादियों की परिकथाओं में उन्हें जारशाही के उखाड़ फेंके जाने पर रुक जाना था। इस नजरिये के अनुसार अगर क्रांति उस बिन्दु से आगे बढ़ती है और अपने लिए सर्वहारा अधिनायकत्व का कार्य तय करती है तो यह रूसी मजदूर आन्दोलन के अतिवादी हिस्से की, बोल्शेविकों की एक भूल है और क्रांति के विकास में उठी सभी कठिनाइयां और उससे पैदा हुई सभी गड़बड़ियां इसी घातक भूल का परिणाम है।

सिद्धान्ततः, यह मत (जिसे काउत्स्की आदि ''मार्क्सवादी'' सोच का फल बताते हैं) इस मौलिक ''मार्क्सवादी'' शोध से निकलता है, कि समाजवादी क्रांति एक राष्ट्रीय यानी हर आधुनिक देश का अपना अन्दरूनी मामला है। अलबत्ता, अमूर्त सूत्रों के धुंधलके में काउत्स्की को पता है कि पूंजी के विश्वव्यापी आर्थिक धागों को कैसे खोजा जाए जिससे कि सभी आधुनिक देश मिलकर एक समग्र अवयव बनता हो। क्योंकि रूसी क्रांति की समस्याएं अन्तरराष्ट्रीय घटनाक्रमों और कृषि के प्रश्न दोनों से उपजती हैं, इसलिए वे संभवतः बुर्जुआ समाज की सीमाओं के भीतर सुलझ भी नहीं सकती।

व्यवहार में, यह मत उन कोशिशों का प्रतिनिधित्व करता है जो रूसी क्रांति को अन्तरराष्ट्रीय, खासकर जर्मन सर्वहारा के प्रति अपनी जिम्मेदारी से बरी करती है और क्रांति के अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के अस्तित्व से इन्कार करती है। युद्ध और रूसी क्रांति की घटनाएं रूस की अपरिपक्वता नहीं दिखातीं, वरन इस बात का सबूत देती हैं कि जर्मन सर्वहारा अपने ऐतिहासिक कर्तव्यों को पूरा करने के लिए अपरिपक्व है और इसी सच्चाई को स्पष्ट करना रूसी क्रांति के सटीक विश्लेषण का पहला उद्देश्य है।

रूसी क्रांति का भविष्य पूरी तरह अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं पर निर्भर था। बोल्शेविकों द्वारा विश्व सर्वहारा क्रान्ति को अपनी सारी नीतियों का आधार बनाना उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता का व सिद्धान्तों की दृढ़ता का भी सबूत है और उनकी नीतियों के व्यापक दायरे का भी। उसी में, पिछले दशक में की हुई पूंजीवादी विकास भारी प्रगति के भी दर्शन होते हैं। 1905-7 की क्रान्ति ने यूरोप में एक हल्की सी प्रतिध्वनि को जन्म दिया था। इसलिए वह मात्र एक शुरुआती अध्याय बन सकी। उसकी निरन्तरता और संपन्नता जुड़ी थी यूरोप के अगले घटनाक्रम से।

स्पष्ट है कि अविवेकी समर्थन से नहीं, वरन् भेदक और सुविचारी आलोचना से ही अनुभवों एवं ज्ञान के भण्डार खुल सकेंगे। चूंकि, हम विश्व इतिहास में सर्वहारा तानाशाही के पहले ही प्रयोग की छानबीन कर रहे हैं (और वह भी कठिनतम परिस्थितियों में, दुनियाभर में साम्राज्यवादी जनसंहार की भभक और उठापटक के बीच और यूरोप की अत्यन्त प्रतिक्रियावादी ताकतों से घिरा तथा विश्व सर्वहारा वर्ग की संपूर्ण विफलता के माहौल में घटित हो रहा है), हमें इस पागल मान्यता से बचना चाहिए कि सर्वहारा तानाशाही के इस एक प्रयोग में हर चीज जो की जा रही है या नहीं की जा रही है वही परिपूर्णता की मिसाल है। उलटे समाजवादी राजनीति की साधारण अवधारणाओं और उनकी ऐतिहासिक रूप से आवश्यक पूर्वशर्तों की समझ हमें इतना मानने के लिए मजबूर करती है कि, इतनी घातक स्थितियों में महानतम आदर्शवाद और तूफानी क्रान्तिकारी भी जनवाद और

समाजवाद को साकार करने में असमर्थ ही होंगे; वे उन्हें मूर्तरूप देने की कुछ टेढ़ी-मेढ़ी कोशिशें ही कर सकते हैं।

इस वास्तविकता को, उसके तमाम बुनियादी पहलुओं और नतीजों के साथ उभारना दुनिया भर के समाजवादियों का प्राथमिक कर्तव्य है; क्योंकि इसी कटु समझ की पृष्ठभूमि में ही हम हिसाब लगा सकते हैं कि विश्व सर्वहारा की रूसी क्रान्ति के भविष्य के प्रति जिम्मेदारी कितनी बड़ी और विकट है। फिर इसी बुनियाद पर ही सर्वहारा क्रान्ति के संकल्पबद्ध अन्तरराष्ट्रीय कामों के निर्णायक महत्व को प्रभावकारी बनाया जा सकता है। और यह काम ऐसा है जिसके समर्थन के अभाव में एक देश के सर्वहारा की बड़ी से बड़ी कुर्बानियां और बड़ी से बड़ी ऊर्जा भी अनिवार्यतः अन्तरविरोधों और भारी भूलों के जंजाल में उलझ जायेगी।

इसमें कोई शक नहीं कि रूसी क्रान्ति के प्रबुद्ध नेताओं, लेनिन और त्रात्स्की ने अपने कांटों और भूल-भूलैयों भरे रास्ते में कई निर्णायक कदम अत्यधिक हिचकिचाहट और विकटतम आन्तरिक विरोध के साथ उठाये हैं। और उन्होंने निश्चित ही ऐसा कभी नहीं सोचा होगा कि घटनाओं के इन गरजते बवण्डरों के बीच उपजी आवश्यकता और कड़वी विवशताओं की परिस्थितियों में किये गये या छोड़ दिये गये सभी कामों को इण्टरनेशनल द्वारा समाजवादी नीति के ऐसे अनुकरणीय उदाहरणों का दर्जा दें जिनके प्रति केवल अनालोच्य स्तुति और उत्साहजनक नकल ही उपयुक्त है।

यह डर भी उतना ही गलत है कि रूसी क्रान्ति के अबतक के रास्ते की आलोचनात्मक छानबीन उसके प्रति आदर और आकर्षण कम करेगी, जिस छानबीन से ही वास्तव में जर्मन जनता की घातक निष्क्रियता दूर हो सकती है। जर्मनी के मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी जोश को जगाना अब जर्मन सामाजिक जनवाद के संरक्षणवादी तरीकों से तो संभव नहीं। वह अब कभी किसी किस्म की बेदाग सत्ता (authority) के जरिए नहीं उभारी जा सकती चाहे वह सत्ता 'उच्चतर समितियों' की हो या रूसी उदाहरण की। यह काम क्रान्ति की वाहवाही से नहीं होगा, उल्टे, सारी डरावनी गंभीरतायें, सारे कामों की जटिलता में गहरे झांकने से ही, राजनीतिक परिपक्वता और चिंतन की स्वतंत्रता के नतीजे में ही, केवल जनता द्वारा सटीक न्याय देने की क्षमता के नतीजे में ही (जिस क्षमता को सामाजिक जनवाद ने दशकों तक विभिन्न बहानों से व्यवस्थित ढंग से नष्ट किया था) जर्मन सर्वहारा में ऐतिहासिक कार्य करने की सच्ची क्षमता पैदा होगी। रूसी क्रान्ति के तमाम ऐतिहासिक संबंधों सहित आलोचनात्मक विश्लेषण पर ध्यान देना जर्मन और अन्तरराष्ट्रीय मजदूर वर्ग का इस काम के लिए एक बेहतरीन प्रशिक्षण होगा जो वर्तमान परिस्थिति से उत्पन्न कार्यों

अक्टूबर क्रान्ति की ७९वीं वर्षगांठ के अवसर पर

७ नवम्बर : जीतों के दिन की शान में गीत

• पाब्लो नेरूदा

(१९५१ में लिखी गई लम्बी कविता का एक अंश)

इस मुबारक दिन तुम्हें शुभकामनाएं देता हूं सोवियत संघ,
विनम्रता के साथ। मैं एक लेखक और कवि हूं।
मेरे पिता रेल मजदूर थे। हम हमेशा गरीब रहे।
कल मैं तुम्हारे साथ था, बहुत दूर भारी बारिशों वाले अपने
छोटे से देश में। वहां तुम्हारा नाम लोगों के दिलों में जलते-जलते
सुर्ख हो गया
जब तक वह मेरे देश के ऊंचे आकाश को छूने नहीं लगा।

आज मैं उन्हें याद करता हूं, वे सब तुम्हारे साथ हैं।
फैक्ट्री दर फैक्ट्री, घर दर घर,
तुम्हारा नाम उड़ता है लाल चिड़िया की तरह।
तुम्हारे वीर यशस्वी हों, और तुम्हारे खून की
हरेक बूंद। यशस्वी हो हृदयों की बह-बह निकलती बाढ़
जो तुम्हारे पवित्र और गौरवपूर्ण आवास की रक्षा करते हैं।

यशस्वी हो वह बहादुरी भरी और कड़ी रोटी,
जो तुम्हारा पोषण करती है जबकि वक्त के द्वार खुलते हैं।

ताकि जनता और लोहे की तुम्हारी फौज गाते हुए
गरम और उजाड़ मैदानों के बीच से
हत्यारों के खिलाफ कर सके मार्च ताकि
चांद जितना विशाल एक गुलाब
रोप सके जीत की सुंदर और पवित्र भूमि पर।

को पूरा करने के लिए आवश्यक है।

रूसी क्रान्ति का शुरुआती दौर, मार्च से अक्टूबर क्रान्ति तक का दौर अपनी मोटी रूपरेखा में यूरोप की दोनों क्रान्तियों, महान अंग्रेजी क्रान्ति और महान फ्रांसीसी क्रान्ति से बिल्कुल संगति रखने वाला है। बुर्जुआ समाज के गर्भ में जन्मी क्रान्तिकारी ताकतों के प्रत्येक पहले उभार का हिसाब चुकाने का यही विशिष्ट तरीका है।

उसका विकास स्वाभाविक रूप से आरोही दिशा में होता है। मामूली शुरुआत से लेकर सतत उग्रतर लक्ष्यों की ओर और उसी के समानान्तर चलता वर्गों और पार्टियों के गठजोड़ से लेकर सर्वाधिक उग्र पार्टी का एकछत्र शासन।

मार्च 1917 के शुरू में ''कैडेट्स'' अर्थात् उदारतावादी बुर्जुआ क्रान्ति के नेतृत्व में थे। क्रान्तिकारी ज्वार का पहला उभार हरेक को और प्रत्येक चीज को बहा ले गया। चौथी दूमा यानी अति प्रतिक्रियावादी चार वर्गों के मताधिकार की अतिप्रतिक्रियावादी उपज, जो एक तख्तापलट से पैदा हुई थी, अचानक क्रान्ति के एक साधन में बदल दी गई। सभी बुर्जुआ पार्टियां, यहां तक कि राष्ट्रवादी दक्षिणपंथी भी, अचानक निरंकुशतावाद के विरुद्ध गोलबंद हो गई। सत्ता तो, पहले ही धक्के में ऐसे गिरी मानो कोई मृत अंग हो, जिसे गिर जाने के लिए, बस छूने भर की देर हो। राजवंश और गद्दी को प्रतीक रूप से बचाने की उदारवादी बुर्जुआ की एक संक्षिप्त कोशिश कुछ घण्टों में ही मिट्टी में मिल गई। घटना प्रवाह की चाल इतनी तेज रही कि, वे दूरियां, जो पहले कभी फ्रांस में, दशकों में तय हुई थीं, यहां कुछ दिनों और घण्टों में नाप ली गई। इससे यह स्पष्ट हुआ कि, यूरोपीय घटनाओं की एक सदी के नतीजे रूस में घटित हो रहे हैं। और सबसे बढ़कर यह कि, 1917 की क्रान्ति 1905-07 की क्रान्ति की निरन्तरता ही थी, न कि जर्मन 'मुक्तिदाता' का उपहार। मार्च 1917 का आंदोलन उस बिन्दु पर श्रृंखलाबद्ध हुआ जहां दस वर्ष पहले उसका काम छूट गया था। जनवादी गणतंत्र क्रान्ति के पहले उभार का समग्र और भीतर से पूरी तरह पका हुआ फल था।

अब, लेकिन, यह दूसरा और अधिक कठिन काम शुरू हुआ। पहले क्षण से ही क्रान्ति की संचालक शक्ति शहरी समुदाय ही थे। मगर उसकी मांगें राजनीतिक जनवाद तक सीमित नहीं थीं -- वे अन्तरराष्ट्रीय नीति के ज्वलन्त प्रश्न से बराबर सरोकार रखे हुए थीं -- तत्काल शान्ति का प्रश्न। क्रान्ति ने सैनिकों को भी समेटा जिन्होंने वही, तत्काल शान्ति की मांग उठाई थी और किसानों को भी, जिन्होंने कृषि के सवाल को सामने रखा, वही कृषि का सवाल जो 1905 से ही क्रान्ति की धुरी रहा था। तत्काल शान्ति और जमीन -- इन दो लक्ष्यों के कारण क्रान्तिकारी जत्थे में भीतरी विभाजन अवश्यम्भावी था। तत्काल शान्ति की मांग उदारवादी बुर्जुआ की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के कट्टर विरोध में थी। दूसरी ओर, जमीन का सवाल, ग्रामीण बुर्जुआ वर्ग के ही एक और हिस्से के लिए डरावनी काली छाया थी। और इसके अलावा, वह आमतौर पर व्यक्तिगत संपत्ति के उस पवित्र सिद्धान्त पर हमले का प्रतिनिधित्व करता था यानी संपूर्ण सम्पत्तिवान वर्ग के लिए एक संवेदनशील मुद्दा था।

इस प्रकार, क्रान्ति की जीत के पहले दिन से ही उसके भीतर दो ज्वलन्त प्रश्नों -- शान्ति और जमीन -- पर संघर्ष चालू हुआ। उदारवादी बुर्जुआ चीजों को लम्बा खींचने और टालते जाने के दांवपेंच लड़ाता रहा। श्रमिक जनता, सेना और किसान उन्हें और ज्यादा शिद्दत के साथ आगे धकेलते रहे। इसमें कोई शक नहीं कि, गणतंत्र के राजनीतिक जनवाद का भविष्य शान्ति और जमीन के सवालों के साथ जुड़ा था। बुर्जुआ वर्गों ने क्रान्ति की तूफानी लहरों में बहकर खुद को गणतांत्रिक शासन तक खिंच जाने दिया। फिर वे पिछली कतारों में खुद के लिए समर्थन का आधार ढूंढ़ने लगे और चुपके-चुपके प्रतिक्रान्ति संगठित करने लगे। पीटर्सबर्ग के खिलाफ कालेदिन कज्जाक अभियान इस प्रवृत्ति की एक स्पष्ट अभिव्यक्ति था। अगर वह हमला सफल होता, तो न केवल शांति और जमीन के प्रश्नों पर, बल्कि गणतंत्र के भाग्य पर ही मुहर लग जाती। सैनिक तानाशाही, सर्वहारा के विरुद्ध आतंक का राज और फिर राजतंत्र की वापसी, ये ही अपरिहार्य नतीजे सामने आते।

इससे हम अंदाज लगा सकते हैं कि, रूसी 'काउत्स्कीवादियों' अर्थात् मेन्शेविकों की रणनीतियां कितनी स्वप्नलोकी और प्रतिक्रियावादी स्वरूप की थीं। रूसी क्रान्ति के बुर्जुआ चरित्र की परिकथा का नशा और गहराने के कारण वे बुर्जुआ उदारवादियों के साथ गठजोड़ से ही बुरी तरह चिपटे रहे। लेकिन इस गठजोड़ का मतलब हुआ ऐसे तत्वों की एकता जो क्रान्ति के स्वाभाविक विकास के परिणामस्वरूप विभाजित होकर तीखे झगड़ों में एक-दूसरे के आमने-सामने आ गये थे। अक्सेलरोद और दान जैसे व्यक्ति उन वर्गों और पार्टियों के साथ हर कीमत पर सहयोग कर रहे थे जो क्रान्ति और उसकी प्रथम उपलब्धि ''जनवाद'' के लिए ही गंभीर खतरा बन गये थे।

यह देखना विशेष रूप से आश्चर्यजनक है, कि, यह उद्यमी (काउत्स्की) विश्वयुद्ध के चार वर्षों के दौरान अपने शान्तिपूर्ण और व्यवस्थित लेखन के अथक परिश्रम से किस प्रकार समाजवाद के ताने-बाने में एक के बाद एक छेद करता रहा। यह ऐसा परिश्रम है जिसमें से समाजवाद एकदम छलनी-छलनी होकर उभरता है। जिस अनालोच्य, पूर्ण स्वीकृति के साथ उसके अनुगामी अपने अधिकृत सिद्धान्तकार के उद्योग को और उसके हर अविष्कार को अपनाते जाते हैं उसका मुकाबला शीदेमान और कम्पनी के उन अनुगामियों के साथ ही किया जा सकता है जो व्यवहार में, समाजवाद के हर जगह छलनी किये जाने को पूरी बेरुखी के साथ देखते रहते हैं। सचमुच, ये दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं। युद्ध की शुरुआत से ही, काउत्स्की यानी मार्क्सवाद के मन्दिर का अधिकृत अभिभावक, सिद्धान्त में वे ही काम कर रहा है जो शीदेमानों ने व्यवहार में किये हैं, अर्थात् : (1) इण्टरनेशनल को शान्ति का उपकरण; (2) निरस्त्रीकरण, लीग ऑफ नेशन्स और राष्ट्रवाद; और (3) जनवाद, न कि, समाजवाद।

इस हालत में बोल्शेविक प्रवृत्ति ने एक ऐतिहासिक सेवा की है, शुरू से ही उन रणनीतियों की घोषणा करके और उन पर लगातार कठोरता से अमल करके, जो जनवाद को बचा सकती हैं और क्रान्ति को आगे बढ़ा सकती हैं। सारी सत्ता अनन्य रूप से मजदूर और किसान जनता को, सोवियतों के हाथों में, यही एकमात्र तरीका था क्रान्ति को रास्ते की कठिनाइयों से उबारने का। विकट गुत्थी पर एक जबर्दस्त चोट यही थी जिससे उन्होंने क्रान्ति को अंधी गली से बाहर निकाला और उसके लिए खुले मैदानों का अबाधित रास्ता खोला।

इस प्रकार, लेनिन की पार्टी ही रूस में एकमात्र पार्टी थी जो उस प्रारंभिक दौर में क्रान्ति के सच्चे हित पकड़ पाई। यही वह तत्व था जिसने क्रान्ति को आगे संचालित किया और इस तरह वही एक पार्टी थी जिसने समाजवादी नीति पर वास्तव में अमल किया।

इसी से समझ में आता है कि, क्यों बोल्शेविक जो शुरू में प्रताड़ित, अपमानित, हर तरफ से हमलों के शिकार अल्पसंख्यक थे, न्यूनतम समय में ही क्रान्ति के प्रमुख बन गये और सभी सच्चे जनों, शहरी सर्वहारा, सेना, किसानों, इसी तरह जनवाद के क्रान्तिकारी तत्वों और समाजवादी क्रान्तिकारियों के वाम दस्तों को अपने झण्डे तले ला पाये।

रूसी क्रान्ति की ठोस परिस्थितियां ऐसी थीं कि, कुछ ही महीनों में केवल दो ही विकल्प बचे-प्रतिक्रान्ति की विजय या सर्वहारा की तानाशाही -- कालेदिन या लेनिन। यह वस्तुगत

स्थिति थी जैसी कि हर क्रान्ति में शुरू की उत्तेजना के बाद बनती है, और रूस में वह दो ठोस ज्वलन्त प्रश्नों के फलस्वरूप बनी – शान्ति और जमीन के प्रश्न जिनके हल बुर्जुआ क्रान्ति के ढांचे में संभव नहीं थे।

इस मामले में, रूसी क्रान्ति ने हर महान क्रान्ति की बुनियादी सीख की पुष्टि ही की है, उसके अस्तित्व के सिद्धान्त की, जिसका मायने है : या तो क्रान्ति तीव्र, तूफानी गति से, निर्णायक लयताल के साथ आगे बढ़े, सभी बाधाओं को फौलादी हाथों से तोड़ दे और अपने लक्ष्यों को अधिकाधिक ऊंचे तय करे, या फिर, वह शीघ्र ही पीछे धकेल दी जायेगी, उसके कमजोर प्रस्थान-बिन्दु के पीछे, और प्रतिक्रान्ति द्वारा कुचल दी जायेगी। कहीं स्थिर हो जाना, एक बिन्दु पर आकर समय काटना, पहले ही उद्देश्य से संतुष्ट हो जाना, यह क्रान्ति में सम्भव ही नहीं। और जो कोई संसद की चूहे-मेंढकों की लड़ाइयों से उपजी भोली समझ का इस्तेमाल क्रान्तिकारी दांवपेंचों के क्षेत्र में करता है, इतना ही दिखाता है कि, क्रान्ति का मनोविज्ञान, उसके गति के नियम उसके लिए एकदम पराये हैं और सारा ऐतिहासिक अनुभव उसके लिए सात तालों में बन्द एक पुस्तक मात्र है।

1642 की अंग्रेजी क्रान्ति को लीजिए। वहां परिस्थिति के तकाजे ने यह अनिवार्य कर दिया कि, प्रेस्बिटेरियनों, जो चार्ल्स (प्रथम) के साथ निर्णायक लड़ाई से बचते रहे, के स्थान पर इण्डिपेण्डेण्ट्स आते, जिन्होंने उन्हें पार्लियामेण्ट से बाहर कर दिया और सत्ता पर खुद काबिज हुए। और, इसी तरह इण्डिपेण्डेण्ट्स की सेना में निम्न बुर्जुआ सैनिक जन लिल्बर्नवादी लेवलर्स सम्पूर्ण इण्डिपेण्डेण्ट आंदोलन की संचालक शक्ति बने। और आखिरकार उन सैनिकों में से सर्वहारा तत्व ही सामाजिक क्रान्ति की आकांक्षा पालने वालों में सबसे आगे बढ़े जिन्हें डिगर आंदोलन में अभिव्यक्ति मिली और जो लेवलर्स की डेमोक्रेटिक पार्टी के उत्प्रेरक बने।

सैनिकों पर सर्वहारा तत्वों के प्रभाव बिना, जनवादी सैनिकों द्वारा इण्डिपेण्डेण्ट पार्टी के बुर्जुआ उच्च स्तरों पर दबाव बिना, न तो दीर्घजीवी संसद का, प्रेस्बिटेरियनों को हटाकर शुद्धिकरण होता, न कैवेलियर्स और स्कॉट फौजों के साथ युद्ध में विजय होती, न चार्ल्स प्रथम पर मुकदमा चलता और उसे फांसी लगती, न ही हाउस ऑफ लॉर्ड्स की समाप्ति और गणतंत्र की घोषणा ही होती।

और महान फ्रांसिसी क्रान्ति में क्या हुआ? यहां चार वर्ष के संघर्ष के बाद जैकोबिनों द्वारा सत्ता पर कब्जा करना ही क्रान्ति की उपलब्धियों को बचाने का एकमात्र साधन था; वही गणतंत्र प्राप्त करने का, सामन्तवाद को नेस्तनाबूद करने का, और भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं से बचाव के लिए क्रान्तिकारी सुरक्षा व्यवस्था गठित करने का और प्रतिक्रान्ति के षड्यंत्रों को कुचलकर क्रान्ति की लहरों को फ्रांस से शेष यूरोप तक फैलाने का साधन था।

काउत्स्की और उसके रूसी सहधर्मी, जो रूसी क्रान्ति के प्रारंभिक दौर का बुर्जुआ चरित्र बनाये रखना चाहते थे, पिछली सदी के उन जर्मन और अंग्रेजी उदारवादियों के सही प्रतिरूप हैं जिन्होंने महान फ्रांसीसी क्रान्ति के दो विख्यात कालों में फर्क किया था -- पहली, जिरोन्दिस्त दौर की ''अच्छी'' क्रान्ति और दूसरी, जेकोबिन विद्रोह के बाद की ''बुरी'' क्रान्ति। इतिहास की अवधारणा का उदारवादी सतहीपन निश्चय ही यह समझने की कोशिश नहीं करता कि, उन ''अमर्यादित'' जैकोबिनों के विप्लव के अभाव में जिरोन्दिस्त काल की पहली अधकचरी उपलब्धियां भी जल्द ही क्रान्ति के ध्वंसावशेषों के नीचे दफना दी जाती, और न यह कि, जैकोबिन अधिनायकवाद का वास्तविक विकल्प जैसा कि ऐतिहासिक विकास के अटलपथ ने यह प्रश्न 1793 में उठाया -- ''मर्यादित'' जनवाद नहीं, बल्कि बूरबों की वापसी था। क्रान्ति में ''सर्वप्रिय मध्यमान'' को बनाये नहीं रखा जा सकता। उसकी प्रकृति का नियम शीघ्र निर्णय की मांग करता है। या तो गाड़ी पूरी ऊर्जा के साथ इतिहास की चढ़ाई के सर्वोच्च शिखर तक आगे बढ़ेगी, या वह अपने ही बोझ तले पीछे की ओर लुढ़कती हुई उसी प्रारंभिक प्रस्थान-बिन्दु तक पहुंचेगी, और जो लोग उसे अपनी कमजोर ताकत के सहारे पहाड़ी की आधी ऊंचाई पर स्थिर रखना चाहेंगे, उन्हें वह अपने साथ, बिना किसी बचने की संभावना के, गहनतम खाई में घसीट ले जायेगी।

अतः यह स्पष्ट है कि हर क्रान्ति में उसी पार्टी के हाथों में नेतृत्व और सत्ता आती है, जिसमें क्रान्ति को आगे बढ़ाने के लिए उपयुक्त नारे देने का और उत्पन्न स्थिति से सभी आवश्यक निष्कर्ष निकालने का साहस हो। इससे रूसी मेन्शेविकों की दयनीय भूमिका साफ होती है, जिनका शुरू के दिनों में, जनता पर भारी प्रभाव था, किन्तु लम्बे समय तक ढुलमुल रहने और सत्ता तथा जिम्मेदारी लेने के विरोध में पूरे हाथ-पैर मारने के बाद, वे मंच से बुरी तरह निकाल बाहर कर दिये गये। लेनिन की पार्टी ही एकमात्र थी जिसने जनादेश को और एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी के कर्तव्यों को पकड़ा था और जिसने ''सारी सत्ता मजदूरों और किसानों को'' के नारे के साथ क्रान्ति के निरन्तर विकास को सुनिश्चित कर लिया।

इस तरह बोल्शेविकों ने ''बहुसंख्य जनता को जीत लेने'' की समस्या को हल किया, जबकि, जर्मन सामाजिक जनवाद पर यह समस्या एक दुःस्वप्न की तरह बोझ बनी रही। संसदीय बौनों के पैदाइशी शिष्यों के अनुरूप जर्मन सामाजिक जनवादी क्रान्ति के क्षेत्र में, संसदीय पाठशाला से प्राप्त इस भोले ज्ञान का प्रयोग करते रहे हैं कि, कुछ भी हासिल करने के लिए आपके पास पहले बहुमत होना चाहिए। मगर क्रान्ति की वास्तविक द्वंद्वात्मक गति संसदीय छछून्दरों के इस ज्ञान को सिर के बल उलट देती है : बहुमत के माध्यम से क्रान्तिकारी रणनीति तक नहीं, क्रान्तिकारी रणनीति के माध्यम से बहुमत तक -- रास्ता यूं चलता है।

सिर्फ वह पार्टी जो नेतृत्व देना जानती है यानी चीजों को आगे बढ़ाना जानती है, सिर्फ वही पार्टी तूफानी उथल-पुथल के समय में समर्थन हासिल करती है। निर्णायक घड़ी में, लेनिन और उनके साथियों ने वह एकमात्र हल पेश किया जिसने चीजों को आगे बढ़ाया -- ''सारी सत्ता मजदूरों और किसानों के हाथ''। उसी ने उन्हें, रातोंरात एक प्रताड़ित, अपमानित, गैरकानूनी अल्पमत, जिसके नेता को मारा (फ्रांसीसी क्रांति के नेताओं में एक) की तरह तहखानों में छुपना पड़ता था, से निकालकर परिस्थितियों का परम नियोक्ता बना दिया।

इसके अतिरिक्त, बोल्शेविकों ने तत्काल ही, सत्ता पर कब्जे का लक्ष्य रखा; एक समग्र दूरदर्शी क्रान्तिकारी कार्यक्रम बुर्जुआ -- जनवाद की सुरक्षा नहीं, वरन समाजवाद की प्राप्ति के लिए सर्वहारा अधिनायकत्व। इस प्रकार इतिहास में पहली बार समाजवाद (के अन्तिम लक्ष्य) को सीधे व्यावहारिक राजनीति का प्रोग्राम घोषित करने का श्रेय उन्हें मिला।

जो साहस, क्रान्तिकारी दूरदर्शिता और तर्कसंगतता कोई पार्टी किसी ऐतिहासिक घड़ी में दे सकती है, वही लेनिन, और उनके साथियों ने प्रचुर मात्रा में दिया। पश्चिमी सामाजिक जनवाद में जिस क्रान्तिकारी प्रतिष्ठा और क्षमता का अभाव रहा है उसका प्रदर्शन बोल्शेविकों ने किया। उनका अक्टूबर का विप्लव न केवल रूसी क्रान्ति का वास्तविक उद्धार था बल्कि वह अन्तरराष्ट्रीय समाजवाद की प्रतिष्ठा का भी उद्धार था।

अनुवाद : **नीला हर्डीकर**

साहित्य-चिन्तन

फ्रे.एंगेल्स के जन्मदिन (28 नवम्बर) के अवसर पर

विचारधारात्मक अंतर्वस्तु और यथार्थवाद

• फ्रेडरिक एंगेल्स के दो पत्र

कला–साहित्य सृजन के क्षेत्र में ज्ञान के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त के व्यवहार के बारे में –– समाजवादी यथार्थवाद और मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के बारे में पूंजीवादी और छद्‌म वामपंथी सिद्धान्तकार आज नई व्याख्याओं के नाम पर भांति–भांति के प्रपंच रच रहे हैं। न केवल वे "नई परिस्थितियों के अनुरूप विकास" के नाम पर तरह–तरह की छद्‌मवेशी रूपवादी प्रस्थापनाएं प्रस्तुत कर रहे हैं, बल्कि वे मार्क्सवाद के संस्थापकों की बुनियादी मान्यताओं तक को तोड़ने–मरोड़ने का काम कर रहे हैं।

ऐसा स्वाभाविक है। अतीत की क्रान्तियों से शासक वर्गों ने भी शिक्षा ली है। संस्कृति और विचार के क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग के जागरूक हिस्सों और आम जनता तथा मध्य वर्ग के रैडिकल हिस्सों को निरस्त्र करना और विभ्रमग्रस्त करना वे यथास्थिति को बनाये रखने के लिए जरूरी समझते हैं। इसलिए ऐसा आज वे बड़े पैमाने पर कर रहे हैं –– उत्तर आधुनिकतावाद और उत्तर संरचनावाद के नाम पर भी और उनके विरोध की मुद्रा अपनाये हुए भांति–भांति के नववामपंथ के नाम पर भी। इनका प्रतिकार जरूरी है। इनके छद्‌म को नंगा किया जाना चाहिए। साथ ही यह भी एक जरूरी कार्यभार है कि मार्क्सवाद की कला–साहित्य विषयक बुनियादी मान्यताओं की मार्क्सवाद के पुराने पाठकों को याद दिलाई जाये और नये पाठकों को भी उनसे परिचित कराया जाये।

1992 में फ्रेडरिक एंगेल्स के जन्मदिन के अवसर पर हमने आर्थिक मूलाधार और अधिरचनात्मक तंत्र के बीच के द्वंद्वात्मक अन्तर्सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाले एंगेल्स के पत्रों के कुछ अंश प्रकाशित किये थे। इस बार हम इस अवसर पर, एंगेल्स के दो अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्र छाप रहे हैं जो विचारधारात्मक अन्तर्वस्तु और यथार्थवाद के बारे में वैज्ञानिक समाजवाद के संस्थापकों द्वारा निरूपित बुनियादी अवधारणाओं को स्पष्ट करते हैं। आगे चलकर समाजवादी यथार्थवाद के बारे में कलात्मक सृजन के दायरे में सर्वहारा वर्ग के विश्व–दृष्टिकोण के प्रयोग के बारे में प्लेखानोव, लेनिन और माओ के अतिरिक्त गोर्की, ब्रेख्त, आइजेंस्ताइन, लूनाचार्स्की, हावर्ड फास्ट, कॉडवेल, रॉल्फ फॉक्स आदि ने जो महत्वपूर्ण चिंतन किया और किंचित विचलनों के बावजूद लूकाच, ग्राम्शी आदि जैसे चिंतकों ने जो प्रश्न उठाये और मुद्‌दे रेखांकित किये, उन्हें समझने के लिए, गहराई में उतरने के लिए तथा समकालीन चुनौतियों के रूबरू खड़े होने के लिए इन बुनियादी अवधारणाओं पर स्पष्टता बेहद जरूरी है।

फ्रेडरिक एंगेल्स के इन दो पत्रों के साथ ही, हम ब. क्रिलोव के एक लेख का वह अंश भी छाप रहे हैं, जिसमें इन पत्रों में प्रस्तुत विचारों पर एक परिचयात्मक टिप्पणी की गई है। – सम्पादक

मिन्ना काउत्स्की को एंगेल्स की चिट्ठी

लंदन, 26 नवम्बर, 1885

मैंने 'प्राचीन तथा अर्वाचीन' उपन्यास पढ़ लिया है। उसे भेजने के लिए हार्दिक धन्यवाद। नमक की खान के मजदूरों की जिंदगी का वर्णन उतनी ही दक्षता से किया गया है, जितनी दक्षता से 'स्तेफान' में किसानों के जीवन का वर्णन किया गया है। वियेना समाज के जीवन की तस्वीरें भी अधिकांश रूप से बहुत सुन्दर हैं। वियेना सचमुच एकमात्र ऐसा जर्मन नगर है, जहां समाज है; बर्लिन में मात्र "कतिपय मंडलियां" हैं और इससे भी अधिक अनिश्चित, इसलिए उसकी धरती केवल साहित्यकारों, सरकारी कर्मचारियों अथवा कलाकारों के जीवन के बारे में उपन्यासों को जन्म देती हैं आपकी कृति के इस भाग में कथानक कभी-कभी बहुत द्रुत गति से विकसित हुआ है या नहीं, इसका निर्णय आप मुझसे बेहतर कर सकती हैं। बहुत सी चीजें, जो हमारे मन में यह भाव पैदा करती हैं, वियेना में उसके निराले अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप और दक्षिणी तथा पूर्व यूरोपीय तत्वों के मिश्रण को देखते हुए सर्वथा स्वाभाविक लगती हों। दोनों क्षेत्रों में पात्र वह तीक्ष्ण व्यक्तिकरण प्रदर्शित करते हैं, जो मेरी राय में आपकी कृतियों की लाक्षणिकता है; उनमें से प्रत्येक एक प्रारूप है, परन्तु साथ ही पूरी तरह निश्चित व्यक्ति, जैसा कि बूढ़े हेगेल कहा करते थे, "यह" है, और ऐसा ही होना भी चाहिए। परन्तु निष्पक्षता बरतने के लिए मुझे किसी न किसी चीज में त्रुटि ढूंढ़नी होगी और यहां मुझे आर्नोल्ड के बारे में कहना होगा। वह सचमुच अत्यधिक निष्कलंक है और जब वह भूस्खलन में अन्ततः मारा जाता है, तो इसका काव्यमय न्याय के साथ यह मानकर मेल बिठाया जा सकता है कि वह इस दुनिया के लिए जरूरत से ज्यादा भला था। परन्तु लेखक को अपने ही नायक पर कभी नहीं रीझना चाहिए, और मुझे लगता है कि यहां आप कुछ हद तक इस गलती के चक्कर में आ गयी हैं। एल्जा में कुछ वैयक्तिक गुण बने हुए हैं, हालांकि उसका भी कुछ आदर्शीकरण किया गया है, परन्तु आर्नोल्ड के मामले में तो व्यक्तित्व सिद्धान्त में और भी ज्यादा घुल जाता है।

इस त्रुटि के स्रोतों को स्वयं उपन्यास उजागर कर देता है। जाहिर है, आपने अपनी इस पुस्तक में अपनी आस्थाएं सार्वजनिक रूप से घोषित करने, उन्हें पूरे विश्व के समक्ष प्रमाणित करने की इच्छा अनुभव की। यह काम हो चुका है, यह मंजिल आप पार कर चुकी हैं और इस रूप में उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है। मैं यों प्रयोजनमुखी काव्य का कदापि विरोधी नहीं हूं। त्रासदी के जनक ईस्खिलस तथा कामदी के जनक एरिस्तोफेनस दोनों अत्यधिक प्रयोजनमुखी कवि थे। दान्ते और सेर्वान्तेस भी कम प्रयोजनमुखी न थे तथा शिलर की कृति 'मक्कारी और मुहब्बत' की मुख्य विशेषता यह है कि वह पहला जर्मन प्रयोजनमुखी राजनीतिक नाटक है। सारे आधुनिक रूसी तथा नार्वेजियाई लेखक, जो बेहतरीन उपन्यास लिख रहे हैं, प्रयोजनमुखी हैं। परन्तु मैं सोचता हूं कि प्रयोजन को स्वयं परिस्थिति तथा कार्यकलाप में अपने को व्यक्त करना चाहिए, विशेष रूप से लक्षित किये बिना, और लेखक अपने द्वारा वर्णित सामाजिक टकरावों का भावी ऐतिहासिक समाधान पाठक के सामने तैयारशुदा रूप में प्रस्तुत करने के लिए कर्तव्यबद्ध नहीं है। साथ ही इतना और कहना भी जरूरी है कि हमारे यहां विद्यमान अवस्थाओं के अन्तर्गत उपन्यास अधिकतर बुर्जुआ मंडलियों के पाठकों को, याने उन मंडलियों के पाठकों को सम्बोधित किये जाते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से हमारी नहीं हैं। इसलिए समाजवादी प्रयोजनमूलक उपन्यास, मेरी दृष्टि में, उस समय अपने ध्येय की पूर्णतया पूर्ति करता है, जब वह

वास्तविक संबंधों का सच्चा चित्रण कर इन सम्बन्धों के स्वरूप के बारे में हावी रहने वाले प्रचलित भ्रमों को मिटा देता है, बुर्जुआ दुनिया के आशावाद को झकझोर देता है तथा अस्तित्वमान के आधार की शाश्वतता के बारे में शंका का समावेश करता है -- भले ही लेखक ने इसके बारे में कोई निश्चित समाधान प्रस्तुत न किया हो, भले ही उसने कभी-कभी कोई पक्ष तक न लिया हो। यहां आस्ट्रियाई किसानों और वियेनाई ''समाज'' दोनों का आपका बहुत सुन्दर ज्ञान तथा आश्चर्यजनक रूप से ताजगीभरा वर्णन दोनों ही इस सम्बन्ध में भरपूर सम्भावनाएं प्रस्तुत करते हैं, और 'स्तेफान' में आपने यह प्रदर्शित कर दिया है कि आप अपने पात्रों के मामले में वह सूक्ष्म व्यंग्य करने में सक्षम हैं, जो लेखक के अपने सर्जित पात्रों पर प्रभुत्व का प्रमाण है।

तो बात यहीं खत्म कर दें, वरना मैं आपको बुरी तरह उकता दूंगा। यहां सब कुछ पहले जैसा है। कार्ल * सपत्नीक एवेलिंग की सांध्य कक्षाओं में शरीरक्रिया विज्ञान का अध्ययन कर रहे हैं और परिश्रमपूर्वक काम भी कर रहे हैं, मैं भी काम में व्यस्त हूं; लेनहेन, पुम्प्स तथा उसके पति** एक सनसनीखेज नाटक देखने आज शाम थियेटर जा रहे हैं और इस बीच बूढ़ा यूरोप फिर गतिशील होने की तैयारी कर रहा है -- और शायद समय से पहले नहीं। मैं तो केवल यह आशा करता हूं कि मुझे 'पूंजी' का तीसरा खंड पूरा करने का समय मिल जायेगा-- फिर इसे शुरू होने दें।

हार्दिक मैत्रीपूर्ण अभिनन्दन तथा सच्चे आदर की भावना के साथ।

भवदीय, फ्रे. एंगेल्स

* काउत्स्की

** पेर्सी रोशेर

मार्गरेट हार्कनेस को एंगेल्स की चिट्ठी

(मसविदा)

(लंदन, अप्रैल के आरम्भ में, 1888)

प्रिय कुमारी हार्कनेस,

श्री विजेटेली की मार्फत मुझे 'शहरी लड़की' उपन्यास भेजने के लिए बहुत धन्यवाद। मैंने उसे बहुत हर्षपूर्वक तथा उत्सुकतापूर्वक पढ़ा है। यह निस्संदेह, जैसा कि आपके अनुवादक, मेरे मित्र आइखोफ ने कहा है, ''उत्कृष्ट लघु कृति'' है। उन्होंने इसमें इतना और जोड़ा है और यह आपके लिए अवश्य संतोषदायी होगा कि उनका अनुवाद इसलिए लगभग शाब्दिक होना चाहिए कि कोई भी छूट या परिवर्तन की कोशिश मूल के मूल्य को केवल नष्ट ही करती।

आपकी कथा में यथार्थपरक सत्य के अलावा जो चीज मुझे विशेष रूप से विस्मित करती है, वह यह है कि कथा सच्चे कलाकार का साहस प्रदर्शित करती है। इसका परिचय उन दंभी भद्रजनों के तीक्ष्ण विरोध के बावजूद सैल्वेशन आर्मी का आप द्वारा किये गये मूल्यांकन में ही नहीं मिलता है, जिन्हें शायद पहली बार आपकी कथा से पता चलेगा कि सैल्वेशन आर्मी को जनसाधारण में इतना समर्थन क्यों प्राप्त है। परन्तु उसका मुख्य परिचय उस सादे, रंग-रोगनरहित रूप में मिलता है, जिसमें आप सर्वहारा किशोरी को बुर्जुआ वर्ग के एक व्यक्ति द्वारा फुसलाये जाने की पुरानी, बहुत पुरानी कहानी को पूरी पुस्तक की धुरी बना देती है। औसत बुद्धि वाला कथानक के -- उसके दृष्टिकोण से -- घिसे-पिटे चरित्र को कृत्रिम पेचीदगियों तथा बेलबूटों के ढेर के नीचे छुपाने के लिए कर्तव्यबद्ध अनुभव करता और फिर भी उसे प्रकट होने से नहीं बचा पाता। आपने अनुभव किया कि आप एक पुरानी कथा कह सकती हैं, क्योंकि आप उसे सीधे-सीधे, सच्चाई के साथ कहकर उसे नया बना सकती हैं।

आपका मिस्टर आर्थर ग्रांट तो लाजवाब है।

अगर मुझे किसी चीज की आलोचना करनी है, तो वह केवल यह है कि कथा फिर भी पर्याप्त रूप से यथार्थवादी नहीं है। मेरी राय में, यथार्थवाद का अर्थ तफसील की सच्चाई भरा पुनर्सृजन है। आपके पात्र, जहां तक हो सकता है, पर्याप्त रूप से विशिष्ट है, लेकिन वे परिस्थितियां, जो उन्हें घेरी हुई हैं तथा जिनमें वे क्रियाशील होते हैं, शायद पर्याप्त रूप से अभिलाक्षणिक नहीं हैं। 'शहरी लड़की' में मजदूर वर्ग निष्क्रिय जनसमूह के रूप में प्रकट होता है, वह अपनी मदद करने में असमर्थ है और इसके लिए कोई प्रयत्न तथा उद्यम भी नहीं करता। उसे तन्द्रावस्था से, पूर्ण दरिद्रता से बाहर निकालने के सारे प्रयत्न बाहर से, ऊपर से होते हैं। अगर यह बात 1800 या 1810 के वर्षों के लिए, सेंत साइमन और राबर्ट ओवेन के जमाने में सच थी, तो 1887 में यह उस व्यक्ति के लिए सच नहीं हो सकती, जिसे जुझारू सर्वहारा के अधिकांश संघर्षों में भागीदार होने का सम्मान प्राप्त हुआ है। अपने को चारों ओर से घेरे रहने वाले उत्पीड़नकारी परिवेश का मजदूर वर्ग द्वारा विद्रोहपूर्ण प्रतिरोध, मनुष्य के रूप में अपनी हैसियत फिर से हासिल करने की उसकी विक्षोभकारी चेष्टाएं -- चेतन या अर्द्धचेतन - इतिहास में दर्ज हैं और इसलिए उन्हें यथार्थवाद के क्षेत्र में अवश्य ही अपना स्थान मिलना चाहिए।

यह बात मेरे दिमाग में जरा भी नहीं है कि मैं आपको विशुद्ध समाजवादी उपन्यास या, जैसा कि हम जर्मन कहते हैं, ''उद्देश्यमूलक उपन्यास, ''जो लेखकों के सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों पर जोर दे सके, न लिखने के लिए दोषी ठहराऊं। मेरा तो यह तात्पर्य कदापि नहीं है। लेखक के विचार जितने छुपे रहें, कला की कृति उतनी ही अच्छी होती है मैं जिस यथार्थवाद की बात कर रहा हूं, वह लेखक के दृष्टिकोण के बावजूद उभर सकता है। एक मिसाल दे दूं। बाल्जाक, जिन्हें मैं अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के तमाम जोलाओं की तुलना में यथार्थवाद का कहीं बड़ा आचार्य मानता हूं, 'मानवीय कामदी' में फ्रांसीसी ''समाज'' का, खासतौर पर ''पेरिस की दुनिया'' का सबसे अद्भुत यथार्थवादी इतिहास हमारे सामने पेश करते हैं, उन्होंने उभरते बुर्जुआ वर्ग द्वारा अभिजातों के समाज में, जिसने 1815 के बाद अपना पुनर्गठन किया था और जिसने, जहां तक सम्भव हो सकता था, पुरानी फ्रांसीसी नफासत के प्रतिमान फिर से स्थापित किये थे, 1816 से 1848 तक बराबर घुसपैठ का लगभग साल दर साल का ब्योरा वृत्तान्त के रूप में किया है। वह यह बताते हैं कि उनके लिए इस आदर्श समाज के अन्तिम अवशेष किस प्रकार बाजारू किस्म के नये रईस के आगे धीरे-धीरे धराशायी होते गये या उस द्वारा भ्रष्ट होते गये; ऊंचे समाज की महिला के स्थान पर, जिसके दाम्पत्य जीवन में गैरवफादारी अपने को ठीक उस ढंग के अनुसार, जिस ढंग से उसका विवाह कर उसे चलता कर दिया गया था, प्रतिष्ठित करने का उपाय मात्र थी, किस तरह बुर्जुआ महिला आयी, जो नकद या ठाठदार वेशभूषा के लिए अपने पति को दगा देती थी। इस केन्द्रीय चित्र के चारों ओर बाल्जाक ने फ्रांसीसी समाज का पूरा इतिहास समेटा है, जिससे मुझे आर्थिक तफसीलों तक के मामले में (उदाहरण के लिए, क्रान्ति के बाद चल तथा अचल सम्पत्ति की पुनर्व्यवस्था के बारे में) इस अवधि के सारे के सारे विशेषज्ञों-इतिहासकारों, अर्थशास्त्रियों तथा सांख्यिकीविदों -- की पुस्तकों

से कहीं अधिक जानकारी मिली। यह सच है कि बाल्जाक अपने राजनीतिक दृष्टिकोण के मामले में लेजिटिमिस्ट थे; उनकी महान कृति उच्च समाज के असाध्य क्षय के बारे में सतत शोकगीत है; उनकी सारी सहानुभूति उस वर्ग के साथ है, जिसके नसीब में विलोप होना लिखा हुआ है। परन्तु यह सब होते हुए भी उनकी व्यंग्योक्तियां उतनी अधिक तीक्ष्ण, उतनी अधिक कटु और कभी नहीं होती, जितनी उस समय, जब वह ठीक उन पुरुषों और नारियों को, अभिजातों को गतिशील बनाते हैं, जिनके साथ उनकी सबसे गहरी सहानुभूति है। और मात्र जिन लोगों की चर्चा वह सदैव अप्रच्छन्न प्रशंसा के साथ करते हैं, वे उनके कटुतम राजनीतिक विरोधी, जनतंत्रवादी -- सेंट-मेरी मठ के नायक हैं, जो उस समय (1830-1836) सचमुच जनसाधारण के नायक थे। इस चीज को कि बाल्जाक इस तरह स्वयं अपनी वर्ग सहानुभूतियों तथा राजनीतिक पूर्वाग्रहों के विरुद्ध खड़े होने के लिए विवश हुए, कि उन्होंने अपने प्रिय अभिजातों के पतन की आवश्यकता देखी और उनका ऐसे लोगों के रूप में वर्णन किया, जो बेहतर नसीब के पात्र नहीं हैं, कि उन्होंने भविष्य के वास्तविक लोगों को वहां देखा, जहां और केवल जहां वे उस समय मिल सकते थे -- इस चीज को मैं यथार्थवाद की सबसे महती विजयों में से एक, बूढ़े बाल्जाक के भव्यतम गुणों में से एक मानता हूं।

आपके पक्ष में मुझे यह स्वीकार करना होगा कि सभ्य समाज में मजदूर वर्ग और कहीं इतना कम सक्रिय प्रतिरोधी नहीं है, नसीब के आगे और कहीं इतनी उदासीनतापूर्वक सिर नहीं झुकाता, और कहीं इतना जड़वत नहीं है, जितना कि लंदन के ईस्ट एंड में। और मैं कैसे जान सकता हूं कि आपके पास इसके लिए पर्याप्त कारण रहे हों कि इस बार मजदूर वर्ग के जीवन के निष्क्रिय पहलू की तस्वीर पेश करके ही संतोष कर लिया जाये तथा सक्रिय पहलू को दूसरी कृति के लिए छोड़ दिया जाये?

कलात्मक कृति में यथार्थ-चित्रण की समस्या और मार्क्स-एंगेल्स के विचार

• ब. क्रिलोव

मार्क्स तथा एंगेल्स ज्ञान के अपने द्वंद्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त को कला तथा साहित्य के विश्लेषण पर लागू करते हैं। उनकी राय में, कलात्मक सृजन यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने, साथ ही उसे अनुभव करने तथा उसे पहचानने का एक साधन भी है, वह मानवजाति के आत्मिक विकास पर प्रभाव डालने के सबसे शक्तिशाली उत्तोलकों में से एक है। कला के प्रति यह दृष्टिकोण समाज की प्रगति में कला के सामाजिक महत्व तथा प्रमुख भूमिका की भौतिकवादी समझ का आधार है। स्वभावतः साहित्य तथा कला का विवेचन करते समय मार्क्स तथा एंगेल्स ने अपना ध्यान यथार्थवाद की समस्या पर, किसी कलात्मक कृति में यथार्थ का सबसे सटीक चित्रण करने पर संकेन्द्रित किया।

मार्क्स तथा एंगेल्स साहित्य में एक प्रवृत्ति तथा कलात्मक सृजन की एक विधि के रूप में यथार्थवाद को विश्व कला की सबसे बड़ी उपलब्धि मानते थे। एंगेल्स ने यथार्थवाद की सर्वमान्य क्लासिकीय अवधारणा निरूपित की। "मेरी राय में यथार्थवाद का अर्थ, "उन्होंने लिखा, "तफसील की सच्चाई का, आम परिस्थितियों में आम चरित्रों का सच्चाई भरा पुनर्सृजन है," (देखिए, मार्गरेट हार्कनेस को पत्र)। मार्क्स तथा एंगेल्स ने इस बात पर जोर दिया कि यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल कतई नहीं है, अपितु परिघटनाओं के ठीक सार तक पैठने का एक तरीका, कलात्मक सामान्यीकरण करने की एक ऐसी विधि है, जो युग विशेष के आम गुणों को उजागर करना सम्भव बनाती है। वे शेक्सपियर, सेर्वान्तिस, गेटे, बाल्जाक, पुश्किन, आदि महान यथार्थवादी लेखकों की कृतियों में ठीक इसी चीज की कद्र करते थे। मार्क्स ने 19 वीं शताब्दी के अंग्रेज यथार्थवादियों -- डिकेन्स, थैकरे, ब्रोंटे तथा गैस्केल -- को ऐसे उपन्यासकारों का आलोकमय तारापुंज बताया था, "जिनकी सजीव तथा ओजपूर्ण पुस्तकों ने तमाम पेशेवर राजनीतिज्ञों, पत्रकारों तथा नैतिकतावादियों द्वारा मिलकर प्रस्तुत किये गये राजनीतिक तथा सामाजिक सत्यों से कहीं अधिक राजनीतिक और सामाजिक सत्य प्रस्तुत किये हैं" (मार्क्स-एंगेल्स : साहित्य और कला, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ. 357)। इसी तरह के विचार का एंगेल्स ने महान यथार्थवादी फ्रांसीसी लेखक बाल्जाक की कृतियों का विश्लेषण करते हुए विकास किया। 'मानवीय कामदी' के बारे में लिखते हुए उन्होंने इस बात का उल्लेख किया कि बाल्जाक ने पाठक के सामने "फ्रांसीसी समाज का अत्यन्त उल्लेखनीय, यथार्थवादी इतिहास" प्रस्तुत किया है.... "जिससे मुझे आर्थिक तफसीलों तक के मामले में (उदाहरण के लिए, क्रान्ति के बाद चल तथा अचल सम्पत्ति की पुनर्व्यवस्था के बारे में) इस अवधि के सारे के सारे विशेषज्ञों-इतिहासकारों, अर्थशास्त्रियों तथा सांख्यिकीविदों -- की पुस्तकों से कहीं अधिक जानकारी मिली" (देखिए, मार्गरेट हार्कनेस को पत्र)।

मार्क्स तथा एंगेल्स ने 1859 के वसन्त में लासाल को लिखी गयी चिट्ठियों में यथार्थवाद के बारे में अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार निरूपित किये, जिनमें उन्होंने उनके ऐतिहासिक नाटक 'फ्रांत्स फोन जिकिन्गेन' की तीखी आलोचना की, जो जर्मनी में किसान युद्ध की पूर्वबेला में सामन्ती सूरमाओं के 1522-1523 के विद्रोह से सम्बन्धित था। इन दो चिट्ठियों का बहुत ज्यादा महत्व है, क्योंकि उनमें मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख सिद्धान्त निरूपित हैं (मार्क्स-एंगेल्स : साहित्य और कला, पृ. 115-116, फर्दीनांद लासाल को मार्क्स की चिट्ठी)।

मार्क्स तथा एंगेल्स ने कलाकारों से यह तकाजा किया कि वे सच्चाई के साथ चित्रण-वर्णन करें, वर्णित घटनाओं के प्रति ठोस ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनायें और ऐसे सजीव तथा व्यक्तिगत गुणों से युक्त पात्रों को प्रस्तुत करें, जो इनके (पात्रों के) वर्ग परिवेश के चरित्र तथा मनःस्थिति के लाक्षणिक पहलू प्रतिबिम्बित करते हों। सही मानों में यथार्थवादी कृतियों का रचनाकार पाठक के पास अपने विचार पांडित्यपूर्ण दर्शन झाड़कर नहीं, वरन उन विविधतापूर्ण बिम्बों के जरिये पहुंचाता है, जो अपनी कलात्मक अभिव्यंजनाओं से पाठक की चेतना और अनुभूतियों को प्रभावित करते हैं। मार्क्स तथा एंगेल्स यह मानते थे कि लासाल ने महान जर्मन कवि तथा नाटककार शिलर की कलात्मक विधि में निहित कुछ कमजोरियों को, अर्थात अमूर्त शब्दाडम्बर के प्रति उनके मोह को, जिसके फलस्वरूप उनके नायक कतिपय विचारों के अमूर्त तथा एकांगी उद्घोषक बनकर रह जाते हैं, और गहन बनाया। मार्क्स तथा एंगेल्स इस प्रसंग में शिलर की विधि की तुलना में शेक्सपियर के यथार्थवाद को अधिक पसन्द करते थे। दोनों ने लासाल को बताया कि शिलर की नकल करते समय वह यह भूल जाते हैं कि अन्तर्य की गहराई तथा उदात्त आदर्शों को मानव चरित्र के सच्चे संवेगों और नाना पहलुओं को चित्रित करने की शेक्सपियरीय योग्यता हासिल करने के प्रयासों के साथ जोड़ा जाना यथार्थवादी लेखक के लिए कितना महत्व रखता है।

लासाल के नाम अपनी चिट्ठियों में मार्क्स और एंगेल्स ने साहित्य तथा जीवन के बीच, साहित्य तथा समकालीन अवधि के बीच सम्बन्ध-सूत्रों की भी चर्चा की। मार्क्स ने लासाल के नाटक में वर्णित 16 वीं शताब्दी की घटनाओं तथा 19 वीं शताब्दी के मध्यवर्ती काल की स्थिति की तुलना करने तथा सच्चे अर्थों में उस दुखान्त टकराव को, जिसने ''1848-1849 की क्रान्तिकारी पार्टी के नसीब में मौत की सजा लिख दी थी'' (वही), चित्रित करने के इरादे के लिए लेखक की कदापि निन्दा नहीं की थी। मार्क्स ने लेखक की गलती यह मानी थी कि उसने इस टकराव की गलत, भाववादी व्याख्या की थी, उसके कारणों को ''क्रान्ति'' की कथित युगों पुरानी अमूर्त ''त्रासदी'' तक सीमित कर दिया था, जिसमें ठोस ऐतिहासिक या वर्ग अन्तर्य का अभाव होता है। मार्क्स ने लासाल की आलोचना उनके नाटक की राजनीतिक प्रवृत्ति के लिए नहीं, बल्कि इसलिए की थी कि यह प्रवृत्ति इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा के दृष्टिकोण से तथा सर्वहारा क्रान्तिकारियों के विश्वदृष्टिकोण से मूलतः गलत थी। मार्क्स तथा एंगेल्स साहित्य को राजनीति के ऊपर रखने के प्रयत्नों तथा ''कला कला के लिए'' सिद्धान्त के कटु आलोचक थे। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यथार्थवादी लेखकों की कृतियों को प्रगतिशील विश्वदृष्टिकोण प्रतिबिम्बित करना चाहिए, उन्हें प्रगतिशील विचारों से ओत-प्रोत होना चाहिए तथा उन्हें सही मानों में समसामयिक समस्याओं से वास्ता रखना चाहिए। ठीक इसी अर्थ में उन्होंने साहित्य में प्रयोजनमुखता का स्वागत किया था, जिसे वे विचारधारात्मक तथा राजनीतिक प्रतिबद्धता मानते थे। ''मैं यों प्रयोजनमुखी काव्य का कदापि विरोधी नहीं हूं,'' एंगेल्स ने जर्मन लेखिका मिन्ना काउत्स्की को 26 नवम्बर, 1885 को लिखा था, ''त्रासदी के जनक ईस्खिलस तथा कामदी के जनक एरिस्तोफेनस अत्यन्त प्रयोजनमुखी कवि थे। दान्ते और सेर्वान्तेस भी कम प्रयोजनमुखी न थे, तथा शिलर की कृति 'मक्कारी और मुहब्बत' की मुख्य विशेषता यह है कि वह पहला जर्मन राजनीतिक प्रयोजनमुखी नाटक है। आधुनिक रूसी तथा नार्वेजियाई लेखक, जो बेहतरीन उपन्यास लिख रहे हैं, प्रयोजनमुखी हैं'' (देखिए, मिन्ना काउत्स्की को पत्र)। साथ ही मार्क्स तथा एंगेल्स फूहड़ प्रयोजनमुखता के -- कोरे नीति प्रवचन, कलात्मक विधि के स्थान पर उपदेशबाजी, जीवन्त बिम्बों का किन्हीं पिटे-पिटाये सांचों में रूपान्तरण किये जाने के -- कट्टर विरोधी थे। उन्होंने 'तरुण जर्मनी' साहित्यिक प्रवृत्ति के कवियों की इसलिए आलोचना की कि उनके पात्र कलात्मक दृष्टि से घटिया थे, कि वे साहित्य में पारंगति के अभाव की राजनीतिक तर्कों से पूर्ति करते थे। एंगेल्स ने मिन्ना काउत्स्की को लिखी गयी चिट्ठी में सच्ची प्रयोजनमुखता की इन शब्दों में सटीक व्याख्या की, ''मेरे विचार में प्रयोजन को स्वयं स्थिति तथा क्रिया में --उसे विशेष रूप से लक्षित किये बिना ही -- प्रकट होना चाहिए तथा लेखक का काम यह नहीं है कि वह सामाजिक टकरावों के, जिनका वह वर्णन करता है, भावी ऐतिहासिक समाधान को पाठक के सामने तैयारशुदा रूप में प्रस्तुत करे'' (वही)।

मार्क्स तथा एंगेल्स की यह दृढ़ मान्यता थी कि प्रगतिशील साहित्य गहन और जीवन्त प्रक्रियाओं को सच्चाई के साथ प्रतिबिम्बित करने, अग्रणी विचारों की उद्घोषणा करने, समाज में प्रगतिशील शक्तियों के हितों की रक्षा करने के लिए कर्तव्यबद्ध है। आधुनिक परिभाषा में कहा जाये तो वे साहित्य में पार्टी-पक्षधरता को इसी अर्थ में समझते थे। वे यह मानते थे कि लासाल के नाटक में जिस गुण -- विचार तथा कलात्मकता की एकता -- का अभाव है, ठीक वही सच्ची यथार्थवादी कला का आवश्यक गुण है।

'दायित्वबोध' यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश • संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, गोरखपुर-273001 • जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर • विजय इन्फारमेशन सेंटर, कचहरी बस स्टैण्ड, गोरखपुर • राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 • जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के निकट, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 7.30 तक) • सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, 5, काजमी चैम्बर्स, पार्क रोड, लखनऊ • ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ • इण्डियन बुक डिपो, अमीनाबाद, लखनऊ • विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर-273402 • अरविन्द सिंह, 119, बिड़ला छात्रावास, बी.एच.यू. वाराणसी • शहीद पुस्तकालय, द्वारा, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ • प्रो. प्यारे लाल, 139, फूलबाग, पंतनगर-263145 • श्री. ए.के. त्रिपाठी, 21, विश्वविद्यालय मार्ग, इलाहाबाद • श्री रामधीरज, स्वराज्य स्टेशनर्स, प्रयाग चुंगी, मोती लाल नेहरू मार्ग, इलाहाबाद • श्री अमृतलाल पाण्डेय, निकट प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, बसखारी, अम्बेडकरनगर • करेंट बुक डिपो, 18/53, माल रोड, (फूलबाग के सामने), कानपुर • प्रतिभा प्रकाशन, (पेप्सी होटल के नीचे), स्टेशन रोड, बलिया • राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र

बिहार • चन्द्रकेतु नारायण शर्मा, एडवोकेट, सांची पट्टी, भागमली गाद्दी, स्थान-पोस्ट-हाजीपुर, जि-वैशाली -844101 • समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि., पुस्तक विक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना-3 • अविनाश कुमार सिन्हा/रणजीत कुमार श्रीवास्तव, द्वारा, शैलेन्द्र श्रीवास्तव, बरियारी चक, पो. मेंहसी पूर्वी चम्पारण • राजकमल प्रकाशन, साइंस कालेज के सामने, अशोक राजपथ, पटना • पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना-4 • मैत्रेयी साहित्य संगम, (सर्वे आफिस के सामने), लाल बाग, के.डी. एस., दरभंगा • विजय कुमार आर्य, सचिव - 'मजदूर संगठन समिति', गुरारू चीनी मिल्स, गुरारू, पो.-गुरारू, जि.-गया• वी. प्रशान्त, कन्हौली (बी.एम.पी. 6 से पूरब), मुजफ्फरपुर • रामपुकार सिंह, ग्रा.-पो.-भदई, जि.-मुजफ्फरपुर • विद्यानन्द सिंह, वार्ड न. 4, सुपौल • प्रोग्रेसिव लिटरेचर, छोटी कल्याणी, मुजफ्फरपुर • श्री भुवन वेणु, 'प्रतीक्षा', मधुबनी - चूनापुर रोड, पूर्णियां-854301

दिल्ली • एतकाद अहमद, डिपार्टमेण्ट ऑफ फाउण्डेशन आफ एजुकेशन, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली • सेंट्रल न्यूज एजेन्सी, 29/30, कनाट सर्कस, नई दिल्ली • बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, सफदर हाशमी मार्ग, मण्डी हाउस, नई दिल्ली • गीता बुक सेण्टर, शापिंग काम्प्लेक्स, जे.एन.यू., नई दिल्ली • बोधन लाल एण्ड कम्पनी, क्लॉक टॉवर के पास, शिवाजी स्टेडियम, नई दिल्ली • जवाहर बुक सेण्टर, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली • पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, मरीना होटल की इमारत, कनाट प्लेस, नई दिल्ली

महाराष्ट्र • परिदृश्य प्रकाशन, 6, दादी संतुक लेन, इंजीनियर हाउस, धोबी तालाब, मुम्बई-1 • पीपुल्स बुक हाउस, मेहर हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, मुम्बई-1 • शैलेश वाकड़े, विजयालक्ष्मी नगर, टीचर्स कालोनी, बल्लारपुर, जि.-चन्द्रपुर • सूर्यदेव उपाध्याय, लेनिन लाइब्रेरी, उल्हास नगर-4, ठाणे

गुजरात • डा. हरियश राय, ए-205, सुजल अपार्टमेण्ट सेटेलाइट रोड, रामदेव नगर, अहमदाबाद-380054

हिमाचल प्रदेश • एस.आर. हरनोट, हिमाचल पर्यटन विकास निगम, रिट्ज एनेक्सी, शिमला-171001

हरियाणा • नरभिंदर सिंह, द्वारा, डा. सुखदेव हुंदल ग्रा. व पो.- संतनगर, सिरसा-125075

राजस्थान • हंसा प्रकाशन, 316, खूंटेटों का रास्ता किशन पोल बाजार, जयपुर-302001

उड़ीसा • गाला बुक्स, बस स्टैण्ड, अस्का-761110

असम • शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया-786125 • दिनकर कुमार, चाणक्य पथ, जी.एस. रोड, दिसपुर, गुवाहाटी-781005

प. बंगाल • श्री राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग • बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-700073 • जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो.-केरन, जि.-जलपाईगुड़ी • श्याम अविनाश, सं. 'सरोकार'; साहेब बांध रोड, पुरूलिया

आन्ध्र प्रदेश • गोविन्द अक्षय, 'सारस्वत सदन' 13-6 411/2, रामसिंहपुरा, कारवान, हैदराबाद

मध्यप्रदेश • जयप्रकाश ज्ञायसवाल, 'पितृछाया,' अमृत सागर कालोनी, एम.आई.जी. 96-97, रतलाम • चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैण्ड, जगदलपुर बस्तर

नेपाल • पुस्तक-पत्रिका बिक्री वितरण केन्द्र, डिल्ली बाजार, चढ़ाव के पास, निकट पद्मकन्या स्कूल, काठमाण्डू • जलजला पुस्तक सदन, धमबोजी चौक, नेपालगंज, बांके • विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन बुटवल, लुम्बनी

जन्मदिन (26 दिसम्बर) के अवसर पर

माओ त्से-तुङ की दस कविताएं

पीले सारस वाली मीनार[1]

(वसंत, 1927)

विस्तृत, विशाल पाटों वाली नौ धाराएं [2]
कलकल बहती जा रही है
धरती के इस छोर से उस छोर तक,
दक्षिण से उत्तर तक बिछी लाइनें
ज्यों फैले हुए काले-काले धागे। [3]
सबकुछ धुंधला-सा हो गया है
कुहासे भरी बारिश की गहरी धुंध में
कछुए और सांप ने [4] बांध-सा लिया है
महान नदी [5] को।

पीला सारस जा चुका है,
कौन जाने किस ओर?
सिर्फ यह मीनार बची रह गई है
यात्रियों के लिए एक ठांव के तौर पर।
जाम पेश करता हूं मैं अपना
उमड़ते प्रचण्ड प्रवाह के नाम
लहरों के साथ उठता है ऊपर
मेरे हृदय का ज्वार।

युद्ध सरदारों के बीच संघर्ष[1]

(शरद 1929)

हवा और वर्षा की दिशा
बदलती है अचानक।
धरती के इस छोर से उस छोर तक
दुखों-विपत्तियों की बारिश।
फिर से भिड़े हुए है युद्धसरदार --
एक और सपना सुनहरे बाजरे का। [2]

तिङ नदी [3] को लांघकर
बढ़ते है आगे लाल झण्डे
सीधे लुङयेन और शाङहाङ [4] की ओर।
हासिल कर लिया है हमने फिर से
सुनहरे कटोरे [5] का एक भाग
और उत्कट संकल्पों के साथ
शुरू हो चुका है
जमीन बांटने का काम।

नववर्ष का दिन

(जनवरी, 1930)

निङहुआ, चिङलिऊ, कुएइहुआ --
कैसे तंग रास्ते, गहरे घने जंगल
और कैसी फिसलन भरी काई!
चल पड़े है आज यह किस ओर हम?
सीधे, वुयी पर्वत की तलहटी की ओर।
पर्वत की ओर, पर्वत की तलहटी की ओर,
हवा में उड़ रहे है लाल झण्डे
अपनी आभा से दमकते-दहकते हुए।

कुआङचाङ मार्ग पर[1]

(फरवरी, 1930)

एकदम श्वेत धवल है
सामने फैली हुई पूरी दुनिया।
बर्फबारी के बीच
उत्कट उत्सुकता से भरे हुए
हम बढ़ते ही जाते है आगे की ओर।
सिर पर तने खड़े है ऊंचे शिखर।
दुर्गम दर्रे से गुजरते है हम।
हवा में लहरा रहे है लाल झण्डे।

जा रहे है हम किस ओर?
बर्फ से ढंकी हुई कान नदी [2] की ओर।
कल ही तो जारी हुआ था आदेश
और आज चल पड़े है
एक लाख मजदूर और किसान मार्च करते हुए
किआन [3] की ओर।

तिङचओ से च्याङशा की ओर कूच[1]

(जुलाई, 1930)

जून के महीने में देव सेनाएं
दण्डित कर रही है दुष्ट और भ्रष्ट जनों को,
एक योजन लम्बी रस्सी से
जकड़ती हुई खुन फङ पक्षी [2] को।
दूर, कान नदी के उस पार
लाल चमक कौंधती है,
करिश्मा है यह हुआङ कुङ लुएअ की
मातहत सैन्य वाहिनी का।
उठ खड़े हुए है दसियों लाख
मजदूर और किसान,
तेजी से पार करते हुए च्याङशी को
सीधे कूच कर गये है
हुनान और हुपेह की ओर।
'इण्टरनेशनल' की झकझोरती लय के साथ
आकाश से टूट पड़ा है
एक प्रचण्ड, क्रोधोन्मत्त चक्रवात!

पहली "घेरेबन्दी" मुहिम के खिलाफ[1]

(वसंत, 1931)

तुषाराच्छादित आकाश तले
जंगलों में धधक उठी है लाल-कराल ज्वाला,
देव सेनाओं का उमड़ता हुआ रोष
बादलों को छूने लगा है।
लुङकाङ [2] पर परदा डाल दिया है कोहरे ने
धुंधले-से दीख रहे है हजारों शिखर इसके।
एक साथ चिल्ला उठते है सबके सब :
हमारे हरावल ने गिरफ्तार कर लिया है
चाङ हुइ-त्सान को।

दो लाख दुश्मनों की सेना
पलटकर फिर आती है च्याङशी की ओर,
हवा मे उठती है
धुएं की विकट लहरें
मध्य आकाश में छाती हुई।
जाग उठे है दसियों लाख मजदूर और किसान
एकजुट, जैसे कि एक शरीर,
युद्ध के लिए सन्नद्ध है
वे लाल झण्डों के घटाटोप तले
पूचओ [3] की तलहटी के चारो ओर।

दूसरी "घेरेबन्दी" मुहिम के खिलाफ[1]

(ग्रीष्म, 1931)

उमड़-घुमड़ रहे है बादल घनघोर
श्वेत मेघ[2] चोटी के ऊपर
तलहटी में उग्र होती जा रही है
युद्ध की गर्जना,
लड़ने को उद्यत है
सड़े हुए ठूंठ और सूखे दरख्त भी।
रायफलों का एक जंगल-सा
बढ़ता है आगे की ओर
जैसे ही उतरता है आकाश से
उड़न सेनापति।[3]

पंद्रह दिनों के प्रयाण में
तय की है हमने सात सौ ली की दूरी
पार करते हुए धुंध भरी कान नदी
और हरी-भरी फूकिएन पर्वतमालाओं को।
एक चटाई के मानिन्द लपेट दिया है
हमने दुश्मन को।
सुनाई देती है एक बिलखती कलपती आवाज :
हासिल हुआ है सिफर ही सिर्फ
''हर कदम की किलेबन्दी''[4] से।

हुइचाङ[1]

(ग्रीष्म, 1934)

पूरब में जल्दी ही फूटने वाली है भोर।
मत कहो, ''तुम बहुत जल्दी शुरू कर रहे हो प्रयाण''
देखते ही देखते हम पार कर लेंगे
इन नीली पहाड़ियों को।
अतुलनीय है यह भूदृश्य!

हुइचाङ की दीवारों से ही शुरू हो जाता है
ऊंची चोटियों का सिलसिला,
एक के बाद एक -- ये पर्वतमालाएं
फैली हुई है पूर्वी महासमुद्रों तक।
दक्षिण में क्वाङतुङ को
लक्ष्य बनाया है हमारे सैनिकों ने,
दूर जहां फैली हरीतिमा
दीख रही है धुंधली-सी।

लओशान दर्रा[1]

(फरवरी, 1935)

बेध रही है प्रचण्ड पछुआ हवा,
भोर की तुषारमय चांदनी में
चीखते है कलहंस।
भोर की तुषारमय चांदनी में
गूंजती है घोड़ों की टापें
बिगुलों की मद्धिम आवाजें।

निरर्थक हो चुकी है यह गर्वोक्ति कि
लोहे की दीवार सा है यह दुर्भेद्य दर्रा;
दृढ़, लम्बे कदमों से हम पार कर रहे है
इसका शिखर।
दृढ़ लम्बे कदमों से हम पार कर रहे है
इसका शिखर,
नीले सागर सी फैली है पर्वतमालाएं
और डूबता सूरज हो चला है
लहू-सा लाल।

लम्बा अभियान[1]

(अक्टूबर, 1935)

लाल सेना भयभीत नही होती
लम्बे अभियान की कठिन परीक्षाओं से।
चुटकियों में काबू कर लेती है वह
दस हजार चोटियों और प्रचण्ड वेगवाही नदियों को
पांच शिखर[2] है उसके लिए
मद्धम हवा में छोटी-छोटी लहरों के समान,
तेजस्वी वुमेङ[3] लुढ़कता है
मिट्टी के गोलों जैसा
सुनहले बालू[4] के जल की गोद में
खड़ी दुर्गम चट्टानें गर्म लगती है।
ठण्डी प्रतीत होती है
तातू नदी[5] के आर-पार की लोहे की जंजीरें।
मिनशान[6] पर्वतमालाओं के बीच
हजारों ली का बर्फीला रास्ता
पार हो जाता है हंसते-गाते।
मार्च करती चली जाती है तीनों सेनाएं,[7]
हर चेहरा दमकता है रक्ताभ!

टिप्पणियां

पीले सारस वाली मीनार

(1) प्रथम क्रांतिकारी गृहयुद्ध (1924-27) के उत्कट संघर्षों के दौरान लिखी गई यह कविता उस काल की पूरी क्रांतिकारी स्पिरिट को अभिव्यक्ति देती है। पीले सारस वाली मीनार हुपे प्रांत के वुचाङ नगर की एक प्राचीन दर्शनीय मीनार थी जो किसी समय सर्प पर्वत पर स्थित थी। कहा जाता है कि उसका निर्माण 323 ईस्वी में किया गया था। अब उसका अस्तित्व नहीं रह गया। एक पौराणिक कथा के अनुसार एक देवता पीले सारस पर सवार होकर भ्रमण करते हुए यहां से गुजरे थे इसलिए इसका नाम पीले सारस वाली मीनार पड़ गया।

इस कविता के रचना काल के समय, उत्तरी अभियान सेना ने हुपे प्रांत में चिहली युद्धसरदारों की सेनाओं को कुचलने के बाद (देखिये काव्य पंक्तियां : 'पीला सारस जा चुका है'....) यांग्त्सी नदी की घाटी तक अपना फैलाव कर लिया था और उत्तर में फेंगतिएन युद्धसरदारों से लोहा ले रही थी (देखिये, काव्य पंक्तियां : 'कछुए और सांप ने बांध सा लिया है....')। ठीक इसी समय माओ हुनान प्रांत की काउंटियों के उस प्रसिद्ध दौरे के बाद हुपे वापस लौटे थे, जिसका नतीजा था 'हुनान किसान आंदोलन की जांच पड़ताल की रिपोर्ट' नामक ऐतिहासिक दस्तावेज जिसमें माओ ने पहली बार चीनी क्रांति में किसान वर्ग की मुख्य शक्ति के रूप में ऐतिहासिक भूमिका की, मजदूर-किसान संश्रय की और दीर्घकालिक लोकयुद्ध के मार्ग की एक रूपरेखा प्रस्तुत करने की शुरुआत की थी। बोरोदिन और एम.एन.राय जैसे तृतीय इंटरनेशनल के प्रतिनिधियों और छन तु-श्यु जैसे कायर दक्षिणपंथी अवसरवादियों के क्वोमिंताङ के पिछलग्गू बन जाने की लाइन के विपरीत, माओ की किसानों की शक्ति में गहरी आस्था थी और प्रथम क्रांतिकारी गृहयुद्ध के दौर के समापन बिन्दु के निकट खड़े होकर भी भविष्य में उमड़ने वाले किसान उभार के प्रचण्ड क्रांतिकारी ज्वार के प्रति आश्वस्त थे। यही अदम्य आस्था कविता की अंतिम पंक्तियों में प्रकट हुई है।

(2) हुनान, हुपे और च्याङशी प्रांतों में स्थित नौ बड़ी नदियां।

(3) तत्कालीन पेकिंङ -हानखओं और क्वाङचओ -हानखओ रेल मार्ग।

(4) हुपे प्रांत के हानयाङ नगर में स्थित कच्छप पहाड़ी और उसके ठीक सामने याङत्सी नदी के दूसरे तट पर स्थित सर्प पहाड़ी।

(5) याङत्सी नदी।

युद्ध सरदारों के बीच संघर्ष

(1) यहां तात्पर्य च्याङ काई शेक और क्वाङशी गुट के सामंती युद्ध सरदारों के बीच 1929 में हुए युद्ध से है। एक ओर जहां खयाली पुलाव पकाते हुए ये युद्धसरदार सत्ता संघर्ष में उलझे हुए थे वहीं स्थिति का लाभ उठाकर लाल सेना लगातार आगे कदम बढ़ा रही थी। च्याङ काई शेक और क्वाङशी गुट के बीच युद्ध भड़क उठने के बाद कम्युनिस्ट पार्टी ने युकियाङ नदी क्षेत्र में क्वोमिताङ सैनिकों और किसानों के एक विद्रोह का नेतृत्व किया और दिसंबर 1929 में क्वाङशी आधा--र क्षेत्र में किसानों-मजदूरों युकियाङ जनवादी सरकार तथा सातवीं सेना स्थापित हो गई। यह कविता इसी दौर की विजयोन्मुखी भावना, उल्लास और संकल्प को प्रकट करती है। स्मरणीय है कि इस समय तक इतिहास प्रसिद्ध चिङकाङशान पहाड़ों के संघर्ष के बाद स्थापित केन्द्रीय आधार क्षेत्र के साथ ही हुनान -हुपे -क्याङसी आधार क्षेत्र, हुपे-हुनान-आन्व्हेइ आधार क्षेत्र, हुङहू-हुनान-पश्चिमी हुपे आधार क्षेत्र और फुकिएन-चेकियाङ- क्याङसी आधार क्षेत्र या तो कायम किया जा चुके थे या इनकी स्थापना के संघर्ष विजय के निकट था। साथ ही जगह-जगह सशस्त्र विद्रोह भी फूट रहे थे। लगभग एक लाख की संख्या तक जा पहुंची लाल सेना छापामार युद्ध और

चलायमान युद्ध चला रही थी। साथ ही, आधार क्षेत्रों में पार्टी के नेतृत्व में क्रांतिकारी भूमि सुधार और जमीन बांटने का काम भी शुरू हो चुका था, जिसकी ओर कविता की अंतिम पंक्तियों में इशारा किया गया है।

(2) थाङ राजवंश (618-907 ई.) की कहानी 'तकिए की दास्तान' के अनुसार एक निर्धन बुद्धिजीवी की मुलाकात एक सराए में एक ताओपंथी से हो जाती है। जब बुद्धिजीवी उस ताओपंथी से अपनी असफलताओं का रोना रोता है तो वह उसे एक तकिया देता है और कहता है कि इस पर सिर रखकर सोने से उसकी सभी इच्छाएं पूरी हो जाएंगी। उस समय सराय का मालिक बाजरे का भात पका रहा था। सपने में बुद्धिजीवी को धन, पद और यश सभी कुछ मिल जाता है और विलास के सभी साधन उपलब्ध हो जाते हैं, लेकिन नींद खुलने पर वह अपनी हालत पहले जैसी ही दयनीय पाता है। उसका सपना इतना क्षणिक होता है कि वह सराय के मालिक का बाजरे का भात पकने से पहले ही समाप्त हो जाता है। इसलिए उसे सुनहरे बाजरे का सपना कहा गया है।

(3) फुकिएन प्रांत के दक्षिण-पश्चिमी भाग में स्थित एक नदी।

(4) फुकिएन प्रांत के दक्षिण-पश्चिमी भाग में स्थित दो काउंटियां।

(5) ''सुनहरे कटोरे'' से तात्पर्य चीन की प्रादेशिक भूमि से है। थाङ राजवंश के इतिहासकार ली येन-शओ ने ''दक्षिणी राजवंशों का इतिहास'' नामक अपनी रचना में कहा था : ''हमारा देश एक सुनहरे कटोरे की भांति बिल्कुल अखण्ड है।''

नववर्ष का दिन

(1) निङहुआ, चिङलिऊ और कुएइहुआ फुकिएन प्रांत के पश्चिमी भाग में स्थित तीन काउंटियां हैं। 1930 में चेयरमैन माओ त्से तुङ की कमान में चीनी मजदूरों-किसानों की लाल सेना ने इन तीन काउंटियों से गुजरते हुए फुकिएन और च्याङशी प्रांतों की सीमा पर वुयी पहाड़ को पार करके च्याङशी प्रांत में प्रवेश किया और उसके दक्षिणी भाग में स्थित रुइचिन काउंटी को केन्द्र बनाकर केन्द्रीय क्रांतिकारी आधार क्षेत्र की स्थापना की।

यह कविता इस समय के विजयोल्लास के माध्यम से सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी आशावाद और युयुत्सा को अभिव्यक्त करती है।

कुआङचाङ मार्ग पर

(1) कुआङचाङ च्याङशी प्रांत के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित एक काउण्टी है। इस कविता की पृष्ठभूमि भी वही है, जो 'नववर्ष का दिन' की।

(2) च्याङशी प्रांत की एक मुख्य नदी जो दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है।

(3) च्याङशी प्रांत की एक काउण्टी जो कान नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है।

तिङचओ से च्याङशा की ओर कूच

(1) तिङचओ फुकिएन प्रांत के पश्चिमी भाग में स्थित वर्तमान चाङतिङ काउण्टी का पुराना मार्ग है। जून-जुलाई 1930 के महीने में माओ के नेतृत्व में लाल सेना की मुख्य शक्ति तिङचओ से च्याङशा की ओर कूच कर रही थी। दूसरी ओर कान नदी के पश्चिमी किनारे की तरफ लाल सेना के प्रसिद्ध जनरल और तीसरी फौजी कोर के कमाण्डर हुआङ कुङ लुएह (1898-1931 ई.) अपनी कोर की मुख्य शक्ति का नेतृत्व करते हुए एक विस्तृत आधार क्षेत्र की स्थापना कर चुके थे। जुलाई के महीने में उन्होंने अपनी कोर के साथ कान नदी पार करके पूरब की ओर बढ़े और तिङचओ से पश्चिम की ओर कूच कर रही माओ की मुख्य शक्ति से जा मिले। यह कविता उसी दौर में लिखी गई है।

(2) यहां माओ का तात्पर्य च्याङ काई शेक प्रतिक्रियावादी गुट से है। खुनफङ पक्षी से संबंधित नीतिकथा का उल्लेख युद्धरत राज्य काल (475-221 ई.पू.) के दार्शनिक च्वाङ त्स के 'इतमीनान से विचरण' शीर्षक लेख में इस प्रकार किया गया है, ''उत्तरी सागर में खुन नाम की एक मछली थी जिसका आकार इतना बड़ा था कि उसकी लम्बाई-चौड़ाई कई हजार ली तक फैली हुई थी। बाद में उसने एक पक्षी का रूप धारण कर लिया और उसका नाम फङ पड़ गया। इस पक्षी की पीठ की लम्बाई भी कई हजार ली थी।...''

पहली ''घेरेबंदी'' मुहिम के खिलाफ

(1) पहली ''घेरेबन्दी'' मुहिम का तात्पर्य उस मुहिम से है जिसे च्याङ काई शेक ने दिसंबर 1930 में केन्द्रीय आधार क्षेत्र पर चढ़ाई करने के लिए एक लाख सैनिक भेजकर छेड़ा था। माओ की कमान में लाल सेना ने पांच दिन के अंदर दो लड़ाइयां लड़ी, दुश्मन की डेढ़ डिवीजनों के दस हजार से अधिक सैनिकों का सफाया कर दिया तथा उसके अग्रिम मोर्चे के प्रधान कमाण्डर चाङ हेइ चान को जिन्दा पकड़ लिया, और इस प्रकार दुश्मन की ''घेरेबन्दी'' मुहिम को विफल बना दिया।

(2) च्याङशी प्रांत के शिङकुओ काउण्टी केन्द्र के नजदीक एक कस्बा।

दूसरी ''घेरेबन्दी'' मुहिम के खिलाफ

(1) दूसरी ''घेरेबन्दी'' मुहिम का तात्पर्य उस मुहिम से है जिसे 1931 के अप्रैल मई में च्याङ काई शेक ने केन्द्रीय क्रांतिकारी आधार क्षेत्र को नष्ट करने के लिए दो लाख सैनिक भेजकर छेड़ा था। 1931 में लाल सेना ने माओ की कमान में 16 मई से 30 मई तक पंद्रह दिन के कूच में सात सौ ली (1 ली-0.5 कि. मी.) का रास्ता तय किया, पांच लड़ाइयां लड़ी, दुश्मन के तीस हजार से भी अधिक सैनिकों का सफाया कर दिया, बीस हजार से ज्यादा बंदूकें प्राप्त कीं और बखूबी इस ''घेरेबन्दी'' मुहिम को तहस-नहस कर दिया।

(2) च्याङशी प्रांत की किआन काउण्टी के दक्षिण पूर्व में स्थित एक पर्वत।

(3) हान राजवंश के सम्राट हान वुती के शासन काल में ली कुआङ नामक एक वीर और रणकुशल सेनानी था, जो ''उड़न सैन्यपति'' के नाम से प्रसिद्ध था। यहां कवि का अभिप्राय लाल सेना से है।

(4) कदम-कदम पर किलेबंदियां बनाने की कार्यनीति च्याङ काई शेक ने दूसरी ''घेरेबन्दी'' मुहिम में अपनाई थी।

हुईचाङ

(1) 1931-34 के बीच दुश्मन की कई ''घेरेबन्दियों'' को तहस-नहस करने के बावजूद, उसके भारी दबाव के कारण लाल सेना को 1934 की गर्मियों में च्याङशी और फूकिएन प्रांतों का केन्द्रीय आधार क्षेत्र छोड़ने का निर्णय लेना पड़ा। यह चमत्कारी, चुनौतीपूर्ण और अभूतपूर्व लंबे अभियान (लांग मार्च) की शुरुआत थी। यह कविता इसी ऐतिहासिक मोड़ बिन्दु पर लिखी गई है। हुईचाङ च्याङशी प्रांत के दक्षिणी भाग में स्थित एक काउण्टी है जो पूर्व में फूकिएन और दक्षिण में क्वाङतुङ से लगी हुई है।

लओशान दर्रा

(1) कुएइचओ प्रांत के चुनई नगर के उत्तर में स्थित लओशान ऊंची और दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं के बीच स्थित रणनीतिक महत्व का दर्रा है। लम्बे अभियान के दौरान जनवरी 1935 में एक बड़ी लड़ाई में प्रांत के सैनिक गवर्नर वाङ चिआ लिएन की सेनाओं को परास्त करके प्रथम मोर्चा लाल सेना ने इस दर्रे को पार किया और चुनई नगर पर कब्जा कर लिया, जहां चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के राजनीतिक ब्यूरो के विस्तृत अधिवेशन का आयोजन किया गया। इसमें वाङमिङ की ''वामपंथी'' अवसरवादी लाइन का खण्डन किया गया तथा समूची पार्टी और समूची सेना में माओ का नेतृत्व निर्णायक और सुदृढ़ रूप में कायम हो गया। यह कविता लओशान दर्रे के भव्य प्राकृतिक परिदृश्य और साथ ही उसकी दुर्गमता का वर्णन करती हुई, लंबे अभियान की उत्कट दुर्द्धर्ष स्पिरिट को भी प्रकट करती है और ऐतिहासिक चुनई मीटिंग में ''वामपंथी'' अवसरवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष की स्पिरिट को भी।

लम्बा अभियान

(1) लम्बा अभियान चीनी क्रांति की एक

महाकाव्यात्मक गाथा है जो कम्युनिस्ट पार्टी, लाल सेना और संघर्षरत जनता के बलिदानों की अमिट स्याही से लिखी गई है। इस अभियान के समापन के महीने में लिखी गई ये कविता सर्वहारा शौर्य, युयुत्सा और जनता की इतिहास निर्मात्री शक्ति में अटूट आस्था को स्वर देती है। लम्बा अभियान वस्तुतः स्वयं ही एक मूर्त महाकाव्य था जो इन उदात्त मूल्यों को सजीव रूप में प्रस्तुत करता था।

अक्टूबर, 1934 में, दुश्मन के भारी दबाव के कारण लाल सेना को च्याङशी और फूकिएन प्रांतों का केन्द्रीय आधार क्षेत्र छोड़ना पड़ा। अन्य क्षेत्रों की फौजी यूनिटों के साथ मिलकर उसने उत्तर पश्चिम की ओर एक आश्चर्यजनक लम्बा अभियान शुरू किया। एक वर्ष तक जारी इस अभियान में केन्द्रीय लाल सेना ने 20 करोड़ आबादी वाले 11 प्रांतों को पार किया और बर्फ से लदी चोटियों, दर्रो और वीरान बीहड़ों से गुजरते हुए, तूफानी नदियों को पार करते हुए और लगभग रोज ही दुश्मन की फौजों से जूझते हुए कुल 8000 मील का फासला तय किया। यह एक अद्भुत कारनामा था जिसकी मिसाल युद्ध के इतिहास में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। इस अभियान में लाल सेना को भारी नुकसान उठाना पड़ा, जिसके लिए कुछ हद तक वाङ मिङ और चाङ कुओ थाओ की गलत लाइनें भी जिम्मेदार थी। लंबा अभियान शुरू होने से पहले सभी आधार क्षेत्रों के लाल सैनिकों की कुल संख्या 3 लाख थी जो अभियान के अंत में केवल 30,000 रह गई। पर यह अद्भुत कुर्बानी देकर लाल सेना ने पूरे देश में क्रान्ति का संदेश फैला दिया और जनता के दिलों में यह बात भर दी कि कम्युनिस्ट पार्टी और लाल सेना ही वह अदम्य शक्ति है जो चीनी जनता को साम्राज्यवाद और सामंतवाद के जुए से मुक्त कर सकेगी। इस अग्निपरीक्षा से गुजरकर उत्तर पश्चिमी चीन में पहुंचे लाल योद्धा क्रान्ति के परखे हुए फौलादी पहरुआ थे, जो राजनीतिक तौर भी दक्षिणपंथी और ''वामपंथी'' अवसरवादी लाइनों को परास्त करके अपने को माओ की क्रांतिकारी जनदिशा के सच्चे सिपाही साबित कर चुके थे। लम्बे अभियान की ही बदौलत आगे चलकर जापानी साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध के दौरान पूरी चीनी जनता माओ की पार्टी के झण्डे तले लामबंद हो गई और क्रांति लम्बे डग भरती हुई अंतिम जीत की दिशा में आगे बढ़ी।

दिसंबर, 1935 में माओ ने लंबे अभियान का अर्थ जिस अलंकृत भाषा में स्पष्ट किया, वह अपने आपमें एक कविता है:

''लम्बा अभियान एक घोषणा पत्र भी है। उसने संसार के सामने घोषित कर दिया है कि लाल सेना एक वीरों की सेना है, साम्राज्यवादी व उनके पालतू कुत्ते, च्याङ काई शेक व उसके जैसे लोग, लाल सेना के सामने कोई हस्ती नहीं रखते। उसने साम्राज्यवादियों और च्याङकाई शेक की घेरा डालने, पीछा करने, अड़चनें डालने व रास्ता छेंकने की नाकाम कोशिशों के दिवालियेपन का ऐलान कर दिया है। लम्बा अभियान एक प्रचार दल भी है। उसने ग्यारह प्रांतों की लगभग 20 करोड़ जनता के सामने यह ऐलान कर दिया है कि लाल सेना का रास्ता ही उसकी मुक्ति का रास्ता है। लम्बे अभियान के बिना व्यापक जन समुदाय इतनी जल्दी यह कैसे जान सकता था कि संसार में ऐसी महान सच्चाई भी है जो लाल सेना के रूप में अभिव्यक्त हुई है? लम्बा अभियान बीज डालने वाली मशीन भी है। उसने ग्यारह प्रांतो में बहुत से बीज डाले है, जो अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होंगे, उनमें फल लगेंगे और भविष्य में फसलें तैयार होंगी। सारांश यह कि लंबे अभियान का अंत हमारी विजय और शत्रु की पराजय के रूप में हुआ है।'' (जापानी साम्राज्यवाद विरोधी कार्यनीति के बारे में, दिसंबर 1935, संकलित रचनाएं, ग्रंथ-1, पृ० 271-72)

(2) च्याङशी, हुनान, क्वाङतुङ प्रांतों और क्वाङशी च्वाङ स्वशासित प्रदेश के बीच फैली च्वेचङ, तूफाङ, मङन्चू, चीथियेन और तायवी नामक पांच पर्वतमालाएं।

(3) युन्नान और क्वेइचओ प्रांतों के बीच स्थित एक पर्वतमाला।

(4) याङत्सी नदी के ऊपरी भाग का वह अंश जो सेचुआन प्रांत और तिब्बत की सीमा से युन्नान प्रांत तक प्रवाहित होता है।

(5) सेचुआन प्रांत की एक नदी जिसके दोनों किनारों पर सीधी चट्टानें खड़ी हैं और जिसकी धारा बहुत तेज है। उस समय इसे पार करने का एकमात्र साधन नदी के आर-पार लगी लोहे की जंजीरें थीं।

(6) सेचुआन और कानसू प्रांतों के बीच फैली एक पर्वत माला।

(7) लाल सेना की पहली, दूसरी और चौथी मोर्चा-फौजें।

अनुवाद और टिप्पणियां : **सत्यव्रत**

कला-साहित्य की समालोचना के दो मापदण्ड होते है - राजनीतिक और कलात्मक।...

एक राजनीतिक मापदण्ड होता है और एक कलात्मक मापदण्ड, इन दोनों के बीच क्या संबंध है? कला को राजनीति के समकक्ष नहीं रखा जा सकता, और न कलात्मक सृजन व समालोचना की किसी एक पद्धति को ही आम विश्व दृष्टिकोण के समकक्ष रखा जा सकता है। हम न सिर्फ एक अमूर्त और बिल्कुल अपरिवर्तनीय राजनीतिक मापदण्ड के अस्तित्व को मानने से भी इन्कार करते हैं; सभी वर्ग समाजों में हर वर्ग के खुद अपने राजनीतिक और कलात्मक मापदण्ड होते है। लेकिन सभी वर्ग समाजों में सभी वर्ग हमेशा राजनीतिक मापदण्ड को प्रमुख स्थान देते है और कलात्मक मापदण्ड को गौण। हम जिस चीज की मांग करते है वह है राजनीति और कला की एकता, विषयवस्तु और रूप की एकता, क्रांतिकारी राजनीतिक विषय वस्तु और यथासंभव अधिक पूर्ण कलात्मक रूप की एकता। वे कलाकृतियां जिनमें कलात्मक प्रतिभा का अभाव होता है बिल्कुल शक्तिहीन होती हैं, चाहे वे राजनीतिक दृष्टि से कितनी ही प्रगतिशील क्यों न हों। इसलिए हम ऐसी कलाकृतियों का सृजन करने जिनका राजनीतिक दृष्टिकोण गलत होता है, तथा 'पोस्टरबाजी व नारेबाजी जैसी शैली'' वाली उन कलाकृतियों का सृजन करने जिनका राजनीतिक दृष्टिकोण तो सही होता है लेकिन जिनमें कलात्मकता का अभाव होता है, इन दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियों का विरोध करते है। साहित्य और कला के सवालों के बारे में हमें इन दोनों मोर्चों पर संघर्ष चलाना चाहिए।

- माओ त्से-तुङ

(येनान की कला-साहित्य गोष्ठी में भाषण, मई, 1942)

चीन में मजदूर-किसान संश्रय : ग्रामीण विकास की एक रणनीति

• डी.वाई. सू और पी.वाई. चिङ

पिछले कुछ वर्षों से चीन के कुछ उच्चस्तरीय अधिकारी और तमाम समाजवैज्ञानिक यह स्वीकार करने लगे हैं कि **माओ त्से-तुङ** के नेतृत्व में ग्रामीण क्षेत्रों में ढेरों उपलब्धियां हासिल हुई थीं।[1] परन्तु, एक तरफ, जहां उन्होंने कृषिगत अवरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) के निर्माण, भूमि की उत्पादकता में वृद्धि, कृषि उत्पादन में यंत्रीकरण और चीन की बहुसंख्यक ग्रामीण आबादी के जीवन की बुनियादी आवश्कताओं की पूर्ति के लिए किये गये प्रावधान की बात स्वीकार की है, वहीं दूसरी तरफ, उन्होंने माओ द्वारा अपनाये गये विकास के मॉडल का विश्लेषण करने की बात को अपनी सुविधा के लिए दरकिनार ही कर दिया है, जबकि एक ऐसा विश्लेषण दो लाइनों अर्थात माओ की लाइन और **ल्यू शाओ** ची एवं **देङ सियाओ पिङ** की लाइन के बीच के बुनियादी अन्तरों को खोलकर रख देता, और चीन के विकास की देङ की व्याख्या और उसके सुधार के पीछे छिपे कारणों की धज्जियां उड़ा देता।

माओ इस बात में विश्वास रखते थे कि भूमि सुधार के बाद भी वर्ग संघर्ष की निरन्तरता ही चीन के ग्रामीण विकास की प्रमुख चालक शक्ति है। इसीलिए उन्होंने क्रान्ति के बाद निर्माण के दौर में इस संघर्ष के केन्द्र में मजदूरों और किसानों के संश्रय को ही रखा। यह वर्ग विश्लेषण उनकी लाइन को ल्यू /देङ की लाइन से बुनियादी तौर पर अलग करता है।

देङ और उसके सहयोगियों ने माओ पर यह कहकर हमला किया कि उनके द्वारा भड़काये गये वर्ग-संघर्ष ने आर्थिक शक्तियों के विकास को बाधित किया। लेकिन, इसके विपरीत, तथ्य यह है कि वर्ग संघर्ष ने उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्तन किये और इस प्रकार, उत्पादक शक्तियों को और भी विकसित किया। यहां हम माओ की लाइन और ल्यू/देङ की लाइन के बीच के विचारधारात्मक संघर्ष के महत्व को भी विशेष रूप से रेखांकित करेंगे ताकि यह स्पष्ट करने में मदद मिल सके कि *1970* के दशक के आरम्भ में माओ द्वारा चलाये गये *''ताचाई से सीखो''* नामक राष्ट्रीय अभियान क्या था और भी जान सकें कि देङ ने जब अपना सुधार अभियान चालू किया तो ''थोड़े से किसानों को धनी बनने दो'' की अपनी जिस लाइन को आगे बढ़ाने के लिए ताचाई को खारिज करने का जो प्रयास किया – वह क्या था।

कृषि का सामूहिकीकरण

1949 से *1952* के बीच चीन के देहाती भाग के नये मुक्त क्षेत्रों में जो भूमि सुधार किया गया उससे लाखों-लाख किसान अपने जीवन में पहली बार अपने लिए जमीन का एक टुकड़ा हासिल कर सके। यद्यपि प्रति व्यक्ति के हिस्से पड़ने वाली इन जोतों का औसत आकार मात्र 0.2 हेक्टेयर ही था, फिर भी किसान भारी उत्साह में अपनी जमीन के टुकड़े पर खेती में जुट गये। नतीजतन, *1949* से *1952* के बीच अनाज और कपास का उत्पादन तेजी से बढ़ा। लेकिन 1953 आते-आते अनाज का उत्पादन ठहरावग्रस्त हो गया और कपास के उत्पादन में तेजी से गिरावट होने लगी।[2]

वस्तुतः युद्धों से एक शताब्दी तक हुए विनाश और शायद वर्षों तक भूस्वामियों द्वारा की जाती रही उपेक्षा के कारण, कृषि के लिए, चीन का प्राकृतिक वातावरण बहुत नाजुक हो चुका था, तथा खेती लायक जमीनें कम और अनुर्वर होती गयी थीं। किसानों के पास इन अनुर्वर जमीनों के भी बहुत छोटे टुकड़े ही थे, और उस पर भी बहुसंख्यक किसानों के पास उत्पादन के औजार भी बहुत थोड़े ही थे। चीन की कुल किसान आबादी का *60-70* प्रतिशत तो गरीब और निम्न मध्यम किसान ही थे, जिनमें से बहुतेरों के पास एक हल तक नहीं था, दूसरे औजार और हल खींचने वाले जानवरों की तो बात ही छोड़ दीजिए। अतः बिना औज़ार के, महज उत्साह की बदौलत ही उत्पादन को लगातार बढ़ाते नहीं रखा जा सकता था। इसके अतिरिक्त, *1953* और *1954* में बाढ़ और सूखे ने खेती के भारी क्षेत्रफल पर बहुत बुरा असर डाला था। इस तरह की प्राकृतिक आपदाओं और परिवार के किसी सदस्य की बीमारी या मृत्यु जैसी घटनाओं के आगे व्यक्तिगत किसान असहाय ही थे। इसका नतीजा यह होता था कि बहुतेरे किसान परिवार कर्ज़ के जाल में फंस जाने को मजबूर हो जाते थे। अति शोषणकारी सूद दरों पर ऋण चुकाते-चुकाते तमाम किसानों को मजबूरन अपनी जमीन बेच देनी पड़ती थी। कोआपरेटिव आन्दोलन शुरू होने से पहले जमीनों की बिक्री और निजी कर्ज उधारी बढ़ने लगी थी, और बहुतेरे किसान अपनी ही जमीन पर खेत मजदूर बनने लगे थे।[3] यदि कोआपरेटिव आन्दोलन नहीं चला होता तो भूस्वामित्व का और अधिक एकतरफा ध्रुवीकरण और संकेन्द्रण हो गया होता।

छोटी भूमि जोतें और उन पर उपलब्ध खेती के अपर्याप्त औजार ही वे मुख्य आर्थिक कारण बने जिनके चलते पहले *परस्पर सहायता टोलियां* और बाद में *प्रारंभिक कोआपरेटिवों* का गठन किया गया। इनके तहत किसान परिवारों ने एक साथ मिल कर खेती करने के लिए अपनी जमीनों, अपने श्रम और उत्पादन के औजारों को एक में मिला दिया। पैदावार का बंटवारा भूमि, औजार और लगाये गये श्रम के अनुसार किया गया। उत्पादन बढ़ने के साथ, कोआपरेटिवों ने कोष-संचय करना शुरू कर दिया, ताकि जिन परिवारों के पास खेती के औजार थे उनसे इन्हें खरीदा जा सके। चूंकि अधिक विकसित कोआपरेटिवों में भूमि और औजार सामूहिक रूप से खरीदे जाते थे, अतः भूमि या औजार के लिए कोई लाभांश नहीं दिया जाता था, और पैदावार का बंटवारा केवल लगाये गये श्रम के आधार पर ही किया जाता था।

कोआपरेटिव आन्दोलन के प्रत्येक चरण में कुछ को उपलब्धि होती थी तो कुछ को हानि। परन्तु इस आन्दोलन की सफलता इस तथ्य पर निर्भर थी कि बहुतों को इससे फायदा ही हो। इस आन्दोलन के आरंभिक चरण में, हानि उठाने वाले वे ही होते थे जिनके पास अधिक भूमि या औजार होते थे। वे धनी और उच्च मध्यम वर्गीय किसान थे और उनमें कुछ पहले के गरीब रह चुके परिवार भी थे जिनके पास अधिक श्रम करने वाले हट्टे-कट्टे सदस्य थे जिन्होंने अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा बचा लिया था, और उत्पादन के औजार खरीद कर नये उच्च मध्यम किसान बन गये थे। यदि कोआपरेटिवें नहीं बनायी गयी होतीं, तो इन किसानों का ज्यादा फायदा हुआ होता, क्योंकि अधिक जमीन और खेती के औजार रखने के कारण वे आसानी से भाड़े पर खेत-मजदूर रखने में समर्थ हो गये होते। और इन मजदूरों को कम मजदूरी देकर बेशी उत्पादन का ज्यादा हिस्सा अपने पास जमा कर लिए होते, और तब और ज्यादा औजार एवं भूमि रखने में समर्थ हो गये होते। लेकिन, चूंकि

डी. वाई. सू और पी.वाई. चिङ 1980 के दशक के आरम्भ में लास एंजेलस से प्रकाशित होने वाले चीनी जर्नल ताइवान टाइड में लिखते रहते थे। उन्होंने संयुक्त रूप से एक आलेख 'ए क्रिटीक ऑफ देंग्स रिफॉर्म्स'' लिखा जो न्यूयार्क के 'व्यू प्वाइंट' में प्रकाशित हुआ। - सं.

गरीब और निम्न मध्यम किसान कोआपरेटिवों में शामिल थे, इसलिए इन धनी (नये और पुराने) उच्च मध्यम किसानों को भाड़े पर एक भी मजदूर नहीं मिल सकता था। शुरू-शुरू में तो उच्च मध्यम किसान हिचकिचाये, परन्तु जब उन्होंने समझ लिया कि अब और कोई विकल्प नहीं था, तब अन्ततः वे भी शामिल हो गये। अन्त में धनी और उच्च मध्यम दोनों ही प्रकार के किसान प्रारंभिक कोआपरेटिवों में शामिल हो गये और अपनी जमीन और औजारों के एवज में कोआपरेटिवों से अपने लाभांश लेने लगे। लेकिन ये लाभांश इतने अधिक नहीं होते कि वे उस संचय की भरपायी कर पाते जो वे कोआपरेटिवें न होने की दशा में कर लेते।

कोआपरेटिवों में शामिल होने के सवाल पर तो शुरू-शुरू में उन बहुसंख्यक किसानों ने भी हिचकिचाहट दिखायी थी, जिनका इससे सीधे फायदा ही होने वाला था। इसका कारण यह था कि यह एकदम एक नया अनुभव था, और भविष्य को लेकर ढेरों आशंकाएं भी थीं। इसके अतिरिक्त यह बात भी थी कि जबतक गरीब और निम्न मध्यम किसानों को पूरी तरह यकीन न दिला दिया जाता कि इस लड़ाई में अन्ततः जीत उन्हीं की होनी है, तबतक उन्हें एक साथ जोड़ना बहुत कठिन होता। बहुत मामूली जमीन, बहुत थोड़े से औजार और साथ-साथ काम करने के अनुभव की कमी के कारण उनके सहकार का आधार बहुत मजबूत नहीं था। लेकिन यह तो *चीनी कम्युनिस्ट पार्टी* और चेयरमैन माओ की प्रतिष्ठा और साख थी जिसने बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। पार्टी ने सामूहिकीकरण का आहान किया और बहुसंख्यक किसान आबादी ने विश्वास किया कि जिस चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने क्रान्ति और भूमि सुधार के काम को विजय की मंजिल तक पहुंचाने में उनका नेतृत्व किया था वह उन्हें धोखा नहीं देगी। जो किसान कोआपरेटिवों में शामिल हो गये थे उन्हें उन जमीनों और औजारों की बेहद जरूरत थी जो धनी और उच्च मध्यम किसानों के पास थे, लेकिन उन्हें अपने पक्ष में करने के लिए, जो किसान सबसे पहले कोआपरेटिवों में शामिल हुए थे (जिनमें अधिकतर गरीब और निम्न मध्यम किसान ही थे) उनके लिए जरूरी था कि वे अपनी अवस्थिति पर दृढ़ रहते और डिगते नहीं। जैसे-जैसे अधिकाधिक कोआपरेटिवें बनती और सफल होती गयीं, वैसे-वैसे इस आन्दोलन का ज्वार भी ऊंचा उठता गया।

जब कोआपरेटिवें विकसित होकर आगे की मंजिल में पहुंच गयीं, तब नुकसान उठाने वाले साफ तौर पर वे ही थे जिन्हें अपनी सम्पत्तियां कोआपरेटिवों को बेच देनी पड़ी थीं। ये अच्छे खाते-पीते किसान बेहतर ढंग से रहे होते यदि उनके द्वारा अपनी सम्पत्ति के एवज में लाभांश देने की अनुमति जारी रहती। लेकिन उन्हें एक "समझौते के तहत निर्धारित" दाम के आधार पर एकमुश्त एक राशि लेने पर मजबूर किया गया था, जिसको अनिच्छापूर्वक ही उन्होंने स्वीकार किया था।

कोआपरेटिव आन्दोलन से जिनको फायदा पहुंचा था वे स्पष्टतः बहुसंख्यक किसान ही थे जिनके पास एक मामूली से भूमि के टुकड़े और अपने श्रम के अलावा और कुछ कभी रहा ही नहीं था। इन बहुसंख्यक किसानों में वे परिवार भी शामिल थे जिनके पास कोई उत्पादक श्रम था ही नहीं। ऐसे वे बुजुर्ग किसान थे जिनकी कोई सन्तान नहीं थी, और वे विधवाएं थीं, जिनके बच्चे अभी बहुत छोटे थे। उनमें से कइयों के बेटे या पति क्रान्तिकारी युद्ध में शहीद हो चुके थे। माओ इन लोगों की आजीविका को लेकर बहुत चिंतित थे, क्योंकि राज्य अभी इस स्थिति में नहीं था कि इनकी कोई मदद कर सके। इसीलिए माओ ने कहा कि प्रत्येक कोआपरेटिव को चाहिए कि वह कुछ ऐसे परिवारों का भार अवश्य "वहन" करे।[4] ये परिवार "भोजनपात्र" में कुछ योगदान तो नहीं कर सकते थे, परन्तु "भोजनपात्र" से खाना तो था ही। चूंकि कोआपरेटिवें एकदम अपनी इच्छा से तो यह भार "वहन" करने को तैयार होती नहीं, इसलिए इन्हें समझा-बुझाकर तैयार करना पड़ा।

चीन के बारे में पश्चिमी जगत के कुछ विशेषज्ञों ने यह समझा कि कोआपरेटिव आन्दोलन आरम्भिक चरण में तो स्वैच्छिक और सहभागितापूर्ण था, लेकिन जब समाजवाद का उच्च ज्वार आया तो स्वैच्छिक और सहभागितापूर्ण रुझान गायब हो गयी। लेकिन इतने व्यापक और गहरे आन्दोलन को भी -- जिसमें लाखों-लाख लोग शामिल होकर तीन सौ वर्षों से भी अधिक समय से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था को बदलने में लगे हुए थे -- शुरू-शुरू में उन लोगों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा जिनके आर्थिक और राजनीतिक लाभ छीने जा चुके थे। वस्तुतः यह शुरू से ही एक राजनीतिक संघर्ष था, और जैसे-जैसे आन्दोलन आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे अधिक प्रचण्ड भी होता गया। कोआपरेटिवों को संगठित करने वाले कैडरों को माओ बार-बार याद दिलाते रहते थे कि कोआपरेटिवों का नेतृत्व निश्चित तौर पर उन गरीब और निम्न मध्यम किसानों के हाथों में रहना चाहिए जो इस आन्दोलन का सबसे अधिक जोर-शोर के साथ समर्थन करते थे। इसके विपरीत, धनी किसान यह चाहते थे कि कोआपरेटिव आन्दोलन विफल हो जाये, और इसीलिए वे जब भी कोई मौका पाते, तोड़-फोड़ की कार्रवाई में लग जाते।

यद्यपि भूमि सुधार को भारी लोकप्रिय सफलता हासिल हुई थी, फिर भी किसानों को हासिल हुई जोतों पर काबिज बने रहने में भारी कठिनाई हो रही थी। वैसे भूमि का एकतरफा ध्रुवीकरण तो कोआपरेटिव आन्दोलन शुरू होने से पहले ही आरम्भ हो चुका था। *1950* के दशक के आरम्भ में छोटी किसानी उत्पादन का कोई ऐसा रूप नहीं था जिसे टिकाऊ बनाया जा सके। यही बात परस्पर सहायता टोलियों और प्रारम्भिक कोआपरेटिवों के लिए भी सच थी। जिनके पास उत्पादन के अपने औजार होते, उनकी प्रवृत्ति अलग हो जाने की होती। वे सोचते कि अलग रहकर निश्चय ही वे बेहतर ढंग से खा-पी सकते थे। प्रारम्भिक कोआपरेटिवों की दूसरी समस्या, जैसा कि विलियम हिण्टन ने 'शेनफान' में स्पष्ट किया है, यह थी कि जब कोआपरेटिवों के बनने के बाद पैदावार बढ़ने लगी तो यह अधिकाधिक स्पष्ट होने लगा कि पैदावार में अधिकांश बढ़ोत्तरी बेहतर भूमि या उपकरणों के नाते नहीं, बल्कि सघन श्रम के नाते होती थी। अतः बहुसंख्यक सदस्य जो केवल श्रम के रूप में ही अपना योगदान करते थे, इसी तथ्य की रोशनी में एतराज करने लगे कि जिनके पास खेती के औजार हैं उन्हें कोआपरेटिव की बढ़ती आमदनी में से अभी भी ज्यादा हिस्सा क्यों दिया जा रहा है।[5] अतः आमदनी का बंटवारा कैसे किया जाये -- यह मुद्दा पहले से अधिक जटिल और विवादास्पद बन गया।[6] अब इसका समाधान यही था कि और *अधिक विकसित कोआपरेटिवों* की ओर बढ़ा जाये जिनके अन्तर्गत कोआपरेटिवें उत्पादन के औजारों को उनके मालिकों से खरीद लें और आमदनी को केवल लगाये गये श्रम के अनुसार ही वितरित करें।

कोआपरेटिव आन्दोलन की मदद करने में *एकीकृत खरीद प्रणाली* ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। *1953* के जाड़े में, कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने अनाज और दूसरे कच्चे मालों की खरीद-बिक्री का एकाधिकार राज्य को सौंपने का निर्णय लिया। इस नीति के लागू होने पर बिक्री के लिए बेशी अनाज रखने वाले धनी किसानों और उन अनाज व्यापारियों के बीच सम्बन्ध समाप्त हो गया जो अभी भी अनाज आपूर्ति के एक अच्छे-खासे हिस्से पर अपना नियंत्रण बनाये हुए थे और जिसकी बदौलत सट्टेबाजी करके भारी मुनाफा कमा रहे थे।

माओ ने इस संक्रमण काल की गतिविधियों को एक ऐसे वर्ग संघर्ष के रूप में निरूपित किया जिसमें मजदूरों और किसानों का एक मजबूत संश्रय कायम करना जरूरी था। चीन का क्रान्तिकारी युद्ध इसी संश्रय द्वारा लड़ा गया, जो उस भूमि सुधार पर आधारित था जिसका उद्देश्य चीन में सामन्तवाद को खत्म करना और विदेशी प्रभाव से मुक्त होना था। यह संश्रय जैसाकि माओ ने निरूपित किया था, चीन के विकास का रास्ता तय करने वाला था, और यह केवल तभी हासिल हो सकता था जब, एक तरफ, नेतृत्व मजदूरों के हाथ में रहे और खेती का सामूहिकीकरण हो, तथा दूसरी तरफ, उद्योग पर राज्य का स्वामित्व रहे। इस अवधि में इस संश्रय का भौतिक आधार विकास का एक ऐसा ही रास्ता हो सकता था जो मजदूरों और किसानों -- दोनों को ही एक दूसरे से लाभ पहुंचाये। किसान मजदूरों को सस्ते अनाज, कपास और अन्य कच्चे माल मुहैया करते और मजदूर किसानों को उपभोक्ता और उत्पादक विनिर्मित माल मुहैया करते। यदि कोआपरेटिव आन्दोलन विफल हो जाता, तो मजदूर-किसान संश्रय भी विफल हो जाता, क्योंकि व्यक्तिगत किसानी किसान समुदाय के भीतर ही एकतरफा ध्रुवीकरण करती और फूट डालती। तब देहाती क्षेत्र के धनी किसान शहरी पूंजीपतियों और व्यापारियों से अपना संश्रय बना

लेते।

इस सन्दर्भ में, *1953* से *1959* के बीच, **महान अग्रवर्ती छलांग** और **लूशान कान्फ्रेन्स** समेत अन्य तमाम घटी घटनाओं को समझना आवश्यक है। इस दौर में, सामूहिकीकरण की प्रक्रिया को जल्द से जल्द पूरा कर लेने पर जोर दिया गया। लेकिन क्या यह जल्दबाजी जरूरी थी? माओ का मानना था कि यह इसलिए जरूरी थी कि *"जब तक लोहा गर्म है तबतक चोट की जाती रहे"*। कोई यह सवाल भी उठा सकता है कि क्या उस समय की राजनीतिक परिस्थिति में और कोई विकल्प नहीं था। लेकिन, जैसाकि हिण्टन ने 'शेनफान' में लिखा है :

> उस समय की चतुर्दिक उपलब्धियों को देखते हुए कोई भी यह निष्कर्ष निकालने को विवश होगा कि, कुल मिलाकर, माओ सही थे। भूमि सुधार ने एक समय के गरीबों और भाड़े के मजदूरों के बीच पारम्परिक सहायता और सहकारिता की गति को इतना तीव्र कर दिया कि इसी की बदौलत उत्पादन के नये सामूहिक सम्बन्धों का देहाती क्षेत्र में व्यापक फैलाव सम्भव हो सका। माओ ने इस अवसर को पहचाना और इस आन्दोलन को पूर्णता तक पहुंचाया। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता, तो वह एक अद्वितीय ऐतिहासिक अवसर चूक गये होते, और तब देहाती क्षेत्र उसी तरह के बिखराव और एकतरफा ध्रुवीकरण के लिए अभिशप्त हो जाता जैसाकि एक बार फिर हो रहा है।[7]

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर के जो लोग यह चाहते थे कि चीन ल्यू/देङ की लाइन पर विकास करे, उन्होंने पहले से ही स्पष्ट देख लिया था कि कृषि का सामूहिकीकरण उनके अपने संश्रय यानी शहरी पूंजीपति और व्यापारी तथा देहात के धनी किसानों के संश्रय के मार्ग में भारी अवरोध खड़ा कर देगा। अतः ये दो परस्पर विरोधी लाइनें भूमि सुधार को पूरा करने के मुद्दे पर शत्रुतापूर्ण ढंग से टकराने लगीं और लूशान कान्फ्रेन्स में तो सीधे टकराव में आ गयीं। इस प्रकार यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी कि जब देङ और उसके सहयोगियों ने विकास के इस रास्ते को बदल डालने का निर्णायक कदम उठाया तो सबसे पहले कृषि के विसामूहिकीकरण पर ही हाथ लगाया।

कृषि और उद्योग के बीच सम्बन्ध

जब पहली पंचवर्षीय योजना *1957* में पूरी हुई, तो शहरी और ग्रामीण आबादी के बीच आमदनी की खाई चौड़ी हो चुकी थी। **क्रिस्टोफर होव** के अनुसारः

> किसी भी मामले में शहरी आमदनी ही तेजी से बढ़ी, जबकि किसानों की आमदनी बहुत मामूली या नहीं ही बढ़ी। फलतः एक बहुत ही विकट स्थिति उत्पन्न हो गयी। बात सिर्फ इतनी ही नहीं थी कि असमानता बढ़ रही थी, बल्कि यह भी थी कि *1957* तक उजरती मजदूरों की काफी बढ़ चुकी संख्या की बढ़ती आमदनियों के चलते खाद्य एवं अन्य सामग्रियों की मांग इतनी अधिक बढ़ चुकी थी कि उसे पूरा करना सम्भव नहीं था।[8]

माओ ने *1957* से पहले ही इस स्थिति पर बहुत स्पष्टता से सोचना शुरू कर दिया था। जब माओ ने, *1956* में, *'दस प्रमुख सम्बन्धों के बारे में'* लिखा तो उन्होंने "एक तरफ भारी उद्योग और दूसरी तरफ हल्के उद्योग एवं कृषि के बीच के सम्बन्ध" को दस प्रमुख सम्बन्धों में से एक बताया। माओ ने कृषि और हल्के उद्योग के महत्व पर जोर दिया और सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोपीय देशों दोनों ही की उन गम्भीर समस्याओं को इंगित किया जो भारी उद्योग पर एकतरफा जोर देने के कारण पैदा हुई थीं। यद्यपि माओ ने इस बात को नोट किया कि चीन ने अभी वह गलती नहीं दुहरायी है, फिर भी उन्होंने कहा कि :

> आज हमारे सामने जो समस्या है वह है कृषि और हल्के उद्योग के अधिकाधिक विकास के लिए एकतरफ भारी उद्योग और दूसरी तरफ कृषि और हल्के उद्योग में निवेश के अनुपात को ठीक से समायोजित करना। लेकिन क्या इसका अर्थ यह है कि भारी उद्योग अब प्राथमिक नहीं रह गया है? नहीं, यह प्राथमिक है, और अभी भी हमारे निवेश में इस पर और जोर देने की आवश्यकता है। लेकिन कृषि और हल्के उद्योग का अनुपात किसी हद तक बढ़ाना आवश्यक है।[9]

माओ ने भारी उद्योग पर अति जोर देने के विरुद्ध सचेत किया, ताकि सोवियत विकास की गलतियों से बचा जा सके। उनकी यह सोच दूसरी पंचवर्षीय योजना में और उसके बाद भी प्रतिबिम्बित होती रही।

मजदूर किसान संश्रय का भौतिक आधार

द्वितीय पंचवर्षीय योजना से लेकर *1978* तक राज्य ने केवल इतना ही नहीं किया कि निवेश को कृषि की ओर प्रवाहित किया, बल्कि कृषि निवेश पैदा करने वाले उद्योगों में निवेश को बढ़ाया भी। इसके अतिरिक्त राज्य ने अपने राजस्व के प्रतिशत के रूप में लिये जाने वाले कृषिगत टैक्सों में कटौती करके कृषि के ऊपर अपनी बजटीय निर्भरता को कम कर दिया। इसी अवधि में राज्य ने कृषि के मद में किये जाने वाले खर्च को क्रमशः बढ़ाया भी -- शुद्ध रकम और कुल खर्च दोनों ही रूपों में। साथ ही, राज्य ने कृषि क्षेत्र में बेचे जाने वाले औद्योगिक उत्पादों की कीमतों में कटौती और कृषिगत उत्पादों की कीमतों में बढ़ोत्तरी को जारी रखते हुए कृषि उत्पादों के लिए व्यापार की शर्तों में सुधारात्मक समायोजन भी किये। इन दो दशकों के दौरान कृषि निवेशों और उपभोक्ता मालों (गेहूं के रूप में) के मदों में किसानों द्वारा अदा की जाने वाली कीमतें तेजी से कम होती रहीं। सारणी *1* में दिये गये आंकड़े इस सन्दर्भ में चीन की विकास नीति में जोर दिये जाने के बिन्दु में किये गये परिवर्तनों को स्पष्ट करते हैं।

सारणी 1

1957 से 1978 के दौरान राज्य और सामूहिक कार्यों के आपसी आर्थिक सम्बन्धों में किये गये परिवर्तन

	1957	1978
कृषि निवेश – राज्य के सकल निवेश के प्रतिशत के तौर पर	7.8अ	12.5ब
कृषि निवेश – भारी औद्योगिक निवेश के प्रतिशत के तौर पर	3.0 अ	11.1 ब
कृषिगत टैक्स–राज्य के सकल राजस्व के प्रतिशत के तौर पर	9.6	2.5
कृषि पर राज्य का खर्च–राज्यके सकल खर्च के प्रतिशत के तौरपर	7.4अ	12.6स
कृषि क्षेत्र के व्यापार की शर्तें (1950-100)	130.4	188.8

स्रोत : निकोलस आर. लार्डी, एग्रीकल्चर इन चाइनाज मॉडर्न इकॅनमिक डेवलेपमेण्ट, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983, पृ. 130-131; स्टैटिस्टिकल इयरबुक आफ चाइना, 1983, 445, 447, और ग, ल, प्राइसिंग प्रॉब्लम्स अण्डर सोशलिज्म (चीनी भाषा में) बीजिंग : चाइनाज फिनान्स एण्ड इकनामिक पब्लिशर्स 1982, पृ. 76, (अ) 1953-195) तक की अवधि का सूचक; (ब) 1976-78 तक की अवधि का सूचक; (स) 1976-77 तक की अवधि का सूचक।

इन सारी अनुकूल स्थितियों ने कृषि क्षेत्र के विकास में मदद की। कृषि क्षेत्र अपने अधिक विकास के चलते उद्योग से अधिकाधिक खरीदारी करने में समर्थ होता गया। **निकोलस लार्डी** के अनुसार, 1950 के दशक के अन्त तक के दो दशकों में कृषि क्षेत्र द्वारा खरीदे गये उत्पादक मालों की कुल मात्रा सापेक्षिक और निरपेक्ष दोनों ही रूप में बढ़ी। सापेक्षिक अर्थों में, कृषि क्षेत्र द्वारा उत्पादक मालों की खरीदारियां,

इस क्षेत्र द्वारा राज्य को किये गये माल-विक्रय से होने वाली कुल आय के प्रतिशत के तौर पर जहां *1956* में *16* प्रतिशत थी, उससे बढ़कर *1978* में *60* प्रतिशत हो गयी। और जहां तक निरपेक्ष अर्थों में इस बढ़ोत्तरी की बात है, तो कृषि क्षेत्र द्वारा खरीदे गये उत्पादक मालों की कुल मात्रा - जो *1967* में *3.27* अरब रेन मिन बी (सयाआरएमबी - चीनी करेन्सी की इकाई) थी - बढ़कर *1978* में *29.37* अरब आर एम बी हो गयी। ये बढ़ोत्तरियां बहुत महत्वपूर्ण थीं, क्योंकि इन मालों की कीमतें या तो स्थिर बनी रहीं या और गिरती ही गयीं।

माओ के नेतृत्व के अन्तर्गत विकास का जो रास्ता अख्तियार किया गया उस पर चलते हुए कृषि क्षेत्र को न तो अत्यधिक निचोड़े जाने दिया गया और न ही उसकी बलि चढ़ने दी गयी। यह ठीक है कि राज्य किसानों से खरीदे गये अनाज और अन्य कच्चे मालों की कम कीमत देता था, परन्तु इन कीमतों को धीरे-धीरे बढ़ा भी दिया गया। और यह भी गौरतलब है कि इन कम कीमतों पर की गयी खरीदारियों की बदौलत ही राज्य शहरी आबादी को सस्ते दर पर अनाज और कपड़े मुहैया करने में समर्थ हुआ था, जिसके नतीजे के तौर पर मजदूरियों को कम रखा जा सका और इस प्रकार उद्योगों को तेजी से विकास करने की सुविधा प्राप्त हो सकी। इसके अतिरिक्त, कम कीमत पर कच्चे माल प्राप्त करके राज्य ने उन उद्योगों के मुनाफों को बढ़ावा दिया जो कपड़ा, तम्बाकू, अल्कोहल और खाद्य सामग्री आदि तैयार करने में इन निवेशों का इस्तेमाल करते थे। इन सम्मिलित मुनाफे का एक हिस्सा फिर उद्योगों में ही निवेश कर दिया जाता था, जिसकी बदौलत वे कृषिगत निवेश -- जैसे मशीनरी, उपकरण, उर्वरक और कीटनाशक दवाओं आदि का उत्पादन करते थे। ये कृषिगत निवेश कम और घटती कीमतों पर पुनः कृषि क्षेत्र को ही बेच दिये जाते थे। इस प्रकार, कृषिक्षेत्र इस तरह के आधुनिक निवेशों की अधिकाधिक मात्रा में खरीदारी कर लेने में समर्थ होता जाता था। *1960* के दशक के मध्य से लेकर *1970* के दशक के उत्तरार्द्ध तक इन खरीदारियों में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी होती रही। इसके अतिरिक्त, राज्य ने कृषि में अपना निवेश और भी बढ़ा दिया, जिसका इस्तेमाल आमतौर पर बड़े पैमाने के ऐसे कृषिगत अवरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) के निर्माण में होता था जिसे कम्यून स्वयं निर्मित कर पाने में सक्षम नहीं थे। अतः भले ही कृषि क्षेत्र से शुद्ध बहिर्प्रवाह ही होता था, परन्तु ऐसा उसके संसाधनों को निचोड़ कर नहीं किया जाता था। बल्कि, इसके विपरीत सच्चाई तो यह थी कि औद्योगिक क्षेत्र से प्राप्त आधुनिक उत्पादों द्वारा इसे निरंतर परिपुष्ट ही किया जाता था। कृषि और उद्योग के बीच होने वाला विनिमय दोनों ही क्षेत्रों को लाभान्वित करता था और यही मजदूर-किसान संश्रय का भौतिक आधार भी था। यद्यपि अभी यह सम्भव नहीं था कि इन दोनों क्षेत्रों में पूर्ण समानता लायी जा सके, फिर भी माओ काल में जो नीति अपनायी गयी उसका जोर कृषि में निवेश पर था। तीसरी दुनिया के अधिकतर देशों में कृषि क्षेत्र द्वारा उत्पादित अधिशेष (सरप्लस) को निचोड़कर उद्योग के ही विकास पर लगा दिया जाता था। देङ के सुधार के दस वर्षों में चीन में भी वही ढर्रा पुनः प्रकट हो गया।

देङ ने ग्रामीण क्षेत्र में जो सुधार चालू किया उसकी शुरुआत ही अनाज और अन्य फसलों की कीमतें बढ़ाने से हुई जो *1979* तक *20* प्रतिशत बढ़ा दी गई, जिसमें कीमतों पर बोनस देने के नाम पर *50* प्रतिशत की और वृद्धि भी कर दी गई। अगले कुछ वर्षों में ये कीमतें फिर कई-कई बार बढ़ायी जाती रहीं, बेशक, किसान और खासतौर से ऐसे किसान परिवार जो ऊंची बोनस कीमतों पर भारी मात्रा में फसली जिन्सें बेच लेने की हैसियत रखते थे, शुरू-शुरू में अपनी आय की इस अचानक वृद्धि से बेहद खुश हुए और अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों के चीन विशेषज्ञ देङ की इस नीति की तारीफ करते हुए, माओ की यह कहकर आलोचना करने लगे कि उनके नेतृत्व के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र का अत्यधिक शोषण किया गया था। यद्यपि इस सुधार के बाद थोड़े समय के लिए खेतिहर परिवारों के उपभोग स्तरों में कुछ वृद्धि अवश्य हुई, परन्तु यह भी सच है कि जो लोग टिकाऊ उपभोक्ता सामान (कन्ज्यूमर ड्यूरेबल) खरीदने और अपना निजी आवास बना लेने में समर्थ हुए उनकी इस सामर्थ्य के लिए हासिल होने वाली आय अनाज बेचकर नहीं प्राप्त हुई थी। वे तो ज्यादातर मामलों में अपने विशेषाधिकारों और तरह-तरह के सम्बन्ध सूत्रों के मार्फत पहले ही धनी हो चुके थे।

लेकिन ग्रामीण आबादी को प्राप्त ये उन्नततर उपभोग स्तर भी कायम नहीं रह सके। कारण कि राज्य एक तरफ तो, किसानों को उनके अनाज और अन्य फसलों की ऊंची कीमतें देता था, परन्तु दूसरी तरफ, कृषि और कृषिगत निवेश पैदा करने वाले उद्योगों में किये जाने वाले निवेश में भारी कटौती भी कर देता था। राज्य ने शहरी आबादी के लिए खाने-पीने की बुनियादी चीजों की कीमतें, मुद्रास्फीति और असंतोष फैलने के डर से नहीं बढ़ायी। फलतः बजट-घाटा बढ़ता गया। *1984* के सुधारों के बाद, राज्य ने कृषि निवेश पैदा करने वाले उद्योगों को दी जाने वाली सब्सिडियों में कटौती कर दी। फलतः वे अपना उत्पादन घटा देने के लिए मजबूर हो गये। रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक दवाओं, प्लास्टिक की चद्दरों, कृषि-मशीनरी और डीजल ईंधन आदि सबकी कीमतें तेजी से बढ़ती गयीं। *1984* तक ही यह स्थिति आ गयी थी कि किसानों को अपने उत्पादों के जो ऊंचे दाम प्राप्त होते थे उनका काफी कुछ बढ़ी हुई उत्पादन लागतें चट कर जाती थीं। इस प्रकार यह प्रतिकूल दाम/लागत अनुपात खेती को हतोत्साहित करने लगा। यही नहीं, गैर कृषिगत कार्यों से होने वाली भारी आमदनियों ने श्रमसाध्य और कम हो चुकी आय वाली खेतीबारी को और भी अनाकर्षक बना दिया। अब तो याङत्सी नदी के डेल्टा जैसे अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्रों में भी गैर कृषिगत रोजगार के अवसर पैदा कर दिये गये हैं। यही कारण है कि ज्यादातर खेतिहर परिवारों के उत्पादक सदस्य अब या तो फैक्टरियों में नौकरी करते हैं या व्यापार में लग गये हैं, और इस तरह अब खेती केवल औरतों, बच्चों और बूढ़ों के ही भरोसे छोड़ दी गयी है। अब इन सबसे उपजाऊ जमीनों पर, ये अंशकालिक खेतिहर भी ज्यादा निवेश करने या अपना ज्यादा श्रम लगाने से हिचकिचा रहे हैं। अब इन क्षेत्रों की हालत यह हो चुकी है कि जहां कभी ये आवश्यकता से अधिक अनाज पैदा करते थे, अब अपने ही खाने के लिए विदेशों से अनाज आयात करने के मोहताज हो गये हैं।[9]

कृषि का सामूहिकीकरण और आधुनिकीकरण

माओ के मॉडल में कृषि विकास का लक्ष्य चीन की भारी और बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भरपूर खाद्य पदार्थ और भरपूर कच्चे माल पैदा करना था। निश्चय ही तब सबसे कठिन चुनौती चीन की भारी आबादी का पेट भरने के लिए सीमित संसाधनों के इस्तेमाल करने के तरीके की थी। माओ ने इसका समाधान इस रूप में पेश किया कि सामूहिकीकरण के जरिये मानवीय और भूमि सम्बन्धी संसाधनों को एकीकृत किया जाये और भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए किसानों को अधिक से अधिक श्रम करने हेतु लामबंद किया जाये। इसके लिए जो लक्ष्य रखा गया, उसके तहत केवल इतनी ही बात नहीं थी कि सघन खेती के जरिये फसलों की पैदावार बढ़ायी जाये, बीजों की नई-नई किस्में विकसित की जाये, उर्वरकों (जैविक और रासायनिक दोनों ही) सिंचाई और बहुफसली खेती के प्रयोग पर जोर दिया जाये, बल्कि यह भी कि सिंचाई और जलनिकास के ताने-बाने खड़े करके सूखे और बाढ़ को रोका जाये।

चीनी किसानों ने खेती से पूंजी निर्माण के लिए लम्बी अवधि तक और कड़ी मेहनत की। चूंकि ज्यादातर निर्माण कार्य जाड़े के महीनों में किया जाता था -- जब खेती-बारी के रूप में उत्पादन कार्य बहुत ही कम रह जाता था -- अतः उन्होंने अपने काम के दिनों की औसत संख्या - जो *1950* के दशक के मध्य में *119* दिन प्रति वर्ष थी -- बढ़ाकर *1970* के दशक के मध्य में *250* कर ली।[10] *1970* के दशक के दौरान, औसतन *8* अरब श्रम दिवस प्रतिवर्ष भूमि कार्य करने के लिए पूंजीभूत होते रहे।'' अलेक्जेण्डर एक्सटीन ने *1978* में अमेरिकी कांग्रेस में प्रस्तुत एक शोधपत्र में चीन के कृषिगत पूंजी निर्माण को इन शब्दों में वर्णित किया :

निश्चय ही इसका मतलब है अधिक और स्थायी पैदावार हासिल करने की गरज से क्षेत्र विशेष की भौगोलिक विशेषताओं को नया स्वरूप प्रदान करना जिससे

कि दूसरे निवेशों -- जैसे श्रम, मशीनरी, उर्वरक और बीजों की उन्नतशील किस्मों -- को एक घनिष्ठ सहमेल के साथ इस्तेमाल करने की आवश्यक भौतिक दशाएं तैयार की जा सकें। इसके लिए अक्सर जमीन को चौरस या सीढ़ीदार बनाने की जरूरत होती है, और कभी-कभी तो कोई बड़ा बांध बनाने या किसी क्षेत्र में मिट्टी भरने के लिए पहाड़ों तक को समतल बनाना पड़ता है और मिट्टी को टोकरियों में उठाकर मानवीय श्रम द्वारा कई-कई किलोमीटर तक ले जाना पड़ता है। कई एक क्षेत्रों में इसका मतलब है भूमिगत जलनिकास नालियों, जलाशयों, नहरों, सिंचाई की नालियों, पम्पिंग स्टेशनों, और ट्यूब वेलों का निर्माण करना।[12]

लेकिन ऊपर वर्णित उद्देश्यों में से एक भी उद्देश्य पूरा नहीं हो सका होता, यदि ऐसे निर्माण कार्य को सम्भव बनाने के लिए श्रम की लामबंदी और संसाधनों के आवंटन की गरज से कम्यूनों का संगठन नहीं किया गया होता। राज्य ने ऐसी बड़ी निर्माण परियोजनाओं को वित्तीय सहायता भी प्रदान की जो इतनी विशाल थीं कि कम्यून उसे स्वयं नहीं पूरा कर सकते थे।

लेकिन किसानों ने चाहे कितनी भी कड़ी मेहनत की, अकेले मानव श्रम ही कृषि का विकास नहीं कर सकता था। *1979* के पहले, तीस वर्षों के दौरान खेती लायक भूमि का क्षेत्रफल तो वही रहा, परन्तु किसानों की संख्या दूनी हो गयी। इन वर्षों में चीन की प्रति हेक्टर फसल की पैदावार भी दूनी से अधिक हो गयी। यद्यपि आज यह दावा किया जा रहा है कि चीनी कृषि में श्रम की उत्पादकता घटी है, फिर भी अभी इस सवाल पर और अध्ययन करने की जरूरत है। चूंकि किसानों के वार्षिक श्रम काल का *30* प्रतिशत से अधिक हिस्सा (जो *1950* के दशक से *1970* के दशक तक धीरे-धीरे बढ़ा था) कृषिगत अवरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) खड़ी करने में खर्च हुआ था, जिसे वर्तमान उत्पादन के निवेश के रूप में नहीं समझा जा सकता, इसलिए यह सही नहीं होगा कि वर्तमान कृषि उत्पादन में ग्रामीण श्रमशक्ति से महज भाग देकर श्रम की उत्पादकता की गणना कर ली जाये।

कृषि के आधुनिकीकरण का मतलब है औद्योगिक क्षेत्र से कृषि क्षेत्र के लिए अधिकाधिक आधुनिक निवेश मुहैया करना। जैसाकि हम पीछे कह चुके हैं, कृषि और उद्योग के बीच परस्पर सहयोगी सम्बन्ध ने ही कृषि क्षेत्र के लिए यह संभव बनाया कि वह औद्योगिक उत्पादों की अधिकाधिक खरीदारी कर सके। सारणी *2* में *1952* से *1979* तक की अवधि में कृषि उत्पादन के लिए आधुनिक निवेशों के रूप में की गयी प्रगति को दर्शाया गया है। जैसा कि इस सारणी से स्पष्ट है, देङ के सुधार के पूर्ववर्ती तीस वर्षों के दौरान चीन पहले ही किसी हद तक आधुनिकीकरण हासिल कर चुका था, जिसकी बदौलत खेती से कठिनतम शारीरिक श्रम को बाहर किया जा चुका था, और इस प्रकार खेती के काम में श्रम सघनता में काफी कमी आयी थी।

माओ का मानना था कि खेती में यंत्रीकरण को सम्भव करने से पहले सामूहिकीकरण जरूरी था, जबकि ल्यू और देङ का मानना था कि पहले यंत्रीकरण ही जरूरी था। माओ सही थे। कारण कि यंत्रीकरण और आधुनिकीकरण तो खेती के सामूहिकीकरण के बिना सम्भव ही नहीं हुए होते। दूसरे शब्दों में, उत्पादक शक्तियों का विकास तो तभी शुरू हो सका जब वर्ग संघर्ष ने उत्पादन सम्बन्धों में भारी परिवर्तन किये। इस वर्ग संघर्ष में मजदूर किसान संश्रय ने जो एक बड़ी जीत हासिल की वह थी कृषि का सामूहिकीकरण, जिसने धनी किसानों को फिर से सिर उठाने को रोक दिया, और ग्रामीण विकास को एक उच्चतर मंजिल की ओर त्वरान्वित कर दिया। लेकिन माओ जानते थे कि अपनी लाइन को आगे बढ़ाने के लिए विचारधारात्मक मोर्चे पर संघर्ष करके विजय हासिल करना जरूरी था। इसी बिन्दु पर ''ताचाई से सीखो'' अभियान अस्तित्व में आया।

''ताचाई से सीखो'' अभियान

माओ के विकास के माडल में ''ताचाई से सीखो'' अभियान का भारी महत्व था, जिसने ग्रामीण विकास के अन्तर्गत आत्मनिर्भरता पर भारी बल दिया। यही कारण था कि माओ पर हमला करते हुए देङ ने अपने सुधार से पहले ताचाई द्वारा हासिल की गयी उपलब्धियों को खारिज किया, और चेन युङ कुएई को नेतृत्वकारी पद से हटा दिया। ''ताचाई से सीखो'' अभियान आत्मनिर्भरता के महत्व के प्रति माओ की समझदारी को व्यक्त करता था, क्योंकि वह भलीभांति जानते थे कि साम्राज्यवाद उस किसी भी देश के लिए खतरनाक सिद्ध होता है जो अपनी अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाना चाहता है।

माओ की विकास रणनीति में कृषिक्षेत्र अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड था, क्योंकि आत्मनिर्भरता का मतलब ही यही था कि चीन पहले इतना अधिक खाद्यान्न पैदा करे कि वह अपनी जनता का पेट भर सके। यह भी एक कारण था जिसके नाते खाद्यान्न उत्पादन को एक कुंजीभूत कड़ी के रूप में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। चीनी जनता पिछले एक सौ वर्षों के अपने अनुभव से यह भलीभांति जानती

सारणी 2

कृषि का आधुनिकीकरण

	1952	1957	1965	1976
ट्रैक्टर से जोता जाने वाला क्षेत्रफल कृषि क्षेत्रफल के प्रतिशत के रूप में	0.1	2.4	15.0	42.4
सिंचित क्षेत्रफल –– कृषि क्षेत्रफल के प्रतिशत के रूप में	18.5	24.4	31.9	45.2
मशीनरी शक्ति द्वारा सिंचित क्षेत्रफल सम्पूर्ण सिंचित क्षेत्रफल के प्रतिशत के रूप में	1.6	4.4	24.5	56.3
रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किलो प्रति हेक्टर	0.7	3.3	18.7	109.2
ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे जलविद्युत स्टेशन	98	544	अनुपलब्ध	83,224
जलविद्युत उत्पादन क्षमता–(हजार किलोवाट में)	8	20	अनुपलब्ध	276.3
कृषि मशीनरी की कुल अश्व शक्ति 10,000 अ.शं.	25	165	1,494	18,191
बड़े और मझोले आकार के ट्रैक्टर हजार में·	1.3	4.7	72.6	668.8
छोटे और हल्के ट्रैक्टर' हजार में	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	4	1,671
कृषि में जलनिकास और सिंचाई के लिए मोटर 10,00 अ.श.	12.8	56.4	907.4	7,122.1
हार्वेस्टर कम्बाइन	284	1,789	6,704	23,026
मछली मारने की मोटरचालित नावें	अनुपलब्ध	1,485	7,789	52,225

'यद्यपि ये कृषि कार्य के लिए थे, फिर भी इनमें से कई को माल ढोने के काम में लाया जाता था।

स्रोत : स्टैटिस्टिकल इयरबुक ऑफ चाइना, 1983 पृ. 186 197 और 1981 की चाइना इकनामिक इयरबुक (चीनी भाषा में) अप, पृ. 13

थी कि किसी भी प्रकार की ''सहायता'' -- जैसे अनाज, पूंजी या तकनोलाजी के लिए पश्चिम पर निर्भर रहने का क्या मतलब होता। इसीलिए इस बात का पक्का निश्चय किया गया कि चीन को स्वयं ही ऐसी पहल करनी चाहिए कि चीनी किसान कृषि उत्पादन के आधार के तौर पर आवश्यक अवरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) खड़ी करने के लिए कठिन से कठिन श्रम करने के लिए उठ खड़े हों। इस सन्दर्भ में माओ ने *1945* में ही ''मूर्ख बूढ़ा आदमी जिसने पहाड़ धकेल दिया'' नामक एक लघु निबन्ध लिखा था। इसमें उन्होंने एक पुरानी चीनी कहावत को याद किया था कि कैसे एक मूर्ख आदमी ने एक संकल्प लिया था कि उसके घर के रास्ते में पड़ने वाले दो बड़े पहाड़ों का चक्कर काटकर जाने के बजाय उन्हें ही वहां से हटा दिया जाये। इसके हवाले से माओ ने बताया कि चीनी जनता के सिर पर दो बड़े पहाड़ सवार हैं -- एक साम्राज्यवाद और दूसरा सामन्तवाद। अब चीनी जनता को यही संकल्प लेना था कि वह कड़ी मेहनत करके इन्हें हटा दे।

ताचाई को एक मॉडल के रूप में तैयार किया गया, क्योंकि वहां की जनता ने न तो प्रकृति के आगे घुटने टेके और न ही संसाधनों की कमी के आगे और उसने खेती लायक जमीन का एक-एक इंच हासिल कर लेने एवं खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बन जाने के लिए सामूहिक संघर्ष किया। वस्तुतः ऐसे ही लोग उन 'मूर्ख' आदमियों के प्रतीक थे जो पहाड़ धकेलने की कोशिश कर रहे थे। उनका विश्वास था कि दृढ़ निश्चय, कड़ी मेहनत और सहकार की बदौलत आगे चल कर वे बड़ी उपलब्धि हासिल कर लेंगे, बजाय इसके कि तुरत-फुरत कोई लाभ पाने की दिशा में लगे रहें। ''ताचाई से सीखो'' अभियान ने ग्रामीण पूंजी निर्माण के काम को राष्ट्रव्यापी पैमाने पर भारी गति प्रदान की। अकेले वूझी काउण्टी (सियाङसू प्रान्त) में ही -- जो कि चीन के सबसे समृद्ध कृषि क्षेत्रों में से एक था -- ''ताचाई से सीखो'' अभियान के अगले आठ वर्षों (*1970-1978*) के दौरान जो भूमि कार्य किया गया वह पिछले *13* वर्षों के दौरान किये गये कार्य से कहीं पांच गुने से भी अधिक था। ऐसे ही *13* और अनुभव चीन के अन्य भागों में प्राप्त हुए। क्रान्ति के बाद अगले तीस वर्षों के दौरान, ये ''मूर्ख'' स्त्री-पुरुष लाखों की संख्या में तैयार होकर चीन को आत्मनिर्भर बनाने की लम्बी और कठिन यात्रा पर चल पड़े। लेकिन *1979* में जो सुधार चालू हुआ उसके तहत केन्द्रीय सरकार ने इसके ठीक विपरीत ऋण लेकर विदेशों से अनाज आयात करने की नीति अपनायी, जिसका नतीजा आज यह हुआ है कि किसानों को पुराने ताचाई जैसे क्षेत्रों को आत्मनिर्भर बनाने के बजाय नौकरियों के लिए शहरों की ओर भागने को मजबूर होना पड़ रहा है।

लेकिन जब ताचाई से सीखने के लिए पूरे राष्ट्र का आह्वान किया गया था तो चीनी किसानों ने एकजुट होकर चीन की कृषिगत अवरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) की नींव रखी थी तथा अधिकाधिक मात्रा में अनाज और दूसरी चीजें पैदा की थीं। इस बहुमूल्य और महत्वपूर्ण अनुभव ने उन्हें अपनी सामर्थ्य का एहसास करा दिया था। मिलजुलकर सिंचाई और जलनिकास के ताने-बाने तैयार करने में, वे यह भी महसूस करने लगे थे कि यदि सार्वजनिक हित को पहले सोचा जाये, तो यही आगे चलकर व्यक्तिगत हित में तब्दील हो जाता है।

भले ही *1979* से चालू हुए देङ के सुधार के अन्तर्गत कृषि और उद्योग के निजीकरण तथा किसान-मजदूर संश्रय की माओ की रणनीति के खात्मे पर जोर दिया गया, लेकिन चीन में प्रचण्ड वर्ग संघर्ष अभी भी जारी है। इस संघर्ष का क्या परिणाम निकलेगा -- यह काफी हद तक इस बात पर निर्भर करेगा कि एक नया मजदूर-किसान संश्रय कब बनता है -- कुछ महीनों में ही या कई वर्षों बाद।

टिप्पणियां:

1. चीन के उपप्रधानमंत्री तिएन ची युन ने इस बात को स्वीकार किया कि सुधार से पहले, तीस वर्षों के दौरान कृषिगत अवरचना का विकास ही वह मुख्य कारण था जिसकी बदौलत सुधार के बाद कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। पीपुल्स डेली (विदेश संस्करण) *12* जून, *1986 4* जून के सामूहिक नरसंहार के बाद से, वर्तमान शासन चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की साख खत्म हो जाने के डर से बार-बार विगत चालीस वर्षों की उपलब्धियों का ढिंढोरा पीटने लगा है।

2. देखें सू जिङ, ''द टू लाइन स्ट्रगल, सोशलिस्ट वर्सेज कैपिटलिस्ट, आफ्टर द लैण्ड रिफार्म,'' जिङ जिन यान जिऊ, *1965* संख्या*7*, पृ. *24*

3. वही

4. कृषि कोआपरेटिवों पर माओ के दृष्टिकोण के लिए देखें ''ऑन द कोआपरेटिव ट्रांसफार्मेशन आफ एग्रीकल्चर'' (31 जुलाई, 1995), ''रिलाई ऑन पार्टी एण्ड लीग मेम्बर्स एण्ड पुअर एण्ड लोअर मिडल पेजेण्टस इन द कोआपरेटिव ट्रांसफारमेशन आफ एग्रीकल्चर'' (*7* सितम्बर, *1955*) ''द डिबेट आन द कोआपरेटिव ट्रांसफारमेशन आफ एग्रीकल्चर एण्ड द करेंट क्लास स्ट्रगल'' (सितम्बर और दिसम्बर *1955*) : सेलेक्टेड वर्क्स आफ माओ त्से-तुङ खण्ड अ (बीजिंग : फारेन लैंग्वेज प्रेस, *1977*)

5. विलियम हिण्टन, शेनफान (न्यूयार्क : रैण्डम हाउस, *1983*), पृ. *142-143*

6. वही, पृ. *165*

7. क्रिस्टोफर होव, चाइनाज इकानमी : ए बेसिक गाइड (न्यूयार्क : बेसिक बुक्स, *1978*)

8. ''आन द टेन मेजर रिलेशनशिप्स'' : सेलेक्टेड वर्क्स, खण्ड अ, पृ. 285-286

9. निकोलस आर. लार्डी, एग्रीकल्चर इन चाइनाज मार्डन इकनॉमिक डवलपमेण्ट (न्यूयार्क : कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस 1983), पृ. *106, 107*

10. टॉमस जी. राव्स्की, इकनॉमिक ग्रोथ एण्ड एम्पलायमेण्ट इन चाइना न्यूयार्क : आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, *1979*, पृ. *7-8*

11. शी बिङ, ''मोर इनपुट्स टु प्रोमोटिंग एग्रीकल्चरल डवलपमेण्ट'', प्रॉब्लम्स ऑफ एग्रीकल्चरल इकानमी, संख्या *1, 1987*, पृ. *8*

12. अलेक्जेण्डर एक्सरीन, ''द चाइनीज डवलपमेण्ट मॉडल'', चाइनीज इकानमी पोस्ट माओ, एक कैम्पेण्डियम आफ पेपर्स, (वाशिंगटन : यू.एस. गवर्नमेण्ट प्रिण्टिंग ऑफिस, *1978*) पृ. *88*

13. 1979 में पाओ न्यू चिङ द्वारा वूझी से साक्षात्कार में प्राप्त जानकारी।

अंग्रेजी से अनुवाद : वि.मि.

पढ़िए, पढ़ाइए, प्रचारित कीजिए

मजदूरों का इंकलाबी अखबार **बिगुल**

सम्पादक : डा. दूधनाथ, **सम्पादकीय कार्यालय** : द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ--226007
एक प्रति : दो रुपए वार्षिक : (बारह अंक) : 24 रुपए

इंकलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है!

आह्वान कैम्पस टाइम्स

पांच वर्षों से प्रकाशित हो रहा क्रान्तिकारी नौजवानों का पाक्षिक अखबार

सम्पादक : सुरेन्द्र प्रताप, मुकुल श्रीवास्तव
सम्पादकीय कार्यालय : संस्कृति कुटीर, मो. कल्याणपुर, गोरखपुर--273001
एक प्रति : तीन रुपए वार्षिक : 72 रुपए

क्रांति का विज्ञान

दूसरी किस्त

सर्वहारा अधिनायकत्वः मार्क्सवाद की कसौटी

•

अन्यायी व्यवस्था के विरुद्ध सुलगता आक्रोश और इसे बदल डालने की चाहत क्रान्ति करने के लिए पर्याप्त नहीं है। लड़ने के प्रति प्रतिबद्धता ही काफी नहीं है, बल्कि सचेतन ढंग से लड़ना सीखने की; क्रान्ति के विज्ञान को समझने, उसमें महारत हासिल करने और उसे सही ढंग से लागू करना सीखने की जद्दोजहद जरूरी है।

समाज का विकास कोई बेतरतीब, अनजानी या बेकाबू चीज नहीं है। प्रकृति की तरह, इसकी गति के भी सुनिश्चित नियम हैं जिन्हें समझा जा सकता है। समाज अपने आप में प्रकृति का ही एक अत्यन्त संगठित रूप है। इसे संचालित करने वाले आन्तरिक नियमों को समझने के बाद जनसाधारण उन्हें लागू करके दुनिया को बदल सकते हैं।

जैसा कि लेनिन ने कहा था, "क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बिना कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं हो सकता।"

अमेरिकी लेखिका *लेनी वुल्फ* की पुस्तिका 'क्रान्ति का विज्ञान' इसी नाम की एक महत्वपूर्ण पुस्तक के परिचय के रूप में लिखे गये लेखों का संकलन है। इसके दो लेख हमने 'दायित्वबोध' के पिछले अंक में प्रकाशित किये थे। तीसरा लेख 'सर्वहारा अधिनायकत्वः मार्क्सवाद की कसौटी' प्रस्तुत है। - सम्पादक

"सर्वहारा क्रांति और सर्वहारा अधिनायकत्व के सिद्धान्त मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सारतत्व है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद और संशोधनवाद की सभी किस्मों के बीच संघर्ष हमेशा इन सवालों पर ही केन्द्रित रहा है कि क्रांति का समर्थन किया जाये या विरोध, और कि सर्वहारा अधिनायकत्व का समर्थन किया जाये या विरोध.....।"

(ऑन ख्रुश्चोव्स फोनी कम्युनिज्म ऐण्ड इट् स हिस्टॉरिकल लेसन्स फॉर द वर्ल्ड)

यही वह दृढ़ अवस्थिति थी जिसे माओ के नेतृत्व चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने में मार्क्सवाद को विकृत और भ्रष्ट करने वाले उन क्रांति के गद्दारों के खिलाफ अख्तियार किया था जो सन 1950 के दशक के अन्त में सोवियत संघ की सत्ता पर फिर से काबिज हो चुके थे। इस घोषणा ने मार्क्सवाद और संशोधनवाद के बीच एक स्पष्ट और अचूक विभाजक रेखा खींच दी।

लेकिन ऐसी विभाजक रेखाओं का क्या महत्व है? क्या इस तरह का संघर्ष, जैसा कि कुछ लोग सोचते है, महज एक बेतुका झगड़ा है जिसे और अधिक महत्वपूर्ण चीजों की खातिर दरकिनार कर देना चाहिए? क्या इसका महत्वपूर्ण प्रभाव उन दशाओं और संघर्षो पर पड़ता है जिनका सामना व्यापक जनसमुदायों को करना पड़ता है? इस लेख में मार्क्सवाद और संशोधनवाद के बीच इन्हीं विभाजक रेखाओं के सवाल पर विचार किया जायेगा और ऐसा करते हुए बात को इस पर केन्द्रित किया जायेगा कि "मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सार" यानी सर्वहारा क्रांति और सर्वहारा अधिनायकत्व वस्तुतः है क्या।

लेकिन पहले, संशोधनवाद की एक संक्षिप्त परिभाषा। संशोधनवाद मार्क्सवाद के नाम पर मार्क्सवाद का विरोध है। इसका सबसे पहले उदय 19वीं शताब्दी के अन्त में तब हुआ जब मार्क्स बहुतेरे देशों में समाजवाद का दावा करने वाली सभी दूसरी विचारधाराओं को पूरी तरह शिकस्त दे चुके थे। यह विचारधारा उस निम्न बुर्जुआ वर्ग -- यानी किसानों के मध्यमवर्गीय संस्तरों, छोटे किसानों, छोटे-छोटे व्यवसाइयों, शिल्पियों, अध्यापकों, बुद्धिजीवियों, आदि -- के बीच से उत्पन्न हुई थीं जो बुर्जुआ वर्ग के शासन में अपने को दबा-कुचला महसूस करता था और उससे घृणा भी करता था, लेकिन इसी के साथ-साथ वह इसके एकमात्र वास्तविक विकल्प -- मजदूर वर्ग के शासन -- का भी उतना ही विरोधी था।

अपनी इस "बीच-बीच वाली" अवस्थिति को प्रतिबिम्बित करती हुई ये मध्यवर्ती शक्तियों किसी भी तरह से वर्ग-संघर्ष और पूंजीवादी अराजकता से मुक्त एक ऐसे समाजवाद का सपना देखती थीं, जिसमें "विवेकशील लोग कामों का संचालन करेंगे"। लेकिन व्यवहार में, जैसा कि हम आगे देखेंगे, ऐसा सपना – एक विचारधारात्मक और राजनीतिक लाइन में घनीभूत होकर – अपरिहार्यतः बुर्जुआ वर्ग के ही पक्ष में जाकर समाप्त हो जाता है।

बहुतेरे देशों में इन विविध प्रवृत्तियों के ऊपर मार्क्सवाद की विजय हो जाने के बाद इन प्रवृत्तियों ने एक नया रूप अख्तियार किया : इसने मार्क्सवाद का समर्थक होने का दावा तो किया पर कुछ "संशोधनों" के साथ, जिन्हें इसलिए जरूरी बताया गया कि कुछ ऐसे नये विकास हो चुके थे जिनका मार्क्स ने पूर्वानुमान नहीं किया था।

अतः इस प्रवृत्ति को "संशोधनवाद" कहा गया। संशोधनवाद चाहे जिस किसी भी विशेष किस्म का हो – और इस विकृति की कई किस्में हैं भी –-लेकिन एक बिन्दु पर खासतौर से सहमत

होता है : सर्वहारा क्रांति और सर्वहारा अधिनायकत्व का विरोध करने में।

सर्वहारा क्रांति - मार्क्सवाद का बुनियादी सिद्धान्त

लेनिन ने 1919 में एक व्याख्यान में किसी भी और प्रत्येक प्रकार की राज्य मशीनरी की प्रकृति को स्पष्ट तौर पर और सरल ढंग से रेखांकित कियाः ''यदि आप राज्य को इस बुनियादी विभाजन के दृष्टिकोण से देखें, तो आप पायेंगे कि समाज के वर्गों में विभाजन से पूर्व, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं , किसी भी राज्य का कोई अस्तित्व नहीं था। लेकिन जैसे ही सामाजिक विभाजन शुरू हुआ और बद्धमूल हो गया --- तब से हमेशा ही यह एक ऐसा उपकरण रहा है जो समाज से परे अवस्थित होता रहा है और इसका गठन ऐसे लोगों के समूह द्वारा किया जाता रहा है जो पूरी तरह से, या लगभग पूरी तरह से, या मुख्य रूप से शासन करने में लगे रहे हैं....। यह उपकरण यानी लोगों का यह समूह, जो दूसरों पर शासन करता है, हमेशा ही अपने पास बलपूर्वक कार्रवाई के यानी भौतिक शक्ति के, कुछ निश्चित साधन रखता है। इससे उसके इस चरित्र में कोई फर्क नहीं पड़ता कि लोगों के ऊपर उसकी यह हिंसा आदिम पिटाई के डण्डे के रूप में अभिव्यक्त होती है, या दासता के युग के अपेक्षाकृत अधिक कुशल प्रकार के हथियारों के रूप में, या मध्य युग में विकसित आग्नेयास्त्रों के रूप में, या अन्ततः उन आधुनिक हथियारों के रूप में, जो इस बीसवीं सदी के तकनीकी चमतकार हैं और जो आधुनिक तकनोलॉजी की नवीनतम उपलब्धियों पर आधारित हैं''। *(''द स्टेट'', कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 29, पृ० 477)*।

माओ त्से-तुंग ने इसका और भी सारगर्भित ढंग से समाहार किया है : ''राजनीतिक सत्ता बन्दूक की नली से पैदा होती है।''

और जब शोषक वर्ग शासन करता है तो ये बन्दूकें सिर्फ एक ही दिशा में तानी जाती हैं: उत्पीड़ितों और शोषितों की दिशा में। हड़तालों के खिलाफ अदालती निषेधाज्ञाएं और पुलिसिया हिंसा रोजमर्रा की कार्रवाई बन जाती हैं, जनता द्वारा किये जाने वाले प्रदर्शनों पर पुलिस हिंसा का प्रयोग करती है, खासतौर से परिवर्तन की लड़ाई लड़ने वाले काले और अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं के लोगों पर विशेष तौर से बर्बर आतंक का कहर बरपा किया जाता है, और बेशक इस सारे कारनामों में क्रांतिकारियों की धरपकड़ करने, उनका दमन करने और सीधे उनकी हत्या कर डालने के लिए राज्य मशीनरी का ही प्रयोग किया जाता है ।

बेशक बुर्जुआ राज्य अपने भीतर के झगड़ों को हल करने का एक गौण कार्य भी करता है, और जब तब अदालतों और यहां तक कि सेना का भी सहारा लेता है। परन्तु ऐसे मामले बहुत कम ही होते हैं, और ये कोई ऐसे मामले होते भी नहीं कि ''निष्पक्ष राज्य ऐसे क्षुद्र मामलों को कोई तरजीह दे'' – इन्हें तो बुर्जुआ वर्ग और उनके संशोधनवादी रंगरूट ही निपटा लेते हैं। उदाहरण के तौर पर, कुछेक प्रतीकात्मक मामलों में स्कूलों में रंगभेद के खिलाफ जारी अदालती आदेश के अनुपालन के नाम पर दक्षिण में संघीय सेनाओं का इस्तेमाल जरूर किया गया, परन्तु यह भी एक नीति के तहत ही किया गया जिस पर बुर्जुआ वर्ग के प्रमुख धड़ों की सहमति थी, जिसका मकसद यह था कि एक तरफ तो उत्पीड़ित राष्ट्रों पर अपनी अन्तरराष्ट्रीय पकड़ कायम कर लेने में बेहतर ढंग से समर्थ होने के लिए अमेरिका की छवि को साफ-सुथरा बनाया जाये, और इसी के साथ-साथ दूसरी तरफ यह भी किया जाये कि उस वक्त काले लोगों का संघर्ष जो एक अभूतपूर्व प्रचण्ड शक्ति के साथ उठ खड़ा होने लगा था – उसे इस ढंग से एक ''स्वीकार्य'' रास्ते पर मोड़ दिया जाये कि वे सुधारों के लिए संघर्ष करते हुए मौजूदा बुर्जुआ वर्ग और उसकी राज्यसत्ता पर यकीन करें।

प्रत्येक शोषणकारी समाज में राज्य अपने आप को वर्गोपरि रूप में और विभिन्न वर्ग हितों के प्रति एक निष्पक्ष निर्णयकर्ता के रूप में पेश करता है। परन्तु पहले वर्ग समाजों के विकास के साथ अपने जन्मकाल से ही, राज्य हमेशा ही प्रभुत्वशाली वर्ग के हाथ में दमन का एक उपकरण ही रहा है।

और सच तो यह है कि राज्य स्वयं विभिन्न शोषणकारी वर्गों के बीच भी कोई अन्तिम सुलह सपाटा नहीं कर सकताः गौरतलब है कि प्रत्येक यूरोपीय देश में बुर्जुआ वर्ग राज्यसत्ता पर काबिज केवल तभी हो सका जब उसने पुराने सामंती राजशाहियों के खिलाफ हथियार उठाया और उनके स्थान पर किसी न किसी प्रकार का बुर्जुआ गणराज्य स्थापित किया।

चूंकि राज्य अपनी प्रकृति में ही वर्ग-दमन के एक उपकरण के रूप में होता है, और उसका आन्तरिक सम्बन्ध उसको स्थापित करने वाले शासक वर्ग के साथ होता है, इसीलिए इन्हीं कारणों से हिंसक क्रांति सर्वहारा वर्ग की एक आवश्यकता बन जाती है। जिन्हें इस बात पर शक हो, उन्हें यह जान लेना चाहिए कि अमेरिकी शासक वर्ग हिन्दचीन में रोंगटे खड़े कर देने वाला अमानुषिक युद्ध छेड़कर, केण्ट राज्य, एट्टिका और तमाम दूसरी जगहों में निहत्थे प्रदर्शनकारियों का कत्लेआम करके, जाइरे से लेकर चिली और कोरिया तक अपने कठपुतले कसाइयों का समर्थन करके, तथा क्रांति के लिये वास्तव में कार्य कर रहे समूहों का बेतरह दमन करके, अपनी इस प्रकृति का प्रदर्शन भी कर चुका है। सीधी बात तो यह है कि जो शासक वर्ग इस देश के गैर क्रांतिकारी समयों में गैर क्रांतिकारी समूहों के खिलाफ भी अपने कुत्ते छोड़ने से नहीं हिचकता, और जो दूसरे देशों में भी क्रांति की आग बुझा देने की गरज से सारी दुनिया में कवायद करता रहता है, वह भला शांति की बात कैसे मान सकता है, जबकि उसका पूरा अस्तित्व ही दांव पर लगा हुआ हो।

फिर भी संशोधनवाद की एक अभिलाक्षणिक विशेषता यह है कि यह इस या उस रूप में बस यही दावा करता रहता है। संशोधनवादी इस मायने में खासतौर से एकमत हैं, और इससे भी अधिक उल्लेखनीय तौर पर, इस मायने में बहुत दिमागदार है कि वे बुर्जुआ जनतंत्र में ऐसे-ऐसे सद्गुण ढूंढ लेते हैं जो अबतक अज्ञात ही रहे हैं।

उदाहरण के तौर पर, अमेरिकी ''कम्युनिस्ट'' पार्टी जैसे संशोधनवादी इस बात पर जोर देते हैं कि अमेरिकी बुर्जुआ वर्ग और उसकी राज्य मशीनरी को एक समझदार और संवेदनशील धड़े तथा एक चरम दक्षिणपंथी धड़े के रूप में विभाजित किया जाये। हां, वे शायद यह भी कहने पर राजी हो सकते हैं कि मजदूर वर्ग को स्वतंत्र कार्यवाही करनी चाहिए, परन्तु.. .. चूंकि राबर्ट कैनेडी, रीगन या कार्टर की अपेक्षा ''उत्पीड़ितों की आवश्यकताओं के प्रति कहीं अधिक संवेदनशील'' है, इसलिए उसके पीछे कतारबद्ध हो जाना चाहिए। सी.पी.यू. एस.ए. (अमेरिकी ''कम्युनिस्ट'' पार्टी) एक नकली ''क्रान्तिकारी'' रणनीति उन रणकौशलात्मक मतभेदों के आधार पर तैयार करती है जो कैनेडी और उसकी अनुयायी शक्तियों तथा बुर्जुआ वर्ग के दूसरे धड़ों के बीच बन सकते हैं। और इससे भी अधिक अजब बात तो यह है कि वह इससे भी आगे बढ़कर डा. जेकिल और मि. हाईड की उस पुरानी लीक पर चली जाती है जिस पर बुर्जुआ वर्ग के पास हमेशा ही उत्पीड़ित वर्ग के लिए कम से कम एक नकली प्रवक्ता जरूर मौजूद रहता है। सी.पी.यू.एस.ए. यह सब कुछ सर्वहारा को बुर्जुआ गधों का दुमछल्ला बना डालने के लिए करती है – और वह भी कम्युनिज्म के नाम पर।

और हिंसक क्रान्ति के बारे में उसका क्या

ख्याल है? सी.पी.यू.एस.ए. एक ऐसे "इजारेदारी विरोधी गठबंधन" के चुनाव का सपना देखती है जो सत्तारूढ़ होने पर साम्राज्यवाद को गैरकानूनी करार कर देने के लिए संविधान संशोधन करने पर स्वयं ही मजबूर हो जाये। बेशक वह एक ऐसे "संशोधन" के प्रति बुर्जुआ विरोध की संभावना का भी जिक्र करती है, परन्तु उसके बाद झटपट यह भी कह डालती है कि "आज की दुनिया में शक्तियों का एक ऐसा गठबंधन कायम करने की सम्भावना मौजूद है जो इजारेदार पूंजी को जनता की इच्छा को खून के दरिया में डुबो देने का प्रयास करने से रोक सके" *(देखें, सीपीयूएसए का नया कार्यक्रम, 1970)*।

बेशक ऐसी पागल कल्पना को मजाक में लिया जा सकता था, अगर यह जनता के बीच सचमुच भ्रम न फैलाती और अगर यह स्वयं ही पहले सबसे उल्लेखनीय रूप से चिली में, "जनता की इच्छा को खून के दरिया में डुबो देने" का उदाहरण न बन चुकी होती। चिली की संशोधनवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने मतदान के जरिये वहां समाजवाद -- एक ऐसा समाजवाद लाने का वायदा किया था, जो बुर्जुआ सेना को ध्वस्त करना तो दूर, उसे निःशस्त्र किये बगैर ही ला दिया जाना था। वस्तुतः इसी कारण से चिली की कम्युनिस्ट पार्टी ने जनता को ही पूरी तरह से निहत्था कर दिया ताकि वह सेना को उत्तेजित न करे। यह एक ऐसा अभियान था जिसके चलते कुछ ही दिनों में एक खूनी सैनिक तख्ता पलट हो गया, जिसमें 30,000 लोगों को कत्ल कर दिया गया। इस कार्यनीति के ये ही विनाशकारी नतीजे होते हैं, और यही इस कार्यनीति की प्रकृति भी है।

साफ बात है कि बुर्जुआ वर्ग की सत्ता को ध्वस्त करने का और कोई रास्ता ही नहीं है, सिवाय इसके कि बलपूर्वक उसकी बुर्जुआ राज्य मशीनरी को चकनाचूर कर डाला जाये, उसकी सेना को भीतर से तोड़-फोड़ डाला जाये और उसी के साथ-साथ उसे (और पुलिस बलों को भी) नेस्तनाबूद कर दिया जाये, और शोषकों को उनके अधिनायकत्व के शस्त्रागार के एक-एक हथियार से वंचित कर दिया जाये। परन्तु संशोधनवादी इस समझदारी का विरोध इस उम्मीद में करते हैं कि वे इस बुर्जुआ ढांचे के भीतर ही सत्ता के सिंहासन पर एक सुरक्षित कोना पा लेने की गरज से जनता और उसके संघर्ष को एक उत्तोलक शक्ति के रूप में इस्तेमाल कर लेंगे। और इसी उद्देश्य के तहत वे ऐसे सपने और भ्रम फैलाते रहते हैं जो सर्वहारा को किसी दूसरे के खेल में बस एक तुच्छ टुकड़े के लिए सौदेबाजी करने वाले के रूप में तब्दील कर दें।

सर्वहारा का अधिनायकत्व

जब क्रान्तिकारी परिस्थितियां इस रूप में परिपक्व हो जायें कि सर्वहारा वर्ग क्रान्ति करने में जनसमुदायों का नेतृत्व कर सके, तब वह सशस्त्र जनविद्रोह छेड़ देता है। मजदूर वर्ग का पहला उद्देश्य अनेक कुंजीभूत क्षेत्रों में बुर्जुआ सत्ता को तोड़ डालना होता है। फिर तो राजनीतिक सत्ता का निर्धारण करने के लिए जो अपरिहार्य गृहयुद्ध उठ खड़ा होता है, उससे निपटने के लिए वह एक सेना खड़ी करता है। (यह मॉडल मुख्यतः विकसित पूंजीवादी देशों में लागू होता है – इसके तमाम महत्वपूर्ण रूप से संशोधित रूप, जिसकी चर्चा इस आलेख में नहीं की जायेगी, साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीड़ित अर्द्ध औपनिवेशिक और अर्द्ध सामन्ती देशों में अपनाये जाते हैं। लेकिन इनमें सर्वहारा क्रान्ति और अधिकनायकत्व की जो सशस्त्र प्रकृति है वह सभी देशों में एक समान होती है।)

बुर्जुआ राज्य को ध्वस्त कर सर्वहारा अपनी राज्यसत्ता -- सर्वहारा अधिनायकत्व स्थापित करता है। यह सर्वहारा अधिनायकत्व उन सभी पिछली राज्यसत्ताओं से भिन्न होता है जिनमें शोषकों की एक छोटी सी संख्या बहुसंख्यक जनता पर शासन करती है, परन्तु इसी पर पर्दा डालती रहती है। चूंकि सर्वहारा राज्य अल्पसंख्यक पर बहुसंख्यक का अधिनायकत्व होता है, अर्थात पूर्ववर्ती शोषितों का एक समय के उनके मालिकों पर अधिनायकत्व होता है, इसलिए इसे अपनी इस कार्यवाही को छिपाने या गलत ढंग से पेश करने की कोई जरूरत नहीं होती।

लेकिन इससे भी कहीं अधिक अन्तर सर्वहारा अधिनायकत्व के उद्देश्य और लक्ष्य का है। सर्वहारा राज्य स्वयं अपने ही खात्मे के लिए कार्य करता है – अर्थात उस दिन के लिए आधार तैयार करने का कार्य, जब मानवजाति को किसी भी राज्य की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी, क्योंकि तब वर्ग विभाजन की अवस्था समाप्त हो चुकी होगी।

इसीलिए समाजवाद एक संक्रमणकालीन अवधि है, जिसमें सर्वहारा का ऐतिहासिक कार्यभार केवल सत्ताच्युत तथा अभी भी मौजूद और उद्धत रूप से प्रतिरोध कर रहे बुर्जुआ वर्ग पर शासन करना ही नहीं होता, बल्कि कदम-ब-कदम सारी असमानताओं और वर्ग विभेदों को खत्म करते जाना, पूंजीवाद की अभिलाक्षणिकता के तौर पर "नम्बर एक बन जाने" की सारी ललकभरी सोच और संस्कृति को जड़मूल से उखाड़ फेंकना, और उस नये बुर्जुआ वर्ग को जो पूंजीवाद के पिछड़े अवशेषों से निरन्तर पैदा होता रहता है – निरन्तर उखाड़ फेंकते और दमित करते जाना भी होता है।

सर्वहारा अपने अधिनायकत्व का प्रयोग समाज को तबतक सांगोपांग बदलते रहने के सचेत संघर्ष में करता है जबतक कि वह पूरे विश्व स्तर पर विकसित होकर साम्यवाद की अवस्था में न पहुंच जाये, जहां, मार्क्स के शब्दों में "व्यक्ति का श्रम विभाजन के अन्तर्गत अधीनीकरण, और इसी के साथ मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच का अन्तरविरोध भी समाप्त हो चुका होगा....... श्रम केवल जीवन का साधन ही नहीं बल्कि एक प्रमुख आवश्यकता भी बन चुका होगा.......(और) उत्पादक शक्तियां भी व्यक्ति के सर्वतोमुखी विकास के साथ विकसित हो चुकी होंगी, और सहकारी सम्पदा के सारे स्रोत कहीं अधिक प्रचुरता के साथ प्रवाहित हो रहे होंगे।" *(गोथा कार्यक्रम की आलोचना)*

सर्वहारा शासन का संशोधनवादी विरोध

संशोधनवाद जो सशस्त्र क्रान्ति का विरोध करने में माहिर है, स्वाभाविक तौर पर उसके परिणाम सर्वहारा अधिनायकत्व का भी विरोध करता है। काउत्स्की जो लेनिन का विरोध करने वाला सबसे पहला संशोधनवादी था, "सर्वहारा अधिनायकत्व" के उद्‌गार को या तो मार्क्स और एंगेल्स की जबान से हुई दुर्भाग्यपूर्ण भूल कहकर सीधे खारिज करता था, अथवा इसे अपने शब्दों, इस ढंग से प्रस्तुत करता था कि यह एक "शीर्षस्थ राजशाही" से युक्त ब्रिटिश बुर्जुआ जनतंत्र से बिल्कुल भिन्न न लगे।

वैसे तो सी.पी.यू.एस.ए. इस उद्‌गार की अपने पूरे कार्यक्रम में कहीं भी चर्चा न करके इस सवाल से ही बचने की कोशिश करती है। लेकिन वह "समाजवाद" की अपनी धारणा से तनिक भी विचलित नहीं होती, जैसाकि इसके चेयरमैन और राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार गस हाल ने 1976 में राष्ट्रीय टेलीविजन पर वायदा किया कि यदि वह चुन लिया जाये तो वह निश्चित तौर पर एक रिपब्लिकन वर्चस्व वाली कांग्रेस के साथ कार्य करेगा।

खुश्चेव, जिसने 1956 में सोवियत संघ में संशोधनवादी तख्तापलट किया, केवल इतना ही नहीं चाहता था कि काउत्स्की की भांति मार्क्स और एंगेल्स के नामों को भुनाये, बल्कि वह अपने आपको लेनिन के लबादे से ढंक लेना भी चाहता था। इस प्रकार खुश्चेव ने यह तो माना कि सर्वहारा अधिनायकत्व अतीत में आवश्यक

रहा होगा परन्तु यह भी कहा कि अब 1956 आते-आते ऐसी चीज स्पष्टतः कालातीत हो चुकी थी। इसकी जगह उसने ''सम्पूर्ण जनता का राज्य'' का नारा दिया, कारण कि, उसके दावे के अनुसार, अब सोवियत संघ में शत्रुतापूर्ण वर्गों और वर्ग संघर्ष का अस्तित्व नहीं रह गया था। वस्तुतः यह ''जनता के और जनता के लिए'' राज्य के उस बुर्जुआ मिथक से कतई भिन्न नहीं है, जो उसके द्वारा जनता पर निर्मम प्रभुत्व के ऊपर पर्दा डाल देता है।

ख्रुश्चेव की इस कपटपूर्ण विकृति को माओ त्से-तुङ ने पूरी तरह ध्वस्त कर दिया, और अत्यन्त विश्वसनीय ढंग से यह सिद्ध किया कि वर्ग और वर्ग संघर्ष समाजवाद के पूरे ऐतिहासिक काल तक बरकरार रहते हैं और कि राज्य – जबतक इसका पूरी तरह खात्मा न हो जाये – मार्क्स के शब्दों में, *''सर्वहारा के क्रान्तिकारी अधिनायकत्व के अलावा और कुछ नहीं''* हो सकता। ख्रुश्चेव की चाल, खासतौर से पूंजीवादी पुनर्स्थापना हेतु, एक ऐसे नये बुर्जुआ वर्ग की कार्रवाई थी, जो संशोधनवाद को अपने विचारधारात्मक और राजनीतिक आवरण के रूप में इस्तेमाल करता है। यह बुर्जुआ वर्ग पार्टी के सबसे ऊंचे सोपानों पर काबिज हो जाता है और समाजवादी राज्य को एक ऐसे ''राजकीय पूंजीवाद'' के रूप में तब्दील कर डालता है जिसके अन्तर्गत राज्य उत्पादन के साधनों का स्वामी बन जाता है – लेकिन इसमें यह नया एलीट (विशिष्ट) वर्ग ही राज्य का नियंत्रण करता है, और इसका इस्तेमाल करके मजदूर वर्ग से अधिशेष (सरप्लस) को चूसते रहने का काम ठीक वैसे ही करता है जैसे सभी बुर्जुआ वर्ग करते हैं।

माओ ने इस सम्बन्ध में जो खोज की वह मार्क्सवाद के इतिहास में एक महान ऐतिहासिक घटना थी। बेशक लेनिन समाजवाद के अन्तर्गत वर्ग-संघर्ष की दीर्घकालीन प्रकृति को पहचान चुके थे, और उन्होंने नवजात सोवियत राज्य में ही विकसित हो रही नौकरशाही की समस्या से जूझना शुरू कर दिया था। लेकिन लेनिन सर्वहारा शासन के मात्र कुछ ही वर्षों तक जीवित रहे। फिर भी उन्होंने किसानों के व्यक्तिगत उत्पादन को पूंजीवादी पुनर्स्थापना के मुख्य आधार के रूप में चिन्हित करना शुरू कर दिया था। लेनिन के बाद स्तालिन ने प्रथम समाजवादी राज्य की हिफाजत की और ढेर सारे महान योगदान किये, लेकिन इन सबके बावजूद वह समाजवाद के अन्तर्गत वर्गसंघर्ष की प्रकृति को ठीक से समझ पाने में असफल रहे और इसीलिए इस मामले में उनसे कुछ गम्भीर गलतियां भी हुई।

सोवियत संघ में पूंजीवादी पुनर्स्थापना और स्तालिन की गलतियों से सबक लेते हुए और अपने आपको मार्क्स और लेनिन (जिन्होंने समाजवाद को ''नवजात साम्यवाद और मरणशील पूंजीवाद के बीच संघर्ष की अवधि'' के रूप में निरूपित किया था) पर आधारित करते हुए, माओ ने स्पष्ट किया कि मार्क्स द्वारा गिनाये गये बुर्जुआ अवशिष्ट प्रभाव -- जैसे मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच अन्तर, मजदूरों और किसानों के बीच अन्तरविरोध, तमाम दूसरी असमानताएं, व्यक्तिगत उत्पादन का बरकरार रहना और इन सारे अवशेषों द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले पिछड़े विचार ही वह जमीन थी जिस पर नया बुर्जुआ वर्ग पैदा और विकसित हुआ था।

अतः सर्वहारा के लिए आवश्यक है कि वह नये बुर्जुआ वर्गों के खिलाफ निरन्तर संघर्ष करे और उन्हें उखाड़ फेंके, और साथ ही इस संघर्ष के जरिये समाजवादी रूपान्तरण करते हुए ''उनकी जमीन'' भी खोद डाले। यदि ऐसा न किया गया तो पूंजीवादी पुनर्स्थापना अवश्यंभावी है।

ऐसा क्यों होता है कि यह नया बुर्जुआ वर्ग पार्टी के ऊंचे स्तरों पर अपनी पकड़ बना लेता है? इसका कारण यह है कि समाजवाद के अन्तर्गत पार्टी और उसके सदस्य, जो इसके पूर्व सत्ताहीनों की हिमायत में पूर्ववर्ती सत्ता के कोपभाजन बनते रहते थे, अब रातोंरात न सिर्फ सत्ताधारी बन चुके होते हैं बल्कि उत्पादन के साधनों पर भी काबिज हो चुके होते हैं। बस इसी के बाद एक नयी यथास्थितिवादी प्रवृत्ति हावी हो जाने की दिशा में जोर मारने लगती है जिसका मकसद पहले तो मजदूर वर्ग के स्थान पर और फिर बहुत जल्द ही ठीक उसी के ऊपर शासन करना होता है, बजाय इसके कि समाजवाद के अन्तर्गत दुनिया को बदलने और क्रान्ति को आगे बढ़ाने के लिए जनसमुदायों को उन्मुक्त करते जाने की क्रान्तिकारी भूमिका को जारी रखा जाये।

और खासतौर से, जब वास्तव में भ्रष्टाचार और अधःपतन होने लगता है, तब बुर्जुआ वर्ग इसी परिघटना को नज़ीर बनाकर यह कहने लगता है कि ''सत्ता तो भ्रष्ट बनाती ही है'', अथवा यह कि ''बड़े लोग तो हमेशा ही रहेंगे।'' तब इसी दृष्टिकोण को और आगे बढ़ाते हुए कहा जाने लगता है कि चीजों को बदलने की कोशिश करने से कोई फायदा नहीं। संशोधनवादी इसी को इस सवाल के रूप में रखता है कि क्या सामान्य जन सत्ता के शीर्ष पर आसीन होकर जनता की कोई सेवा कर सकते हैं। लेकिन इसके विपरीत, माओ ने स्पष्ट किया कि (यह बुर्जुआ दृष्टिकोण है और) पार्टी में बुर्जुआ वर्ग की उपस्थिति समाज के भौतिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास के वर्तमान स्तर में ही निहित है – और कि उसकी प्रकृति को निश्चित तौर पर समझा जा सकता है, उसकी साजिशों को नाकाम किया जा सकता है, और उसके अस्तित्व को अन्ततः संघर्ष के जरिये ही समाप्त किया जा सकता है।

माओ ने सिर्फ पार्टी में बुर्जुआ वर्ग की उपस्थिति का ही दावा नहीं किया, बल्कि उन्होंने उसके भौतिक आधार को भी स्पष्ट किया, और उससे संघर्ष करने के उपाय विकसित करने में नेतृत्वकारी भूमिका अदा की, जिसका सर्वोत्तम उदाहरण महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में प्रस्तुत किया जा चुका है। चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति वास्तव में ''सर्वहारा के अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति की निरन्तरता'' ही थी क्योंकि इसी ने नये बुर्जुआ वर्ग द्वारा हड़पी जा चुकी सत्ता को पुनः वापस छीन लेने और इस प्रकार समाजवादी चीन को, साम्यवाद की दिशा में, और अधिक रूपान्तरित करने की दिशा में संघर्ष करने के लिए लाखों-करोड़ों चीनियों को प्रोत्साहित किया। इस प्रक्रिया के जरिये सत्ता के विविध क्षेत्रों में पैठे ''पूंजीवादी पथगामियों'' (जैसाकि उन्हें कहा गया) के विरुद्ध जनसमुदायों ने संघर्ष किया, और इसी के साथ इन बुर्जुआ तत्वों द्वारा समर्थित लाइन (जो वस्तुतः संशोधनवाद ही है) का अध्ययन करने और उसकी आलोचना करते हुए, उन्होंने जिस किसी भी संस्था को लक्ष्य बनाया – उसी को रूपान्तरित करते हुए संघर्ष को और सुदृढ़ बनाया। इस प्रकार यह संघर्ष एक सच्चे वर्गविहीन समाज की दिशा में सर्वहारा की अधिकाधिक प्रगति के लिए और सुसंगत होता गया।

सांस्कृतिक क्रान्ति की आवश्यकता को तो एक अर्थ में लेनिन की अन्तर्दृष्टि ने ही अनुमानित कर लिया था, जो इस रूप में अभिव्यक्त हुई थी कि ''हमारा उद्देश्य समूची गरीब आबादी को प्रशासन के व्यावहारिक कार्य में खींच लाना है और इस दिशा में जो भी कदम उठाये जायें वे जितने ही विविध हों, उतना ही बेहतर होगा, और उन्हें सावधानीपूर्वक नोट करना चाहिए, उनका अध्ययन करना चाहिए, उन्हें क्रमबद्ध करना चाहिए, तथा व्यापकतर अनुभव के आधार पर उनकी जांच-परख करके उन्हें नियम में शुमार कर लेना चाहिए। हमारा उद्देश्य यह सनिश्चित करना है कि प्रत्येक मेहनतकश व्यक्ति, उत्पादक श्रम के रूप में अपना 8 घण्टे का ''काम'' पूरा कर लेने के बाद, बिना वेतन

(शेष पृष्ठ 68 पर)

'बहनो, कामरेडो!' : पुस्तक की विचारोत्तेजक सारवस्तु का एक परिचय

• हेल्गा मॉस

सिस्टर्स-कामरेड्स : केर्स्ती एरिक्सन
Forlaget Oktober
Radhusgt 4, Boks 296 Sentrum
O103 Oslo 1 NORWAY

इस पुस्तक में लेखिका ने पूंजीवादी और साम्राज्यवादी आर्थिक व्यवस्था को अपना प्रस्थान बिन्दु बनाते हुए, बहुतेरे उदाहरणों से तथा तीखे हास्यपूर्ण व्यंग्य का विशिष्ट पुट देते हुए यह दिखाया है कि किस प्रकार इस व्यवस्था के अन्तर्गत अर्थतंत्र में, संस्थाओं में और हमारी भावनाओं में स्त्रियों का उत्पीड़न रचा-बसा हुआ है।

लेखिका केर्स्ती एरिक्सन नार्वे की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी, डब्ल्यू. सी.पी. (एम. एल.) की अध्यक्ष रही हैं। वह एक मनोवैज्ञानिक और कवयित्री हैं, शादीशुदा हैं और दो बच्चों की मां हैं और नारी मुक्ति आन्दोलन की अगली कतारों में सक्रिय हैं। एक कम्युनिस्ट पार्टी की अध्यक्ष के रूप में उनके द्वारा स्त्री-विमुक्ति के प्रश्न पर लिखी गई इस पुस्तक का विशेष महत्व है। उनका आर्थिक कोण एक नई दृष्टि देता है और सिर्फ रैडिकल झुकाव वाली स्त्रियों के लिए ही नहीं, बल्कि सबके लिए, स्त्रियों की स्थिति को समझने-बदलने का एक उपयोगी नजरिया प्रस्तुत करता है।

सुश्री एरिक्सन समाजवाद के अन्तर्गत स्त्रियों के प्रश्न पर भी विचार करती हैं तथा निकट और न-अति-दूर भविष्य के लिए कुछ नये परिप्रेक्ष्य, नये सपने और अपने अनुभव के कोष से वर्तमान के लिए कुछ बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत करती हैं।

इस बार हम इस पुस्तक की विषय-वस्तु का परिचय देते हुए इसकी भूमिका का एक अंश प्रस्तुत कर रहे हैं जो हेल्गा मॉस ने लिखी है।

- सम्पादक

●

यह पुस्तक यह साबित करने का प्रयास करती है कि आज दुनिया पर पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के नाम से जिस आर्थिक प्रणाली का प्रभुत्व है, वह महिलाओं के लिए एक भारी आपदा है। यह उनके श्रम और जीवन रस का एक-एक कतरा निचोड़ लेती है, उन्हें एक लाचारी की दशा में कैद कर डालती है, और इंसान के रूप में एकदम लुंजपुंज बना देती है। पुस्तक यह भी सिद्ध करने का प्रयास करती है कि इस मौजूदा प्रणाली को उखाड़ फेंकने और उसकी जगह एक नयी और बेहतर प्रणाली कायम करने के संघर्ष में महिलाओं का संघर्ष एक प्रचण्ड शक्ति है। अतः जरूरत इस बात की है कि स्त्री-पुरुष दोनों ही, जो इस दुनिया को उबारना चाहते हैं, इस सच्चाई को आत्मसात करें। इसके लिए जरूरी है कि हम यह समझें कि हमें लड़ना है, और यह जानना भी जरूरी है कि कैसे लड़ें। इसके लिए हमारे पास एक रणनीति का होना आवश्यक है। यह पुस्तक इन्हीं सब बातों के बारे में कुछ बताने का प्रयास करती है।

मैं स्वयं क्लासिकीय मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट परम्परा से जुड़ी हुई हूं। इस परम्परा में महिलाओं के संघर्ष और महिलाओं की मुक्ति के सम्बन्ध में अच्छी और बुरी दोनों ही बातें पायी जा सकती हैं। इस पुस्तक का एक अभिप्राय यह भी है कि महिलाओं के संघर्ष के बारे में कम्युनिस्ट परम्परा के दृष्टिकोण को और विकसित और परिवर्तित किया जाये।

नारी मुक्ति संघर्ष इतना सर्वसमावेशी है कि आप चकित-विस्मित हो सकते हैं। वस्तुतः कोई ऐसा सवाल नहीं जो लिंग निरपेक्ष हो। नारी उत्पीड़न पूंजीवाद के आर्थिक आधार, उसकी प्रणाली में ही पिरोया हुआ है, जिसकी बदौलत बुर्जुआ वर्ग शासन करता है, और यहां तक कि यह लोगों के सबसे अन्तरंग सम्बन्धों में भी रचा-बसा हुआ है। इसीलिए नारी का संघर्ष पूरी तरह एक सीमाबद्ध सवाल नहीं हो सकता। हमें समाज के सभी विश्लेषणों और उसको बदलने के सभी प्रयासों में महिलाओं को शामिल करना ही होगा।

यह पुस्तक सांगोपांग सैद्धान्तिक अध्ययनों के आधार पर नहीं लिखी गयी है, और न ही यह पूंजीवाद के अर्न्तगत नारी उत्पीड़न के बारे में कोई एक पूर्ण सिद्धान्त पेश करने का दावा करती है। इसमें जिन सवालों के जवाब देने की कोशिश की गयी है वे प्रथमतः और प्रधानतः वे ही सवाल हैं जो व्यावहारिक संघर्ष में उठते रहे हैं जिसमें स्वयं मैंने और अन्य महिलाओं ने भी, भाग लिया है। रोज-रोज के संघर्ष में अन्तरविरोध और समस्यायें पैदा होती ही रहती हैं। और आगे बढ़ने के लिए इनका समाधान आवश्यक हो जाता है। यह पुस्तक नारी प्रश्न पर एक बहस के दौरान हुए विचार-विमर्श तथा रोजमर्रा के संघर्ष की प्रक्रिया और अनुभवों का समाहार प्रस्तुत करती है।

पुस्तक तीन खण्डों में है :

खण्ड 1 (पांच अध्याय) : इस बारे में है कि कैसे नारी उत्पीड़न पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली और पूंजीवादी सत्ता संरचना में पिरोया हुआ है : कैसे पूंजीवाद नारी श्रमशक्ति के नारीपन को उत्पादन से अतिरिक्त मुनाफा कमाने के लिए इस्तेमाल करता है। कैसे पूंजीवाद में गृहस्थी के खर्च को कम बनाये रखने की गरज से महिलाओं के घरेलू श्रम की कोई कीमत न चुकाकर उनका शोषण किया जाता है। कैसे पूंजीपति वर्ग एक ऐसी सुरक्षित व्यवस्था किये रहता है जिसमें साधारण पुरुष भी अपनी स्त्री पर शासन चलाता है। कैसे परिवार एक ऐसी संस्था के रूप में कार्य करता है जिसके तहत महिलाएं तरह-तरह के बंधनों से, एक उत्पीड़न की दशा में, जकड़ दी जाती हैं। कैसे साम्राज्यवाद तीसरी दुनिया की महिला किसानों की कड़ी मेहनत और गरीबी से फायदा उठाता है।

खण्ड 2 (तीन अध्याय): कब कैसे संघर्ष किया जाये: वर्ग संघर्ष और नारी संघर्ष के बीच रिश्ते का निरूपण कैसे करें। इसकी मुकम्मल व्यवस्था कैसे की जाये कि नारी आन्दोलन स्वयं ही प्रकारान्तर से ऐसी महिलाओं का दमन न करने लगे जो गोरी नस्ल की नहीं हैं, जो बहुसंख्यक राष्ट्रीयताओं से सम्बन्धित नहीं हैं, जो इतरलिंगी नहीं हैं, या जो एक गोरी नस्ल के पुरुष के साथ विवाहित या ऐसे पुरुष और बच्चों के साथ नहीं रह रही हैं। हम कैसे संगठित हों कि संघर्ष करते हुए विजय हासिल कर सकें।

खण्ड 3 (2 अध्याय) : हमें समाजवाद के अन्तर्गत क्या करना होगा। जब पूंजीवाद उखाड़ फेंका जाये तो अगले चरण में नारी मुक्ति का संघर्ष चालू कर देना होगा। इस चरण में भी, हमें एक सचेत रणनीति बनानी होगी। बेशक आज इस रणनीति पर सोचना एक बुद्धिविलास ही होगा, परन्तु कुछ सवाल तो उठाये ही जा सकते हैं और मैंने ऐसी कोशिश की भी है। यह एक ही साथ कई मोर्चों पर संघर्ष होगा। हमें अर्थव्यवस्था को बदलना होगा, समाज के संगठन को बदलना होगा। और अन्तिम बात जो तनिक भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, यह है कि हमें लोगों के दिलों को बदलना होगा।

आज नारी को एक संकल्पबद्ध आवेग की आवश्यकता है। और हमारी धरती

को नारी के इसी संकल्पबद्ध आवेग की आवश्यकता है। मुझे उम्मीद है कि यह पुस्तक किसी हद तक ऐसा आवेग और ऐसी संकल्पबद्धता पैदा करने में मदद करेगी।

1. ''नारी व्यक्तित्व'' : उजरती मजदूर के रूप में

मजदूर औरतें मजदूरी और परिवार के बीच पिसती रहती है। प्रत्येक युग में उनका जीवन बस इसी तथ्य से अभिचिन्हित होता आया है कि वे सिर्फ मजदूर ही नहीं, बल्कि दमित औरत के रूप में भी होती हैं। नारी व्यक्तित्व की सामाजिक विशिष्टताएं यह सम्भव बनाती हैं कि पुरुषों की अपेक्षा उन्हें अधिक इतर ढंग से इस्तेमाल कर लिया जाये।

महिलाएं क्यों कम मजदूरी वाले कामों में ही केन्द्रित हैं? सिर्फ यही सच नहीं है कि वे अधिक योग्यता के कामों से वंचित रखी जाती हैं, बल्कि यह भी सच है कि वे इसीलिए अयोग्य मान ली जाती हैं कि वे महिलाएं हैं। ऐसा लगता है जैसे महिलाओं की योग्यताएं *प्राकृतिक* हुआ करती हैं।

महिला श्रमशक्ति का मूल्य पुरुष के मुकाबले कम रखा जाता है। यह समाज की लिंगभेदी प्रणाली का ही एक पहलू है। मार्क्स के अनुसार किसी माल का मूल्य उसके उत्पादन में लगे श्रम द्वारा निर्धारित होता है। लेकिन श्रमशक्ति के इस मूल्य में भी एक ऐतिहासिक और नैतिक तत्व, अर्थात एक निश्चित ऐतिहासिक मानदण्ड निहित है जो जीवन की आवश्यकताओं का निर्धारक है। इसी में हमें महिला और पुरुष की श्रम शक्ति के मूल्य के अन्तर के कारणों को खोजना होगा।

पूंजीवाद एक ऐसे समाज से विकसित हुआ है जिसमें महिलाओं का उत्पीड़न पहले ही से स्थापित रहा है। उसमें महिलाओं और पुरुषों के बीच सत्ता सम्बन्ध, अन्य बातों के साथ-साथ, संसाधनों की उपलब्धता और उन पर नियंत्रण के रूप में अभिव्यक्त होता रहा है। इस सत्ता सम्बन्ध को पूंजीपतियों ने महिलाओं और पुरुषों की श्रमशक्ति के अन्तर के रूप में **तब्दील कर दिया।** इससे महिलाओं का शोषण और भी बढ़ गया।

महिलाओं की श्रमशक्ति के मूल्य को प्रभावित करने वाला दूसरा कारक है समाज का परिवारों में संगठन। इस श्रमशक्ति के मूल्य में मजदूरों की एक नयी पीढ़ी तैयार करना शामिल है और इसीलिए इसमें वे सारी चीजें शामिल है जो परिवार के भरण-पोषण के लिए आवश्यक होती हैं। इसमें यह बात निहित है कि यदि इस मूल्य के लिए परिवार के एक से अधिक सदस्य काम करें तो प्रत्येक की उजरत कम हो जायेगी। परन्तु महिलाओं को ही कम उजरत मिलती है जो वस्तुतः इस मौजूदा सामाजिक ढांचे को ही प्रतिबिम्बित करती है जिसके अन्तर्गत पुरुष प्रमुख श्रमशक्ति और स्त्री अनुपूरक श्रमशक्ति मानी जाती है।

लड़कियों के रूप में महिलाओं का और भी अधिक शोषण किया जा सकता है तथा उनसे और भी कड़ी मशक्कत करायी जा सकती है, क्यों कि चूंकि *वे लड़कियां होती हैं जिनकी आगे चलकर शादी हो जायेगी* और तब उनकी श्रमशक्ति तेजी से घट जायेगी। इसी तरह बाल बच्चों वाली महिलाओं से भी कहीं अधिक कड़ी मशक्कत करायी जा सकती है। क्योंकि वे अंशकालिक तौर पर ही कार्य कर पाती हैं और उनका कार्य दिवस भी अपेक्षाकृत छोटा होता है। महिलाएं श्रमशक्ति के बढ़ते लचीलेपन की भी शिकार हैं, जो आधुनिक पूंजीवाद का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसके अतिरिक्त, वे और भी अधिक शोषण की शिकार बनायी जा सकती हैं, क्योंकि उन पर अनुशासन के ऐसे तरीके आजमाये जा सकते हैं जो मजदूर पुरुषों पर नहीं आजमाये जा सकते।

2. पूंजीवाद और घरेलू श्रम

इस अध्याय में महिलाओं के घरेलू श्रम पर बहस के विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार-विमर्श किया गया है।

घरेलू श्रम पर बहस की समस्या एक हद तक तो इस तथ्य की समझदारी के अभाव के कारण है कि पूंजीवादी माल उत्पादन ही पूंजीवादी समाज में उत्पादन का एकमात्र रूप नहीं है, और कि उजरती मजदूरी ही श्रमकार्य का एकमात्र रूप नहीं है। वस्तुतः पूंजीवाद उत्पादन के अन्य रूपों के साथ सहजीविता में रहता है और उन्हें अपने हित में इस्तेमाल करता है। पूंजी के लिए घरेलू श्रम का आर्थिक लाभ, मुख्यतः इस तथ्य में निहित है कि घरेलू श्रम पूंजीवादी माल उत्पादन के दायरे से बाहर रहता है। यह चीज सबसे स्पष्ट रूप से तीसरी दुनिया के *जीवन-निर्वाह उत्पादन* के रूप में देखी जा सकती है।

इसका जो विभ्रम है वह कइयों को इस रूप में दिखायी देता है : यदि हम मार्क्सवादी धारणाओं को हूबहू और अक्षरशः लागू करें, तब तो यह घरेलू श्रम आंख से ओझल ही रहता है। अतः इस गैर उजरती घरेलू श्रम को दृष्टि की पकड़ में लाने के लिए जरूरी है कि मार्क्सवादी अवधारणाओं का पहले से कुछ अधिक अर्थ विस्तार किया जाये।

जब एक पत्नी श्रम बाजार में प्रवेश करती है तो दो प्रवृत्तियां दिखायी देती हैं : एक यह कि श्रमशक्ति का मूल्य, पत्नी के रूप में मुफ्त काम करने से नहीं, बल्कि श्रम बाजार में अधिक से अधिक उत्पाद और सेवाएं खरीद सकने की क्षमता हासिल करते जाने की बदौलत बढ़ता है। लेकिन दूसरी जो मुख्य प्रवृत्ति है, वह यह है कि जब परिवार के कई सदस्य श्रम बाजार में प्रवेश कर जाते हैं तो श्रम शक्ति का मूल्य घट जाता है।

घरेलू श्रम, एक तरफ *मजदूर वर्गीय परिवार की उत्पादन लागत* को कम करता है और दूसरी तरफ, पूंजीपति की उजरती लागत को काफी कम कर देता है। घरेलू श्रम पूंजीवादी उत्पादन की एक बुनियादी शर्त है जो मुनाफे को बढ़ाते रहने में मदद करता है। यही मुख्य बात है जो घरेलू श्रम को एक आर्थिक प्रणाली के रूप में पूंजीवाद के अन्तर्गत औचित्य प्रदान करती है और इससे मूल्य की मार्क्सवादी अवधारणा भी खण्डित नहीं होती।

घरेलू श्रम, श्रम-शक्ति के मूल्य को कम करने के अलावा, पूंजी के लिए यह सुभीता भी प्रदान करता है कि बिना कुछ खास खर्च किये हमेशा एक आरक्षित श्रम-शक्ति तैयार रहे। महिलाओं का गैर उजरती श्रम बेरोजगारी के भयानक प्रभावों को कम करने में सहायक होता है। आधुनिक पूंजीवाद एक ऐसा सुविधाजनक समझौतावादी इंतजाम कर लेने में कामयाब है कि महिलाएं उजरती मजदूरों के रूप में शोषित होती रहें, घरेलू श्रम की आपूर्ति करती रहें और एक लचीली आरक्षित श्रम-शक्ति के रूप में तैयार बनी रहें।

चूंकि घरेलू श्रम, समय और स्थान दोनों ही के लिहाज से पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया से पृथक होता है, अन्य संस्थागत रूपों में सम्पन्न होता है, और एक दूसरे ही तर्क के अधीन होता है, इसलिए पूंजी के पुनरुत्पादन में इसका आर्थिक महत्व छिप सा जाता है। इस प्रकार, घरेलू श्रम एक महिला का ऐसा कार्य प्रतीत होता है जो मानो पूंजीपति के लिए नहीं, बल्कि स्नेह और सम्बन्धों के नाते, अपने निजी दायरे में, अपने परिवार के लिए किया जाता है।

पूंजी को घरेलू श्रम की आवश्यकता इसलिए भी पड़ती है कि *नारी व्यक्तित्व* के बार-बार सृजित होते रहने की सुनिश्चितता बनी रहे। वस्तुतः अपने परिवार के प्रति यह स्त्रियोचित चिन्ता उसके स्वयं के लिए नहीं, बल्कि दूसरे की आवश्यकताओं को लेकर होती है।

3. बुर्जुआ वर्ग तभी शासन करता है जब एक पुरुष भी थोड़ा शासन करता है

महिला उत्पीड़न मेहनतकश अवाम के पुरुष समुदाय को बुर्जुआ वर्ग के शासकीय व्यवहार के अन्तर्गत ला देता है। साधारण पुरुष भी शासकों की ओर से प्रभुत्व का आंशिक भोग कर लेता है। महिलाओं का उत्पीड़न सारे पुरुषों को कुछ तथ्यात्मक वस्तुगत लाभ प्रदान करता है। लड़के अपने जन्म से ही भौतिक और गैर भौतिक संसाधनों का एक बड़ा हिस्सा पाने लगते हैं।

लेकिन इसी के साथ मेहनतकश अवाम के पुरुष समुदाय वर्ग- उत्पीड़न के शिकार भी होते हैं। इसीलिए कुल मिलाकर यह उनके हित में है कि वे बुर्जुआ शासन को उखाड़ फेंकने के लिए अपने महिला वर्ग-मित्रों के साथ संयुक्त हों। लेकिन जिनको कोई उत्पीड़ित करता होता है, उनके साथ संयुक्त होना बहुत कठिन है, क्योंकि उन्हें योग्य साथी के रूप में समझना और उनके साथ संश्रय बनाना बड़ा कठिन है, और इस कठिनाई का एक कारण यह भी है कि इस संश्रय में पुरुष को अपने विशेषाधिकार अंशतः खो देने पड़ेंगे। महिलाओं का उत्पीड़न मजदूर वर्ग की महिलाओं के जागृत होने में कठिनाई उपस्थित करता है और इससे पुरुषों को भी जागृत होने में कठिनाई होती है, क्योंकि पुरुष तो अपनी ऊर्जा अपने महिला वर्ग-मित्रों के दमन-उत्पीड़न में खर्च करते हैं।

जब पुरुष अपनी पुरुषोचित गरिमा की भावनाओं को महिलाओं के उत्पीड़न से जोड़ लेता है, तो इसका मतलब यह है कि वह जनता के प्रति बुर्जुआ वर्ग के मूल्यों और दृष्टिकोण को ही अपना लेता है, और तब वह पूंजीवाद द्वारा जनता के अधःपतन और उत्पीड़न को पूरी तरह देख पाने की क्षमता खो बैठता है।

इसके बाद लेखिका नार्वे के ट्रेड यूनियन आन्दोलन के कुछ ऐतिहासिक उदाहरण देकर महिलाओं और पुरुषों के बीच विभाजन के दुखद परिणामों का विवरण देती हैं।

(अनुवादक की टिप्पणी : नार्वे का ट्रेड यूनियन आन्दोलन एक बड़े छत्रप (अम्ब्रेला) संगठन के प्रभुत्व में रहा है, और है। देश की अधिकतर ट्रेड यूनियनें भी इसी के प्रभुत्व में है। इस संगठन को **'लैण्डस्**

आर्गनाइजेशन' के संक्षिप्त नाम, एल.ओ. से जाना जाता है। इस पर सामाजिक जनवादियों का प्रभुत्व है।)

एल.ओ. का नेतृत्व पुरुषोचित वर्चस्व बनाये रखने और उसे ही आगे बढ़ाने में अपनी जो विशिष्ट भूमिका अदा करता है, उसे ठीक से समझे बिना कोई भी व्यक्ति संगठित महिला आन्दोलन और ट्रेड यूनियन आंदोलन के आधारों को एक दूसरे के निकट लाने का काम नहीं कर सकता, जबकि यह मजदूर वर्ग और महिलाओं दोनों ही के लिए भारी महत्व का है।

महिलाओं को एक दोयम दर्जे के समूह में स्टीरियोटाइप करने के खतरनाक नतीजे यह होते हैं कि इससे सामाजिक दुराव पैदा हो जाता है, एकीकरण नहीं हो पाता, और नये-नये हमलों के रास्ते खुल जाते हैं। इस पर पुरुषों की भूमिका को लेकर बहस में प्रगतिशील पुरुषों द्वारा प्रकट की जाने वाली चिन्ता उस भारी उद्‌गम स्रोत को दर्शाती है जिसमें पुरुषोचित महत्व और सामर्थ्य निहित है। अश्लील चित्रण महिलाओं को अधीन बनाये रखने के पुरुषोचित स्वप्न का ही एक उदाहरण है। एक दूसरा उदाहरण एमीरी बराकास के मैडहार्ट सिने चित्रण में देखा जा सकता है।

4. चौराहा जहां सारे रास्ते आकर मिलते है

उत्पीड़न को बनाये रखने में परिवार की अहम भूमिका होती है। इसका यह मतलब नहीं कि हम बस परिवार को ही खत्म कर दें, और इस प्रकार सारे जंजाल से ही मुक्ति पा लें। बल्कि कहने का मतलब यह है कि परिवार ही समाज में उन क्रियाविधानों की रचना करता है जिनके जरिये महिलाओं का उत्पीड़न होता है और ये परिवार ही उन्हें प्यार पर आधारित एक स्वैच्छिक सहमेल की विचारधारा के आवरण तले ढंक देते हैं।

परिवार प्रथमतः और प्रधानतः एक आर्थिक इकाई है, हालांकि यह बात एक आवरण में ढंकी होती है। पूंजीवाद के लिए परिवार कई मायनों में उपयोगी होता है : श्रमशक्ति के आवश्यक पुनरुत्पादन में ; उसकी, जो कि पूंजी की दृष्टि से *सामाजिक कचरा* ही है - देखभाल करना और एक ऐसी आन्तरिक पचाउ भूमिका निभाना कि महिलाओं का गैर उजरती कार्य, उजरतों की कटौती और बेरोजगारी के प्रभाव शून्यवत होते रहें।

पिछले वर्षों में नार्वे में या अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर परिवार के ढांचों में बदलाव आये हैं, उनसे भी घरेलू कार्यों की गुंजाइश का सिद्धान्त खण्डित नहीं हो गया है। उल्टे सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आ गया है कि अब महिलाएं इस तरहँ की ज्यादा से ज्यादा जिम्मेदारियां अकेले ही निभाने लगी हैं। यद्यपि परिवार के भीतर लिंगों के बीच सत्ता-सम्बन्ध में भी परिवर्तन आया है, परन्तु इसका मतलब कतई यह नहीं है कि पुरुष अब *परिवार का मुखिया* नहीं रह गया है। बल्कि हुआ यह है कि इस तथ्य पर अब पहले से कहीं अधिक पर्दा पड़ गया है और यह एक ऐसे *समझौते* का अंग बन गया है जिसके तहत अब महिलाएं स्वयं ही ऐसा व्यवहार जताने लगी हैं कि उनकी सापेक्षिक अधीनता समानता के रूप में प्रतीत हो।

परिवार के विकास का अभिप्राय यह रहा है कि इस संस्था को अधिकाधिक भावनात्मक कार्य सौंपे जाते रहें। यह महज एक ढकी-छिपी विचारधारा के रूप में नहीं, बल्कि सचमुच ऐसे ही विकसित हुआ है। पृथक्कृत, निजीकृत परिवार से यह आशा की जाती है कि वह हमारी उस आवश्यकता को पूरा करे जो मानवीय सम्बन्धों के लिए उपयोगी है। इसके कुछ अच्छे विकल्प हैं। परिवार में रहना भयानक हो सकता है, लेकिन इसके बिना तो यह और भयानक हो सकता है। अनुसंधानों से पता चलता है कि जब परिवार के रिश्ते भंग हो जाते हैं तो प्रायः पुरुष ही सबसे अधिक दुख झेलते हैं। यह इस बात का सूचक है कि पुरुषों की सारी *सामर्थ्य* महिलाओं के कंधों पर ही टिकी है। पुरुषों और स्त्रियों की मनोवृत्तियों में जो अन्तर है वह समाजीकरण का परिणाम है और उससे भी यही पता चलता है कि स्त्रियों की आवश्यकताएं और अभिलाषाएं पुरुषों से सम्बन्ध जोड़कर बहुत कठिनाई से ही पूरी हो सकती हैं।

वस्तुतः परिवार जिन्दा ही इस कारण है कि महिलाएं अपने आपको *कुर्बान* करती रहती हैं और आधे-अधूरे इंसान के रूप में जीवन गुजारती हैं। परिवार ही एक ऐसी संस्था है जिसमें सत्ता बहुत व्यवस्थित ढंग से स्वैच्छिकता और प्यार के आवरण में लागू होती है। परिवार-चिकित्सक अक्सर यही सोचते हैं कि परिवार एक ऐसी चीज है जिसे मानो *स्वयं प्रकृति* ने पैदा किया हो। लेकिन अन्ततः उन्हें इस बात की भी जानकारी हो ही चुकी है कि परिवार में पत्नी को पीटने और कौटुम्बिक व्यभिचार की भी घटनाएं होती रहती हैं। तब उनका काम यह होता है कि वे चिकित्सकीय आधार पर ऐसे उपचार करें कि उनके मुवक्किल परिवार *''सामान्य ढंग से''* आचरण-व्यवहार करें।

5. साम्राज्यवाद और महिलाएं

साम्राज्यवाद ने तीसरी दुनिया पर एक ऐसे **''विकास का मॉडल''** थोप दिया है जो साम्राज्यवाद के आर्थिक हितों की सेवा करता है। और पुरुष सत्ता से संयुक्त होकर यह साम्राज्यवाद जानलेवा बन चुका है।

यहां लेखिका एक अध्याय में घाना, सूडान और मोरक्को से उदाहरण लेकर जीवन-निर्वाह क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं की स्थिति का विवरण देती हैं। निष्कर्ष के तौर पर उनका कहना है कि :

जीवन-निर्वाह क्षेत्र श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के खर्च को कम करने में सहायक होता है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के बाहर के उत्पादकों का साम्राज्यवाद द्वारा किया जाने वाला वीभत्स शोषण निखालिस तौर पर महिलाओं को महिला समझकर ही किया जाने वाला शोषण है।

अनौपचारिक क्षेत्र को लेकर जो अध्याय है उसमें मेक्सिको, निकारागुआ और भारत के उदाहरण दिये गये हैं।

दुनिया की महिला आबादी जिन कारणों के चलते असुविधाजनक काम के घण्टों के साथ, निम्न उजरत वाली अंशकालिक मजदूर बना दी जाती है, उन्हीं कारणों के चलते तीसरी दुनिया में महिलाएं अनौपचारिक क्षेत्र में *''स्वतंत्र व्यवसाय करने वाली महिलाओं''* के रूप में तब्दील कर दी जाती हैं। इस अनौपचारिक क्षेत्र को जीवन निर्वाह क्षेत्र के विविध आधुनिक रूपों में देखा जा सकता है। लेकिन इसका भी योगदान औपचारिक क्षेत्र में उजरतें कम बनाये रखने में ही होता है।

एक अध्याय ''नया सर्वहारा'' नाम से है जिसमें युवा और मुख्यतः महिला श्रमशक्ति का मुक्त व्यापार क्षेत्रों द्वारा किया जाने वाला शोषण वर्णित है।

महिलाओं के साम्राज्यवादी उत्पीड़न का एक खासतौर से भंडुआपन लिया हुआ रूप कुछ ऐसे दक्षिण एशियाई देशों में देखने को मिलता है जिन्हें, यथागुण तथा नाम के अनुसार हम भंडुआ राज्य ही कह सकते हैं।

उत्पीड़न के इन सभी विविध रूपों से निश्चित तौर पर यही नतीजा निकलता है कि साम्राज्यवाद लिंग निरपेक्ष ढंग से काम नहीं करता। और तब इसीलिए साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष भी लिंग निरपेक्ष नहीं हो सकता। *महिलाएं 'विकास के झूले में झूलती', छोड़* नहीं दी गयी हैं, बल्कि वे एक ऐसे ढंग से अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बना दी गयी है कि समस्या का एक पहलू उनसे जुड़ा है और समाधान का एक पहलू साम्राज्यवाद से। जहां तक दुनिया भर की हम महिलाओं का सवाल है, हम महिलाओं का संघर्ष पुरुषों के संघर्ष से कहीं अधिक आमूल परिवर्तनवादी समाधान की मांग करता है। यदि कोई इस बात को ठीक से न समझे, तो उसके लिए व्यवहार में एक सच्चा साम्राज्यवाद विरोधी क्रान्तिकारी बनना कठिन होगा।

6. नारी संघर्ष और वर्ग संघर्ष

मजदूर वर्ग और मेहनतकश जनता की महिलाओं को दोतरफा दबावों का सामना करना पड़ता है। एक तरफ उनके पुरुष *''लिंग संघर्ष को वर्ग संघर्ष से अधिक महत्वपूर्ण बनने देने''* के विरुद्ध चेतावनी देते रहते हैं। दूसरी तरफ बुर्जुआ और उच्चतर निम्न बुर्जुआ महिलाएं उन्हें एक ऐसे नारी संघर्ष में खींच लेना चाहती हैं जिसका वर्ग संघर्ष से कोई नाता नहीं होता। इसका एक उदाहरण *दोमितिलिया* और *बेट् टी फ्रीडन* के विचार-विमर्शों में देखा जा सकता है।

बुर्जुआ महिलाओं के आन्दोलन का एक मात्र उद्देश्य इस पूंजीवादी प्रणाली के ढांचे के भीतर ही लिंगों की समानता प्राप्त करना रहा है, और आज भी है। यद्यपि यह संभव है कि महिलाएं इसके लिए संघर्ष करें, और पूंजीवाद के अन्तर्गत ही कुछ वास्तविक सुधार भी हासिल कर लें, फिर भी इसकी नियति यही है कि महिलाओं के उत्पीड़न का आधार प्रायः नये और अधिक ढंके-छिपे रूप से ही सही लेकिन बना रहेगा। वस्तुतः व्यवहार में एक ऐसे नारी मुक्ति आंदोलन की कल्पना करना ही कठिन है जिसमें दोनों पहलुओं (नारी संघर्ष और वर्ग संघर्ष) के तत्व न हों। जब दबे-कुचले लोग सचमुच उठ खड़े होते हैं तो वे उस पूरी स्थिति के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं जिसके तहत वे सताये गये होते हैं। वे इस आधार पर सोच-विचार नहीं करते कि *''शुद्ध''* नारी संघर्ष क्या है और *''शुद्ध''* वर्ग संघर्ष क्या है, बल्कि इसके बजाय वे उस पूरी जकड़बद्ध वास्तविकता से ही विद्रोह करते हैं जिसमें वे जी रहे होते हैं। आज पूरी दुनिया में मजदूर वर्ग की महिलाओं और मेहनतकश जनता की महिलाओं के आन्दोलन का यही चरित्र है।

नारी संघर्ष के परिप्रेक्ष्य से रहित वर्ग अवस्थिति एक तरह से एक *''समाजवादी औपनिवेशिक नीति''* है।

और जिस तरह एक *''समाजवादी औपनिवेशिक नीति''* साम्राज्यवाद का समर्थन करती है, ठीक उसी तरह नारी संघर्ष से रहित वर्ग अवस्थिति भी पूंजीवादी प्रणाली का समर्थन करती है। यह कहना सही नहीं है कि नारी प्रश्न को अधिक अहमियत देने से मजदूर वर्ग में फूट पड़ जायेगी। बल्कि, इसके विपरीत, सच्चाई यह है कि महिलाओं के हितों को अत्यन्त कम अहमियत देने के चलते ही आज मजदूर वर्ग का संघर्ष बाधित हो रहा है। ट्रेड यूनियन आंदोलन में महिलाओं के हित को अहमियत देने का संघर्ष तथा अश्लीलता और श्रमकार्य के दौरान महिलाओं के यौन शोषण के विरुद्ध संघर्ष मजदूर वर्ग की एकता के लिए जरूरी है, चाहे ये संघर्ष पुरुष साथियों के विरुद्ध क्यों न हों।

मजदूर वर्ग की एकता का ख्याल (जिसके लिए पुरुष ही आधारभूत निर्देश देते हैं) अक्सर सर्वहारा महिलाओं के आन्दोलन को ऐसे संघर्ष के प्रति कुछ नरम ही बनाता रहा है जो, खासतौर से महिलाओं के उत्पीड़न के विरुद्ध रहा है। इसके लिए यह तर्क दिया जाता रहा है कि संघर्ष को *''समाज''* के विरुद्ध निर्देशित करना है, न कि *''पुरुषों''* के विरुद्ध। लेकिन ''पुरुषों'' द्वारा किये जाने वाले उत्पीड़न को अछूता छोड़कर, केवल *''समाज''* या *''उसकी''* *''व्यवस्था''* या *''बुर्जुआ वर्ग''* के ही विरुद्ध संघर्ष करना असम्भव ही होगा। कारण कि पुरुषों द्वारा किया जाने वाला उत्पीड़न पूर्णतया इस लिंगवादी व्यवस्था में ही शामिल है जो इसके वर्गीय एकाधिकार को बनाये रखने में सहायक है।

इन अन्तरविरोधों में से बहुतेरे अभी भी नारी आन्दोलन को जकड़े हुए हैं। इसीलिए यह कोई आकस्मिक घटना नहीं रही है जब *डब्ल्यू.सी.पी. (एम.एल.)* और इस पार्टी के बहुतेरे सदस्यों द्वारा समर्थित, नार्वे के सबसे बड़े *''नये''* महिला संगठन, महिला मोर्चा ने नारी आंदोलन के एक उद्देश्य के तौर पर, एक अन्तरराष्ट्रीय एकजुटता का सबसे मुखर आह्वान किया था। लेकिन ठीक ऐसे ही यह भी कोई आकस्मिक बात नहीं थी कि जब पत्नी को पीटने और बलात्कार जैसे सवालों का मामला आया तो इस महिला मोर्चा ने यह गर्मजोशी नहीं दिखायी।

7. ''स्टीरियोटाइप'' महिला

नार्वे में ''स्टीरियोटाइप'' महिला गोरी, इतरलिंगकामी, विवाहित या किसी मर्द के साथ रहती हुई और बाल-बच्चों वाली होती है।

बेल हुक्स बताती हैं कि कैसे इस तरह की सोच के चलते ही अमेरिकी नारी आंदोलन में काली महिलाएं नहीं दिखायी देतीं।

एक ऐसे सार्वभौमिक बहनापा की धारणा जो *''सारी''* महिलाओं को एकबद्ध कर दे, तबतक विकसित नहीं हो सकती जबतक यह उन महिलाओं की निर्वैयक्तिकता और उत्पीड़न की पीड़ा में विलीन नहीं हो जाती, जो आजकल की स्टीरियोटाइप महिलाओं से मेल नहीं खातीं। अतः महिलाओं के बीच बहनापे को भी यदि एक उत्पीड़न नहीं बनने देना है, तो यह जरूरी है कि इसे विभिन्न महिला समूहों की अलग-अलग विशिष्टताओं के आधार पर ही स्थापित किया जाये।

महिलाकामी महिलाओं (लेसबिअयन्स) के संघर्ष के विरुद्ध अक्सर यह दलील दे दी जाती है : ''तुम महिलाकामी महिलाएं हो''। इस दलील से उस धारणा की भारी पकड़ का अंदाजा लगता है कि ''प्राकृतिक'' यौन प्रेम तथा स्त्री-पुरुष के बीच ''कनिष्ठ''/ ''ज्येष्ठ'' सम्बन्ध साथ-साथ चलते रहें। इस जीहुजूरिया सम्बन्ध पर सवाल तो वही महिला उठा सकती है जो अपने यौन-प्रेम को पुरुषों की दिशा में नहीं निर्देशित करती। नारी आन्दोलन में प्रत्यक्ष शिरकत करने के लिए महिलाकामी महिलाओं के संघर्ष का एक सकारात्मक पहलू यह है कि इसने इतरलिंगकामी महिलाओं को उन घृणित धारणाओं पर गहराई से सोचने के लिए मजबूर कर दिया है जिन्हें वे अभी भी ढोये जा रही हैं।

8. उत्पीड़न से मुक्ति की ओर

भाग 1

एक ऐसा समाज कैसे बने जिसमें महिलाओं का उत्पीड़न न हो?

जब आधुनिक मजदूर वर्ग पैदा हुआ, तो एक वर्ग चेतना भी विकसित हुई जो बेहतर दशाओं और एक भिन्न समाज की स्थापना के लिए संघर्ष की एक भारी शक्ति बनी। अब नार्वे और तीसरी दुनिया दोनों ही में महिला सर्वहाराओं का एक बड़ा वर्ग अस्तित्व में आ चुका है। अब महिलाएं एक सामाजिक शक्ति के रूप में ठीक वैसे ही नहीं देखी जातीं, और न ही वे स्वयं को वैसे देखती हैं, जैसे मजदूर वर्ग का पुरुष समुदाय देखता है। महिलाएं चाहे मजदूर हों या किसान, उनके अनुभव एक दोहरी चेतना के स्रोत बन चुके हैं : मजदूर के रूप में, और साथ ही मां और गृहिणी आदि के रूप में भी। महिलाओं की यही दोहरी चेतना उन्हें पूरी दुनिया के पैमाने पर एकसूत्र में बांधती है, और यही एक बेहतर समाज के लिए संघर्ष की भारी शक्ति है। इसी दोहरी चेतना के चलते संघर्ष में महिलाओं की एक विशिष्ट स्थिति बनती है। उन्हें दो तरह की लड़ाइयां लड़नी हैं।

इन स्थितियों से चल रहे वास्तविक वर्ग संघर्षों, जैसे 6 घण्टे कार्यदिवस के संघर्ष, के लिए महत्वपूर्ण नतीजे निकलते हैं। *''नौकरीपेशा और परिवार के बीच पिसती''* महिलाओं की स्थिति परम्परागत ट्रेड यूनियन कार्यवाही के और विस्तार की मांग करती है तथा और व्यापक संश्रय कायम किये जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। काम के घण्टों को लेकर, न्यूनतम उजरत की गारण्टी को लेकर, तथा सार्वजनिक क्षेत्र में छंटनी, निजीकरण आदि के विरुद्ध संघर्ष में महिलाएं ज्यादा से ज्यादा सफलता हासिल करने के लिए उठ खड़ी हो रही हैं। हम यह भी देखते हैं कि वे इन मामलों में आन्दोलन का नेतृत्व भी कर रही हैं।

पहले मजदूर वर्ग के पास परम्परागत सर्वहारा कोर के रूप में केवल एक ही हरावल हुआ करता था। वे एक नेतृत्वकारी भूमिका केवल इसी कारण अदा करते थे, और आज भी केवल इसी कारण अदा करते हैं कि वे मूल्य पैदा करते हैं, कि वे बड़ी फैक्टरियों में संगठित हैं, और कि वे सुसंगठित हैं और उनके पास संघर्ष की सुदृढ़ परम्पराएं हैं। लेकिन अब कुछ नया घटित हो चुका है। अब मजदूर वर्ग को एक और हरावल मिल गया है। यह हरावल महिला मजदूरों का है, जो अपनी भूमिका इस तथ्य के चलते अदा कर रहा है कि एक उत्पीड़ित लिंग होने के कारण वह समूचे मजदूर वर्ग के लिए बुनियादी महत्व के बहुतेरे संघर्ष छेड़ने को मजबूर है।

महिला कार्यकर्ता पुरुष प्रभुत्व वाले ट्रेड यूनियन आंदोलन में अपने आपको प्रायः विजातीय महसूस करती है। जब वह मजदूर वर्ग के संघर्ष में वास्तव में, अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, तो वस्तुतः उसकी यह भूमिका जितना एक उत्पीड़ित लिंग होने के सामान्य अनुभव से उत्पन्न होती है, उतनी ही उसके मजदूर होने के नाते भी उत्पन्न होती है। आज की समस्या यह है कि महिलाएं मजदूर और महिला की अपनी भूमिकाओं के आधार पर संगठित नहीं हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि वे ट्रेड यूनियन के भीतर महिलाओं के संगठन के निर्माण के लिए संघर्ष करें। लेकिन इतना ही काफी नहीं है। महिलाएं केवल ट्रेड यूनियनों के जरिये ही *''एक वर्ग के रूप में संघटित''* नहीं हो सकतीं। वे अपनी भूमिका के बारे में सचेत केवल तभी हो सकती हैं जब वे महिलाओं की समूची स्थिति के आधार पर महिला संगठन बना लें। महिलाओं का संगठन केवल रोज-रोज के संघर्ष के लिए ही जरूरी नहीं है, बल्कि यह आत्म निर्णय के लिए महिलाओं की योग्यता के विकास के लिए भी जरूरी है।

अश्लीलता के विरुद्ध संघर्ष इस बात का एक दूसरा उदाहरण है कि क्यों महिलाओं का एक विशेष संगठन जरूरी है। अश्लीलता लिंगों के बीच सत्ता सम्बन्ध को बनाये रखने का एक घनीभूत प्रोपेगैण्डा है। हमने नार्वे में अश्लीलता के खिलाफ जो बड़े-बड़े संघर्ष किये हैं, उनसे नारी संघर्ष के दूसरे क्षेत्रों को भी प्रेरणा मिली है, तथा विभिन्न संघर्षों को एक साथ जोड़कर यह दिखाने में मदद मिली है कि कैसे महिलाओं का उत्पीड़न पूरी तरह सुनियोजित है। महिलाओं का एक संकीर्णतावादी ट्रेड यूनियन द्वारा किया गया संगठन इसीलिए महिलाओं के ट्रेड यूनियन संघर्ष को मजबूत बनाने में सक्षम नहीं हो पाता।

सर्वहारा का चरित्र कई ढंग से बदल रहा है। इनमें से एक ढंग ''कोर'' और ''परिधिगत'' श्रम शक्ति का विकास है। इसके चलते ज्यादा से ज्यादा समूह सहायक ठेकेदारों आदि के साथ, अनियमित कार्यदशाओं में, छोटी-छोटी कम्पनियों में कार्य करने लग जाते हैं। इसका एक उदाहरण एक विशाल खरीद-बिक्री केन्द्र *अकेरब्रिग* है (यह ओस्लो में छोटी-छोटी दुकानों का एक नवनिर्मित संकुल है - अनुवादक)। यहां पर लड़कियों को संगठित करने के लिए शायद हमें सर्वथा भिन्न लाइनों पर सोचना पड़ सकता है। क्या ट्रेड यूनियन आन्दोलन इस चुनौती का सामना कर सकता है?

मजदूर वर्ग के दो हरावलों के बीच एक संश्रय कायम करने का मतलब है, मजदूर आन्दोलन में छाये सामाजिक जनवादी एकाधिकार से नाता तोड़ना, और उसके विरुद्ध संघर्ष करना। लेकिन बुनियादी स्तरों पर पुरुष वर्चस्व के खिलाफ भी निश्चित तौर पर संघर्ष करना होगा। दो हरावलों को संयुक्त करने के संघर्ष में, बुनियादी स्तरों की अवस्थितियों को अपने पक्ष में करना एक सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस संघर्ष के लिए परम्परागत कोर - सर्वहारा के भीतर एक ऐसे *''नारी चेतन''* पुरुष की

आवश्यकता है जो सुसंगत ढंग से नारी संघर्ष के समर्थन में, तथा उसके अपने कामरेडों के बीच पुरुषोचित प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष कर सके। लेकिन इस संश्रय के लिए सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह है कि मजदूर महिलाएं स्वयं अपनी सामर्थ्य प्रदर्शित करें और अपनी निर्वैयक्तिक स्थिति से उबरने के लिए संघर्ष करें।

अब तक महिलाओं के संघर्ष के विकास में महिला जीवन के केवल उन्हीं विविध पक्षों का राजनीतिकरण किया जाता रहा है जिन्हें पहले ''व्यक्तिगत'' और ''व्यक्तित्व सम्बन्धी'' समस्याएं माना जाता था, और उन्हीं को सामाजिक सवालों के रूप में लिया जाता था। लेकिन डब्ल्यू. सी. पी. (एम. एल.) द्वारा नारी प्रश्न पर अध्ययन के लिए तैयार किया गया पाठ्यक्रम,-जिसकी सबसे अधिक मांग की जाती रही है,-अपना प्रस्थान बिन्दु यह बनाता है कि महिलाओं के *''व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषकों''* जैसे क्षुद्र आत्म विश्वास, पूर्णतावादी निजी अपेक्षाओं, से सामूहिक सहयोग और सामूहिक कार्य के जरिये ही निपटा जा सकता है। ये कोर्स इस समझदारी के साथ तैयार किये गये हैं कि किसी कार्य में प्रवीणता हासिल करना एक सामूहिक जिम्मेदारी है, और तदनुसार ही इनमें नेतृत्वकारी अभिलाक्षणिकताओं और नेतृत्व के नये और अधिकाधिक सामूहिक वाले तत्व भरे गये हैं।

कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर भी महिलाओं का उत्पीड़न होता है। दूसरे क्षेत्रों की भांति यहां भी ज्ञान और सिद्धान्त पुरुषोचित जीवन और सम्बन्धों से ही अभिचिन्हित हैं। अतः राजनीतिक सिद्धान्त और व्यवहार में महिला परिप्रेक्ष्य समाहित करने के लिए महिलाओं का संघर्ष एक व्यावहारिक राजनीतिक संघर्ष ही है जो दो लिंगों के बीच सत्ता सम्बन्ध और व्यवहार के आदत सम्बन्धी प्रतिरूपों के विरुद्ध है। इसे डब्ल्यू. सी. पी. (एम. एल.) के अनुभवों के आधार पर इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :

पार्टी के भीतर कोई भी हर प्रकार के पुरुष वर्चस्व पा सकता है, लेकिन मुख्य प्रवृत्ति इसके आक्रामक या खुले रूप में प्रकट होने की नहीं है। अतः इस पर महिलाओं की दृष्टि जाये इसके लिए एक कार्यक्रम आवश्यक है। अन्य बातों के साथ-साथ इस धारणा को भी दरकिनार करना होगा कि 'पुरुषों' द्वारा किये जाने वाले उत्पीड़न के विरुद्ध नहीं, बल्कि केवल बाहर ''समाज'' में होने वाले उत्पीड़न के विरुद्ध ही लड़ने की आवश्यकता है। चूंकि बहुतेरी महिलाएं महिला मोर्चा की सदस्य रह चुकी हैं, इसलिए पार्टी में नारी चेतना बाहर से ही आयी है। पार्टी में इस्तेमाल किया जाने वाला मुख्य तरीका लिखित, मौखिक और आंकड़ों के रूप में राजनीतिक दलीलें देना है। पुरुषों को तर्कशील राजनीतिक प्राणी माना जाता है। फिर भी महिला प्रश्न बहुतों के लिए अभी भी ''वास्तविक राजनीति'' नहीं बन पाया है। ऐसा लगता है मानो *''पारंगत''* बने रहने के लिए इसकी बाबत कुछ अधिक जानने की आवश्यकता ही नहीं है। इसका कारण यह है कि इस मामले में पुरुष अपने आपको ही एक दूसरे के लिए पैमाना मान लेते हैं और इस प्रकार ज्यादातर वे समान रूप से मूढ़ होते हैं। यह *''अंध-बिन्दु''* महिला प्रश्न के महत्वपूर्ण बनने में बाधक बनता है और इसे एक सिलसिलेवार संयोगों की श्रृंखला में विलीन कर देता है।

लिंगों के बीच यह अचेतन सामाजिक खेल एक ऐसे ढंग से चलता रहता है कि पुरुष बड़ी आसानी से अपनी धारणाओं के साथ हावी हो जाते हैं और महिलाएं भी इसे इसी रूप में लेती हैं कि बहुत अमित्रवत व्यवहार नहीं है नेतृत्वकारी भूमिका निभाने वाली महिलाएं अक्सर इसी में गच्चा खा जाती हैं। बेशक उन्हें नेता तो माना जाता है परन्तु व्यवहार में उन्हें औरत ही समझा जाता है, और वे भी ऐसा ही समझती हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि लिंगों के बीच व्यवहार के तौर-तरीके को एक राजनीतिक विषयवस्तु के रूप में गठित किया जाये।

कभी-कभी एक दूसरी परिघटना भी तब देखने में आती है जब महिला प्रश्न किसी खास प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता है : अर्थात जब महिला प्रश्न पुरुषों के बीच प्रतिद्वंद्विता का एक रणक्षेत्र बन जाता है।

बेशक एक राजनीतिक मंच के लिए राजनीतिक दलीलों के साथ राजनीतिक संघर्ष करना जरूरी है, परन्तु यह विजय हासिल करने के लिए नाकाफी है। महिलाओं के लिए आवश्यक है कि वे समूहों में भागीदारी करें और आगे बढ़ने के लिए अपनी महिला मित्रता को एक औजार के रूप में इस्तेमाल करें। सबसे अच्छी दलीलें वे होती हैं, जो व्यावहारिक होती हैं और जो व्यावहारिक राजनीतिक कार्य में अपनी सामर्थ्य प्रदर्शित करती हैं। डब्ल्यू सी पी में महिलाएं कई औपचारिक पदों पर हैं -- जिले और केन्द्र के नेतृत्वकारी पदों पर तथा केन्द्रीय कमेटी में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के रूप में भी। लेकिन औपचारिक पद ही सत्ता के पर्याय नहीं हैं। इस पर सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि अपना प्रतिपक्ष रखने के लिए हम एक अच्छी शुरुआत की स्थिति में हैं।

9. उत्पीड़न से मुक्ति की ओर

भाग 2

समाजवादी देश अपने वायदे के अनुसार महिलाओं के उत्पीड़न के सवाल को क्यों नहीं हल कर सके? क्या इसका मतलब यह है कि हम चाहे जो भी सामाजिक व्यवस्था कायम कर लें, उससे इस स्थिति में कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है? समाजवादी व्यवस्थाओं में अबतक हम यही देखते आये हैं कि मजदूर वर्ग की ओर से पार्टी और राज्य की नौकरशाही ही शासन करती रही है, और योजनाओं के आधार के तौर पर *''जनता की आवश्यकताओं''* का निर्धारण भी उन्हीं के जिम्मे रहा है। निश्चय ही समाजवाद को या तो एक समझौते के रूप में या अन्तरविरोधों के बीच एक संघर्ष के रूप में लेना होगा। इसका कार्यभार शारीरिक-बौद्धिक, मजदूर-विशेषज्ञ और शासक-शासित के बीच के विभाजन को खत्म करना है। यह एक लम्बी प्रक्रिया है, जिसमें उठाये जाने वाले सबसे महत्वपूर्ण आरम्भिक कदमों में से, निश्चित तौर पर एक कदम होना चाहिए कि काम के घण्टे कम किये जायें। इसी से राजनीतिक जीवन में जनता की भागीदारी करने का आधार निर्मित होगा। बेशक राजनीतिक संघर्ष महत्वपूर्ण है, लेकिन जो चीजें, अपने आप निपट जाती हैं वे आमतौर पर गलत ढंग से ही निपटती हैं।

महिलाओं के उत्पीड़न के बरकरार रहते वर्ग उत्पीड़न का खात्मा नहीं किया जा सकता। लिंग के अनुसार श्रम का विभाजन महिलाओं को मुख्यतः शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरों और शासितों की ही कोटि में डालता रहता है। जब तक महिलाएं दोहरा कार्य करती रहेंगी और परिवार की सेवा में लगी रहेंगी तबतक श्रम विभाजन का उन्मूलन अकल्पनीय ही है। बल्कि इसके विपरीत महिलाओं का उत्पीड़न वर्ग विभाजनों को सुरक्षित ही बनाता रहेगा।

एंगेल्स ने *''परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति''* में यह दिखाने का प्रयास किया है कि महिलाओं का उत्पीड़न वर्ग समाज का एक अविभाज्य अंग है। उस समय की समस्या यह थी कि महिलाओं के संघर्ष को निजी सम्पत्ति, वर्गों और राज्य के खात्मे के लिए एक चालक शक्ति के रूप में नहीं लिया जाता था। इसके बजाय महिलाओं की मुक्ति को ज्यादातर दूसरे संघर्षों के परिणाम के रूप में ही लिया जाता था। समाजवादी देशों में भी महिला प्रश्न पर एक सिद्धान्त विकसित करने के बजाय निजी सम्पत्ति, वर्गों और राज्य के खात्मे पर ही अधिक जोर दिया जाता रहा है। इसमें प्रवृत्ति यह रही है कि महिलाओं के संघर्ष को और स्वयं महिलाओं को भी समाजवादी निर्माण के औजारों में तब्दील कर दिया जाये : इस तरह महिलाएं *''आर्थिक प्राणी''* बना दी गयीं। महिलाओं को बड़े पैमाने पर उद्योगों में काम पर लगाया तो जाता रहा पर उनके ऊपर घर-परिवार का बोझ भी यथावत बना रहा। और स्तालिन काल में तो एक कठोर परिवार-कानून और इस विचारधारात्मक महत्व की वापसी ही कर दी गयी कि परिवार समाज की एक बुनियादी इकाई है, जो स्पष्ट तौर पर एंगेल्स के चिन्तन की दिशा से एक अन्तरविरोध ही था।

समाजवादी देशों में महिलाओं की आर्थिक और राजनीतिक भागीदारी के अनुपातों में एक भारी विषमता रही है। महिला संगठनों को पार्टी के समर्थकों के रूप में लिया जाता था, न कि महिलाओं के ऐसे संघर्ष करने वाले संगठनों के रूप में जिससे महिलाओं को ताकत और सत्ता दोनों ही प्राप्त हों। यह बात चीन और निकारागुआ में अभी भी लागू है।

एक आर्थिक मॉडल जो महिलाओं का हितसाधन करने वाला हो, निश्चित तौर पर उत्पादक (अति तकनोलाजीकीय) होना चाहिए और उसका सार्वजनिक क्षेत्र भी बड़ा होना चाहिए (मुफ्त या सस्ता)। इसमें स्त्री और पुरुष के काम में कोई भेद नहीं होना चाहिए। इसमें अल्पकालिक आधार पर उजरतें समान होनी चाहिए और दीर्घकालिक आधार पर तो उजरती श्रम का ही खात्मा हो जाना चाहिए। इसमें पूंजीवादी अवरचनागत ढांचे (इन्फ्रास्ट्रक्चर) के *''सार्वजनिक''* और *''निजी''* विभाजन को निश्चित तौर पर खत्म किया जाना चाहिए और रोजमर्रा के जीवन के लिए आवश्यक तकनोलाजी का अवश्य विकास किया जाना चाहिए।

परिवार के विकल्प के तौर पर कर्मीदल और शहरी एकाकीपन से रहित संस्थाएं कोई नारकीय संस्थाएं नहीं होंगी। लेकिन ऐसा सहजीवन कौन सा रूप लेगा -- अभी यह बताना कठिन है। परिवार एक सामाजिक या एक

आर्थिक इकाई के रूप में तबतक समाप्त नहीं होगा जबतक हम ऐसे विकल्प नहीं खोज लेंगे जो हमारे अनुभव में बेहतर लगें। बहरहाल, एक विकसित समाजवादी समाज की प्रत्येक क्षेत्र में पहचान यही होगी कि इसमें *''हिसाब-किताब के रूप में कार्यवाही''* कम और *''क्रियाशीलता के रूप में कार्यवाही''* अधिक होगी।

समाजवाद के अन्तर्गत अपने लक्ष्य हासिल करने के लिए महिलाओं का कैसे संगठित होना आवश्यक होगा?

हमारे पास आर्थिक विकास तथा सामाजिक संस्थाओं, लिंगों की भूमिकाओं आदि के रूपान्तरण के लक्ष्य हासिल करने के लिए निश्चय ही एक *कार्यक्रम* होने चाहिए, जिसमें यह विश्लेषण करने की भी आव श्यकता होगी कि कम्युनिस्ट पार्टी (जो पिछले अनुभवों के विपरीत, एक शासक पार्टी होने के बजाय वर्ग-संघर्ष में नेतृत्वकारी भूमिका ही अधिक निभायेगी) के भीतर, एक मजबूत और स्वतंत्र ट्रेड यूनियन आन्दोलन में तथा औपचारिक रूप से निर्वाचित नियंत्रणकारी निकायों में किन *''नेतृत्वकारी स्तरों''* पर अपनी महत्वपूर्ण अवस्थितियां हासिल करनी हैं। और भी दूसरी महत्वपूर्ण स्थितियों योजना आयोगों में, सेना में, मीडिया में तथा अनुसन्धान और शिक्षा में है, जिन्हें हासिल करना आवश्यक होगा।

10. लोगों का हृदय परिवर्तन करने के लिए संघर्ष

यदि हमें लोगों के बीच नये सम्बन्ध बनाने के लिए संघर्ष करना है, तो हमें सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि कैसे यह समाज महिलाओं और पुरुषों दोनों को ''स्त्रीत्व'' और ''पुरुषत्व'' में बांधे रखता है।

पूंजीवाद की लिंगवादी प्रणाली में पुरुषों और महिलाओं के ''हृदयों'' के लिए क्या संदेश निहित है? स्त्रियों और पुरुषों की यौन भूमिकाओं के बुर्जुआ प्रवर्तक के रूप में **रूसो** ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। हमें यहां उसके रोमाण्टिक और भावनात्मक रूप से उन्मुक्तकारी आदर्शों तथा उन उत्पीड़नकारी दशाओं के बीच एक अन्तरविरोधी और तनावपूर्ण सम्बन्ध ही देखने को मिलता है, जिनके अन्तर्गत ये आदर्श चरितार्थ होने वाले थे। स्वैच्छिकता और बल प्रयोग के बीच का यह अन्तरविरोध इस बुर्जुआ समाज के बहुतेरे क्षेत्रों में देखा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, मजदूर और पूंजीपति के बीच का *''स्वैच्छिक''* समझौता।

सत्ता और प्रेम का यह अन्तरबंधन सत्ता-संघर्ष को लैंगिक रणक्षेत्र में ला उपस्थित करता है और इस तरह लैंगिकता में दोनों लिंगों का पृथक्करण कर देता है। बेशक एक अशक्तता की स्थिति में यह महिलाओं के लिए शक्ति का एक स्रोत बन सकता है। रति-क्रीड़ा में महिलाएं ''सच्चे प्रेम'' के बदले लैंगिकता का विनिमय करती हैं, जबकि पुरुष लैंगिकता के बदले ''सच्चे प्रेम'' का विनिमय करते हैं। इस रोशनी में यह समझना बहुत आसान है कि महिलाकामी महिलाएं (लेज़बिअन्स) और समलिंगी ''स्थापित व्यवस्था'' के लिए एक खतरा बनते हैं।

रूसो अपने आपको लैंगिक भूमिकाओं के एक अग्रदूत के रूप में भी प्रस्तुत करता है जब वह यह कहता है कि सोफी को अवश्य ही ''पुरुषों के हृदयों को पढ़ना'' चाहिए। पुरुषों और स्त्रियों के नैतिक बोध सम्बन्धी अनुसंधानों से पता चलता है कि महिलाएं प्रायः इस बात पर सोचती रहती हैं कि किसी किये गये कृत्य के क्या परिणाम किन्हीं विशिष्ट लोगों पर और लोगों के बीच के सम्बन्धों पर पड़ सकते हैं, जबकि पुरुष गलत और सही के अमूर्त सिद्धान्तों को ही ज्यादा तरजीह देते हैं।

''कड़ियल औरत, भावशून्य मां'' और ''शहीद, शिकार'' जैसे स्टीरियोटाइप महिला विशेषकों के पीछे हम दो प्रकार की स्त्रियोचित रणनीतियों की झलक पा सकते हैं। एक स्त्रियोचित भूमिका के प्रति कमोबेश खुले प्रतिरोध का प्रदर्शन करती है, जबकि दूसरी स्त्रियोचित भूमिका को अप्रत्यक्ष सत्ता के लिए एक प्लेटफार्म के रूप में इस्तेमाल करती है। दोनों अपनी-अपनी ऊंची कीमत रखे होती हैं।

पुरुषोचित भूमिका में एक अपेक्षा निहित है कि वह अपने आप को किसी का वशवर्ती न बनने दे, इसमें एक तिरस्कार का भाव भी निहित है, जो उन पुरुषों के प्रति होता है, जो अपने आपको वशवर्ती बन जाने देते हैं। इस तरह दुर्बलता और वशवर्तिता के प्रति यह तिरस्कार भाव ही है जो दोनों लिंगों के बीच चलने वाले एक घृणित खेल का मूल स्रोत है। पुरुष जिसे प्यार करता है उसे ही तिरस्कृत कर देने के लिए अभिशप्त है, और अभिशप्त है उसी को प्यार करने के लिए, जिसे वह तिरस्कृत करता है। स्त्रियां अपने प्यार और हित में केवल तभी जीत सकती हैं जब वे अपने आप को समर्पित कर दें, लेकिन जब वे समर्पण करती हैं तो तिरस्कार भी करती हैं। इन दशाओं में पुरुष और स्त्री के बीच का प्यार एक कड़वी खींच-तान बन जाता है।

वस्तुतः आशा और समाधान एक मानवीय अस्मिता के विकास में ही निहित है। क्यों न हम अपने अनुभव का इस्तेमाल करें और आज के लोगों के बीच के अन्तरविरोधों का विश्लेषण करें ताकि नये-नये सपनों का सृजन कर सकें और आगे चलकर नये मानव का विज्ञान रचें? लोगों के हृदयों को बदलना उस समय अधिक आसान भी होगा जब हम यह जान चुके होंगे कि हमें कहां जाना है।

अंग्रेजी अनुवादः ***एने लुइस मिडसेम***
हिन्दी अनुवादः ***विश्वनाथ मिश्र***

(पृष्ठ 62 का शेष)
के राजनीतिक कर्तव्य निभाये : इस दिशा में संक्रमण खासतौर से कठिन है, लेकिन केवल यह संक्रमण ही समाजवाद के अंतिम सुदृढ़ीकरण की गारण्टी कर सकता है।''

लेकिन महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने इसे अन्य किसी भी पूर्ववर्ती क्रान्तिकारी आन्दोलन से, गुणात्मक रूप से, कहीं अधिक उच्चतर रूप में व्यवहार में चरितार्थ किया, जिसका कारण यह था कि इसी ने अब पहचान में आये नये बुर्जुआ वर्ग को कुचल डालने का एक प्रयास किया। मार्क्सवाद-लेनिनवाद में माओ द्वारा किया गया विकास एक ऐसी कील की भांति है जो एक खड़ी पहाड़ी के पृष्ठ पर ठोक दी गयी हो -- जिसे मजबूती से पकड़कर सर्वहारा निश्चय ही और ऊंचे चढ़ जायेगा और इस तरह साम्यवाद की चढ़ाई में अगली शिखर पर जा पहुंचेगा। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आजकल बहुतेरे ऐसे हैं जो इसे खारिज करने और सर्वहारा को इस पर मजबूत पकड़ बनाने से रोकने की ठीक वैसे ही कोशिश कर रहे हैं जैसे बुर्जुआ वर्ग और पुराने संशोधनवादियों ने प्रचण्ड सर्वहारा क्रान्ति और सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में मार्क्स और फिर लेनिन द्वारा विकसित थीसिस को खारिज करने की कोशिश की थी।

आज चीन में जो संशोधनवादी शासन कर रहे है वे माओ के घनिष्ठ कामरेड चाङ-चुन-चियाओ की इसलिए निन्दा करते हैं कि उन्होंने लेनिन की थीसिस में (कि केवल वे ही सच्चे मार्क्सवादी हैं जो सर्वहारा के अधिनायकत्व को स्वीकार करते हैं) यह अतिरिक्त बात जोड़ दी कि आज केवल वे ही सच्चे मार्क्सवादी हैं जो सर्वहारा अधिनायकत्व में क्रान्ति को जारी रखने का समर्थन करते हैं।

वे इस उम्मीद में हैं कि वे लेनिनवाद की शिक्षा को लेनिन की प्रचण्ड क्रान्तिकारी लाइन और भावना के विरुद्ध इस्तेमाल करके लेनिनवाद को एक जड़सूत्रता में तब्दील कर देंगे। संशोधनवादियों के इस दुर्भाग्यपूर्ण दोषारोपण को सभी क्रान्तिकारी लाइन और भावना के विरुद्ध इस्तेमाल करके लेनिनवाद को एक जड़सूत्रता में तब्दील कर देंगे। संशोधनवादियों के इस दुभार्ग्यपूर्ण दोषारोपण को सभी क्रान्तिकारी मार्क्सवादी ''दोषी की भांति निर्दोष'' मानते हैं।

आज माओ और उनके इस अमर अवदान का समर्थन ही अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन की कुंजीभूत विभाजक रेखा है। और जैसा कि इस निबन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है, इन विभाजक रेखाओं के तर्क की धार कागज की तरह पतली नहीं, बल्कि संघर्ष के छुरों की धार की तरह तेज है, जिससे सर्वहारा को हर हालत में टक्कर लेनी ही होगी। इस युद्ध में एक तरफ है संशोधनवाद जिसका समर्थन वे घृणित गद्दार कर रहे हैं जिनकी कोशिश बुर्जुआ वर्ग की धार को भोथरा करने और बुर्जुआ के हाथों में मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से तुङ विचारधारा है। और छूरे की धार पर लड़ना हमेशा ही जीने-मरने की लड़ाई रही है।

संस्तुत साहित्य
स्टेट एण्ड रिवोल्यूशन, लेनिन अध्याय 1 और 5
माओ त्से तुङ इम्मॉर्टल कण्ट्रीब्यूशन्स, अवेकियन, अध्याय 6

सुझाव के लिए साहित्य
द प्रोलेतारियन रिव्होल्यूशन एण्ड रेनेगेड काउत्स्की, लेनिन

अध्याय 10

साम्राज्यवाद सर्वहारा समाजवादी क्रान्ति की पूर्ववेला है

साम्राज्यवाद सड़ता हुआ और मरणासन्न पूंजीवाद है

जब पूंजीवाद मुक्त प्रतियोगिता से एकाधिकारी चरण की ओर बढ़ता है, तब इसके विविध अन्तरविरोध प्रचण्ड हो उठते हैं। ये अन्तरविरोध, ज्वालामुखी की भांति, साम्राज्यवाद के अस्तित्व के लिए ही खतरा बन जाते हैं। तब साम्राज्यवाद का जीवन सीमित हो जाता है। साम्राज्यवाद अपने खूंखार मुखौटे के बावजूद एक कागजी बाघ ही है। साम्राज्यवाद समाजवादी क्रान्ति की पूर्व वेला है।

साम्राज्यवाद परजीवी या सड़ता हुआ पूंजीवाद है

उत्पादन और तकनोलाजी के विकास की ठहरावग्रस्त होती प्रवृत्ति

जब पूंजीवाद साम्राज्यवाद में पदार्पण करता है, तब इसकी सड़न और पतनशीलता शुरू हो जाती है। साम्राज्यवाद परजीवी या सड़ता हुआ पूंजीवाद है। साम्राज्यवाद की सड़नशील प्रकृति एकाधिकारी व्यवस्था से पैदा होती है। एकाधिकार ही साम्राज्यवाद की सड़नशील प्रकृति का आर्थिक आधार है।

साम्राज्यवाद की सड़नशील प्रकृति प्रथमतः एकाधिकारी व्यवस्था द्वारा उत्पादक शक्तियों के विकास में भारी व्यवधान के रूप में अभिव्यक्त होती है। यह तकनीकी प्रगति को कृत्रिम रूप से अवरुद्ध कर देती है तथा उत्पादन और तकनोलाजी के विकास में ठहरावग्रस्तता की प्रवृत्ति पैदा कर देती है।

एकाधिकार से पहले, पूंजीपति अपने स्पर्धियों की कीमत पर अत्यधिक मुनाफा कमाने के चक्कर में तकनीकी प्रगति को अनदेखा नहीं कर सकता था। परन्तु एकाधिकारी अवस्था में आकर एकाधिकारी पूंजीपति चूंकि उत्पादन के कुछ क्षेत्रों पर अपना एकछत्र नियंत्रण कायम कर लेता है, इसलिए वह एकाधिकारी कीमतें निर्धारित करके ज्यादा से ज्यादा एकाधिकारी मुनाफा कमा सकता है। अतः उन्नत तकनोलाजी अख्तियार करने की प्रेरणा किसी हद तक कमजोर पड़ जाती है। एकाधिकारी व्यवस्था के अन्तर्गत पूंजीपति को यह डर सताता रहता है कि उन्नत तकनोलाजी उसकी एकाधिकारी हैसियत को कहीं कमजोर न कर दे। इसीलिए वह प्रायः नयी तकनोलाजी के विकास में कृत्रिम बाधाएं खड़ी करता रहता है।

आखिर एकाधिकारी पूंजीपति उन्नत तकनोलाजी से इतना डरता क्यों है और क्यों इसमें बाधाएं खड़ी करता रहता है? पहली बात तो यह है कि नयी तकनोलाजी और नये उपकरणों को अपनाने से निश्चित ही उत्पादों की लागतें कम हो जाती हैं और उत्पादन बढ़ जाता है। लेकिन तब इसका परिणाम यह भी होगा कि पूंजी का नुकसान होगा या उसकी पहले वाली मशीनें और उपकरण पुराने पड़ जायेंगे और उनमें अप्रत्यक्ष मूल्यह्रास होगा। और दूसरी बात यह है कि नयी तकनोलाजी और नये उपकरण इस्तेमाल करने से उसी तरह के और सस्ते मालों के साथ प्रतियोगिता भी बढ़ जायेगी, जिससे उसकी एकाधिकारी हैसियत को खतरा हो सकता है। अतः एकाधिकारी पूंजीपति एकाधिकारी कीमतें बनाये रखने के लिए प्रायः उत्पादन घटाता रहता है और इस प्रकार ज्यादा से ज्यादा एकाधिकारी मुनाफा कमाता है। इसीलिए उत्पादन के विकास के लिए लाभदायक तमाम नयी तकनीकों और आविष्कारों को एकाधिकारी पूंजीपति खरीद लेता है और दरकिनार कर देता है। उदाहरण के लिए, कृत्रिम पेट्रोलियम की तकनोलाजी पेट्रोलियम कम्पनियों के एकाधिकार के लिए एक खतरा है और इसीलिए इसे उन्होंने पूरे बीस वर्षों से दरकिनार कर रखा है। इसी तरह परमाणु ऊर्जा का आविष्कार एक महान वैज्ञानिक उपलब्धि है, लेकिन साम्राज्यवाद इसका इस्तेमाल पूरी तरह उद्योग की एक प्रेरक शक्ति के रूप में न करके, युद्ध सम्बन्धी परमाणु अस्त्रों के निर्माण के लिए करता है।

एकाधिकार द्वारा उत्पादन और तकनोलाजी के विकास में खड़ी की जाने वाली बाधाओं के चलते पूंजीवाद द्वारा विस्तारित पुनरुत्पादन की दर में गिरावट होने लगती है। संयुक्त राज्य अमेरिका का उदाहरण लें। *1871* से *1900* तक तीस वर्षों के दौरान इसका औद्योगिक उत्पादन लगभग *3.9* गुना बढ़ा। लेकिन *1901* से *1929* तक के तीस वर्षों में यह बढ़ोत्तरी मात्र *2.7* गुनी ही रही। और *1930* से *1959* तक के तीस वर्षों के दौरान तो औद्योगिक उत्पादन में बढ़ोत्तरी की औसत (सालाना) दर सिर्फ *4.4* प्रतिशत रही। इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका में विकास की घटती हुई दर साम्राज्यवाद की सड़नशील प्रकृति को पूरी तरह उजागर कर देती है।

लेकिन साम्राज्यवादी अवस्था में उत्पादन और तकनोलाजी के विकास में ठहरावग्रस्तता और सड़नशीलता की जो प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है उसका यह मतलब नहीं है कि साम्राज्यवादी देशों में उत्पादन तकनोलाजी का विकास एकदम ठप्प हो गया है। लेनिन ने कहा है : "यदि हम यह सोच लें कि यह सड़नशील प्रवृत्ति पूंजीवाद के किसी भी तीव्र विकास को बाधित कर देती है, तो हम गलती पर हैं। नहीं, साम्राज्यवादी चरण में भी, व्यक्तिगत औद्योगिक क्षेत्र, व्यक्तिगत बुर्जुआ वर्ग या संस्तर, और व्यक्तिगत देश भिन्न-भिन्न मात्राओं में कभी यह प्रवृत्ति तो कभी वह प्रवृत्ति जाहिर करते ही रहेंगे"।[1] इसका कारण यह है कि मुक्त प्रतियोगिता एकाधिकार को जन्म तो देती है, पर एकाधिकार प्रतियोगिता को किसी भी तरह खत्म नहीं करता। यह केवल यही करता है कि प्रतियोगिता को अधिकाधिक उग्र और निर्मम बना देता है। प्रतियोगिता में विभिन्न एकाधिकार पूंजी समूह बेशक अपने प्रतियोगियों को खत्म कर डालने के लिए हिंसा, रिश्वत, धोखाधड़ी और जाल-फरेब का सहारा लेते हैं, परन्तु इसी के साथ विविध बड़े पूंजीवादी देशों के बीच सापेक्षिक आर्थिक शक्तियों में परिवर्तन भी होते रहते हैं। उत्पादक शक्तियों के कुण्ठित विकास की इस सामान्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत, कुछ पूंजीवादी देशों की हालत खराब होती है, तो कुछ की बेहतर। इस प्रकार, एकाधिकारी अवस्था में साम्राज्यवादी देशों में उत्पादन और तकनोलाजी का विकास एक सामान्य ठहरावग्रस्त वाली प्रवृत्ति का शिकार होता रहता है। लेकिन इसका कतई यह मतलब नहीं है कि किसी कालखण्ड विशेष में किसी व्यक्ति या क्षेत्र विशेष की उत्पादन तकनोलाजी के अधिकाधिक तीव्र विकास की सम्भावना नहीं रह जाती।

साम्राज्यवादी अवस्था में, अलग-अलग देशों की उत्पादन-तकनोलाजी अधिकाधिक तीव्र विकास भी कर सकती है। लेकिन अक्सर यह अस्थायी या अपवादस्वरूप ही होती है। जापान का उदाहरण लें। *1950* से *1971* तक की अवधि में, जापान का राष्ट्रीय उत्पाद प्रति वर्ष औसतन *10* प्रतिशत से भी अधिक दर से बढ़ता रहा। लेकिन यह प्रवृत्ति दीर्घकालिक नहीं हो सकती। वस्तुतः जापान के उत्पादन का तीव्रतर विकास अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा जापान की एकाधिकारी

पूंजी को दी जाने वाली भारी सहायता का नतीजा था। कोरिया और वियतनाम के विरुद्ध अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा छेड़े गये आक्रामक युद्धों ने जापान के एकाधिकारी पूंजीपतियों को छप्परफाड़ मुनाफा दिलाया। *1950-53* की अवधि में कोरिया के विरुद्ध आक्रामक युद्ध छेड़कर अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अपने सैन्य सम्बन्धी ''विशिष्ट आवश्यकताओं'' वाले आर्डरों के तहत कम से कम दो अरब डालर का भुगतान जापान को किया। इसी तरह वियतनाम के विरुद्ध छेड़े गये आक्रामक युद्ध के दौरान अपनी ''विशिष्ट आवश्यकताओं'' के तहत अमेरिकी साम्राज्यवाद ने जापान को *300-400* मिलियन डालर का भुगतान किया। और *1965* के बाद तो यह प्रतिवर्ष *500-600* मिलियन डालर के हिसाब से बढ़ता ही गया। इसके अतिरिक्त, अमेरिकी साम्राज्यवाद ने जापान की एकाधिकारी पूंजी के लिए भारी मात्रा में ऋण भी दिया, जिसका जापान के भारी उद्योग में सीधे निवेश किया गया, और ढेर सारे तकनीकी पेटेण्ट भी जापान को निर्यात किये। इसी के साथ, जापानी एकाधिकारी पूंजी ने जापान की मेहनतकश आबादी का निर्मम शोषण भी किया, और राजकीय बजट से भारी मात्रा में सब्सिडियां भी प्राप्त कीं। इन सबने भी जापान के तीव्र औद्योगिक विकास में योगदान दिया। अल्पमूल्यित जापानी येन ने जापानी मालों को विश्व बाजार में बहुत प्रतियोगितात्मक बना दिया। लेकिन उपर्युक्त बात यहां दर्शाती है कि जिन कारकों ने जापान के औद्योगिक विकास को आगे बढ़ाया वे लम्बे समय तक कारगर रहने वाले नहीं हैं। जापानी अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास केवल अल्पकालिक ही नहीं है, बल्कि असामान्य और ठोस आधार से रहित भी है। इसमें पहली बात तो यह है कि जापानी उद्योग के अंधाधुंध विकास के चलते कृषि उत्पादन तेजी से घटता गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, जापान में गेहूं का उत्पादन एकाएक घट गया, बीन्स का उत्पादन तेजी से घट गया, और चावल का उत्पादन भी *1968* से गिरता गया है। *1960* से *1970* तक, जापान के खाद्य उत्पादों में आत्मनिर्भरता की दर *90* प्रतिशत से घटकर *73* प्रतिशत रह गयी। और दूसरी बात यह है कि उसे कच्चे मालों का भारी पैमाने पर आयात करना पड़ता है तथा तैयार माल भारी रूप में निर्यात बाजार पर ही निर्भर है। तांबा, अल्युमिनियम, लौह अयस्क, पेट्रोलियम और कोयला जैसे कच्चे मालों में से दस प्रमुख कच्चे मालों का आयात अनुपात, जो *1960* में *71* प्रतिशत था, बढ़कर *1970* में *90* प्रतिशत हो गया। दूसरी तरफ, जापानी औद्योगिक उत्पादों का निर्यात अनुपात, जो *1950* में *18.3* प्रतिशत था, बढ़कर *1969* में *30.1* प्रतिशत हो गया, जिसके अन्तर्गत संश्लेषित धागे से बुने हुए मालों का निर्यात अनुपात *46.4* प्रतिशत, सिलाई मशीनों का निर्यात अनुपात *67.4* प्रतिशत और पानी के जहाजों का निर्यात अनुपात *68.9* प्रतिशत था। ये तथ्य यह जाहिर करते हैं कि जापानी आर्थिक विकास का आधार बहुत ही डावांडोल है। अतः वर्तमान दरों पर लम्बी अवधि के लिए इस विकास को बनाये रखना असम्भव है। और अन्ततः ठहरावग्रस्तता की प्रवृत्ति का हावी हो जाना अपरिहार्य है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण सामाजिक उत्पादन की शक्ति को भीतर से खोखला बना देता है

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण एक ऐसी अंधी गली में पहुंचा देता है जहां अन्ततः पहुंच जाने के लिए साम्राज्यवादी आर्थिक विकास अभिशप्त है। वस्तुतः यह पूंजीवाद के अन्तर्निहित अन्तरविरोधों के विकास की एक अपरिहार्य परिणति है, और साथ ही यह साम्राज्यवाद की अधिकाधिक सड़नशील होती जाती प्रकृति की एक ठोस अभिव्यक्ति भी है। पूंजीवादी उत्पादक शक्तियों और मेहनतकश जनसमुदायों की अपर्याप्त प्रभावी मांग के बीच के अन्तरविरोध को कम करने तथा आर्थिक संकटों से निजात पाने एवं अधिकाधिक एकाधिकारी मुनाफा कमाने की गरज से दुनिया का फिर से बंटवारा करने के लिए, साम्राज्यवाद अपने पागलपन भरे उन्माद में युद्ध की तैयारियों हेतु अधिक से अधिक शस्त्र विस्तार करता जाता है। राष्ट्रीय आय का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा सेना पर खर्च करने, हथियार बनाने, युद्ध आधारित अनुसंधान पर खर्च करने व साम्राज्यवादी आक्रामक युद्धों में लगाने के लिए इस्तेमाल किया जाने लगता है।

साम्राज्यवादी देशों में राष्ट्रीय आय का सैन्यीकरण सबसे पहले सैन्य खर्चों में बढ़ोत्तरी के रूप में दिखायी देता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी बजट में सैन्य प्रतिरक्षा खर्च का हिस्सा तेजी से बढ़ता गया। *1946* से *1970* तक, अमेरिका का कुल प्रत्यक्ष सैन्य खर्च *1,100* अरब डालर हो गया, यानी प्रति वर्ष औसतन *45* अरब डालर। *1972-73* के वित्तीय वर्ष में, कुल प्रत्यक्ष सैन्य खर्च *78.3* अरब डालर के बराबर था। इसमें सेवानिवृत्त सैनिकों को दी जाने वाली *11.7* अरब डालर की सब्सिडियां और अन्तरिक्ष कार्यक्रम के लिए *3.2* अरब डालर और जोड़कर इन तीन मदों का कुल खर्च *93.2* अरब डालर पर जा पहुंचा। यह प्रवृत्ति सैन्य उद्योगों और सैन्य विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधानों के क्षेत्रों में अधिकाधिक बढ़ते खर्च के रूप में भी अभिव्यक्त हुई। सामाजिक स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्पादन के क्षेत्र से एक भारी श्रम शक्ति सैन्य विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान के क्षेत्रों में हस्तांतरित कर दी गयी। *1967-68* में, संयुक्त राज्य अमेरिका के विभिन्न क्षेत्रों में किये जा रहे शस्त्र उत्पादन के अन्तर्गत रोजगार का स्तर और कुल श्रम शक्ति के मुकाबले उसका अनुपात क्रमशः इलेक्ट्रानिक उपकरण के क्षेत्र में *126,900* और *33.8* प्रतिशत, रेडियो उपकरण, टेलीविजन सेटों, एवं दूरसंचार उपकरणों के क्षेत्र में *250,900* और *38.6* प्रतिशत, तथा विमानों और उनके सहायक कल पुर्जों के क्षेत्र में *615,900* और *72.4* प्रतिशत था। अमेरिका की कुल वैज्ञानिक और तकनीकी श्रमशक्ति का दो-तिहाई हिस्सा शस्त्र निर्माण और अन्तरिक्ष अनुसंधान में ही लगा हुआ है। अमेरिका की *7* करोड़ *70* लाख श्रमशक्ति (सशस्त्र सेनाओं को छोड़कर) का लगभग *20* प्रतिशत प्रतिरक्षा विभाग से मिलने वाले हथियारों के आर्डरों पर ही निर्भर है।

साम्राज्यवादी देशों की राष्ट्रीय आय के सामान्य सैन्यीकरण के गम्भीर प्रतिकूल नतीजे भी सामने आ चुके हैं। अभी हाल के ही वर्षों में, अमेरिका ने शस्त्र निर्माण और आक्रमण पर करीब *100* अरब डालर खर्च किये हैं। ये उत्पाद या तो युद्ध क्षेत्र में लोगों का कत्लेआम करने और सामाजिक सम्पदा को नष्ट करने में इस्तेमाल किये जा रहे हैं, या फिर गोदामों में सड़ते हुए कबाड़ बन रहे हैं। वे कारखाने से निकलते ही ''पुराने'' भी पड़ जा रहे हैं, कारण कि नये-नये हथियार आविष्कृत कर लिये जा रहे हैं। इस तरह राष्ट्रीय आय के सैन्यीकरण ने बड़े बेढब नतीजे पैदा कर दिये हैं : जैसे, शस्त्र उद्योग का स्फीतिकारी संकुचन। विगत बीस वर्षों के दौरान, अमेरिका के वैमानिकी और अन्तरिक्ष अनुसंधान से सम्बन्धित उद्योगों में निर्देशित मिसाइलों, विमानों और अन्तरिक्ष यानों का उत्पादन, अपनी कीमतों में, छह गुना तक बढ़ गया। दूसरी तरफ, इसका नतीजा यह हुआ है कि नागरिक उद्योगों का विकास धीमा होता गया है। कुछ उद्योगों को तो अपना उत्पादन घटा भी देना पड़ा है। कपड़ा उद्योग का ही उदाहरण लें। *1970* में कपड़ा उत्पादन *1950* के मुकाबले केवल *86* प्रतिशत ही रह गया। साम्राज्यवाद द्वारा प्रोत्साहित आक्रमण और युद्धों की नीति तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सैन्यीकरण ने श्रमशक्ति, मालों और सम्पदा एवं खासतौर से सामाजिक सम्पदा का भारी पैमाने का विनाश किया है। यह साम्राज्यवाद की सड़नशील प्रकृति की एक उल्लेखनीय विशिष्टता है।

बुर्जुआ वर्ग अधिकाधिक तौर पर एक ऐसा संस्तर बनता जा रहा है जो पूरी तरह सूदखोरी पर ही जिन्दा है

साम्राज्यवाद की परजीवी और सड़नशील प्रकृति इस रूप में और भी उजागर हो चुकी है कि बुर्जुआ वर्ग अधिकाधिक तौर पर एक ऐसा संस्तर बनता जा रहा है जो पूरी तरह सूदखोरी पर ही जिन्दा है। यह तथाकथित संस्तर उन लोगों का है जो उत्पादन प्रक्रिया से पूरी तरह कट चुके हैं और ''सूदखोरी पर ही जिन्दा है''। वैसे बुर्जुआ वर्ग उत्पादन सम्बन्धी श्रमकार्य में कभी संलग्न रहा भी नहीं है, लेकिन तब भी यह मजदूरों का शोषण कर विलासिता की जिंदगी जीता आया है। और साम्राज्यवाद की अवस्था में आकर तो बुर्जुआ वर्ग की परजीवी प्रकृति और भी बढ़

जाती है। अब पूंजीवादी उद्यम पूरी तरह विशिष्ट प्रबंधकीय कर्मचारियों द्वारा संभाले जाते हैं। बुर्जुआ वर्ग, और खास तौर से, एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग, उत्पादन प्रक्रिया से पूरी तरह कट चुका है, तथा केवल स्टाक और शेयरों से होने वाली आय पर ही परजीवी की भांति जी रहा है। लेनिन ने बहुत पहले ही कहा था, व साम्राज्यवाद, महज कुछेक देशों में मुद्रा पूंजी का एक भारी संकेन्द्रण भर है'', और इस प्रकार ऐसे संस्तर में जीने वाले लोग, जो केवल सूदखोरी पर ही निर्भर हैं और कोई काम नहीं करते, तेजी से बढ़ते जाते हैं''।[2] उदाहरण के लिए, *1950* में लाभांशों और व्यक्तिगत सूद से अमेरिका में प्राप्त होने वाली कुल आय *19.5* अरब डालर थी। लेकिन *1963* में बढ़कर यह *50.3* अरब डालर हो गयी, यानी *157* प्रतिशत की बढ़ोत्तरी। इस अवधि में राष्ट्रीय आय मात्र *102* प्रतिशत ही बढ़ी। *1970* में अमेरिका को लाभांशों और व्यक्तिगत सूद से प्राप्त होने वाली आय *89.7* अरब डालर पर जा पहुंची। अमेरिका के एकाधिकारी मालिक शोषण से प्राप्त इस आय पर विलासिता की जिन्दगी जीने लगे। वित्तीय समूहों के ऐसे कुछ मालिकों ने सिर्फ इतना ही नहीं किया कि बड़े-बड़े विला गोल्फ के मैदान और शिकारगाह निर्मित करके अपनी मस्ती के लिए विशाल भूखण्डों का इस्तेमाल कर लिया, बल्कि आपस में अपनी धनसम्पदा का प्रदर्शन भी करने लगे। *1964* में, अमेरिका के एक बड़े एकाधिकारी पूंजीपति फोर्ड ने अपनी बेटी के जन्मदिन के अवसर पर दी गयी एक पार्टी पर पांच लाख डालर खर्च कर डाला। और उसके बाद ज्यादा दिन नहीं गुजरे कि एक दूसरे बड़े एकाधिकारी पूंजीपति मेलोन ने फोर्ड को प्रभावित करने वाले ''समाज'' से अपनी बेटी का परिचय कराने के लिए दी गयी एक पार्टी पर दस लाख डालर खर्च किया। इस घटना से एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग की परजीवी प्रकृति पूरी तरह बेनकाब हो गयी।

साम्राज्यवाद की एक दूसरी विशिष्टता यह है कि इसके अन्तर्गत पूंजी का निर्यात तेजी से बढ़ जाता है। पूंजी का निर्यात बढ़ने से होता यह है कि थोड़े से धनी देश सूदखोर देश बन जाते है और आर्थिक रूप से अल्पविकसित तमाम देशों पर परजीवी की तरह आश्रित होकर अपने उपनिवेशों और पिछलग्गू देशों की जनता के शोषण में महारत हासिल कर लेते हैं। आंकड़ों के अनुसार, 1950 से 1970 तक अमेरिका के प्रत्यक्ष निजी निवेश से प्राप्त होने वाली सूद की राशि 88.77 अरब डालर तक जा पहुंची जो 1970 के अन्त तक कुल प्रत्यक्ष निजी विदेशी निवेश से 14 प्रतिशत अधिक थी। 1946 में लातिन अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रत्यक्ष निवेश 3 अरब डालर था जो 1969 में बढ़कर 11.7 अरब डालर हो गया। लेकिन चौबीस वर्षों में, अकेले लातिन अमेरिकी देशों में अमेरिका द्वारा किये गये प्रत्यक्ष निवेश पर उसे 23.49 अरब डालर सूद में प्राप्त हुए। यह राशि अमेरिका द्वारा किये गये शुद्ध प्रत्यक्ष निवेश से काफी अधिक थी।

अमेरिका द्वारा विदेशों में किये गये प्रत्यक्ष निवेश से प्राप्त सूद का भारी हिस्सा प्रतिवर्ष अमेरिका को प्राप्त होता है जो वहां के मुट्ठीभर एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग के ही खर्च के काम आता है। 1960 से 1970 तक सूद के रूप में अमेरिका को प्राप्त होने वाली रकम 43.4 अरब डालर तक जा पहुंची। और इसी अवधि के दौरान सूद के रूप में प्राप्त 19 अरब डालर की अतिरिक्त धनराशि, जो अमेरिका नहीं भेजी गयी, पुनः निवेश कर दी गयी, ताकि विदेशी शोषण को और अधिक बढ़ाया जा सके। इस प्रकार, अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा प्रतिवर्ष विदेशी शोषण और सूद में की जा रही बढ़ोत्तरी से प्रतिवर्ष उसकी परजीवी प्रकृति भी बढ़ती जा रही है।

इन सब बातों से स्पष्ट पता चलता है कि पूंजी का निर्यात, बहुसंख्यक राष्ट्रों और देशों के उत्पीड़न और शोषण के लिए साम्राज्यवाद का एक ठोस आधार है। और साथ ही यही मुट्ठीभर समृद्ध देशों के परजीवी पूंजीवाद का भी ठोस आधार है।

मजदूरवर्गीय कुलीनों का प्रकट होना पूंजीवाद की परजीवी प्रकृति की एक और अभिव्यक्ति है

साम्राज्यवाद की परजीवी प्रकृति अपरिहार्य तौर पर मजदूर आन्दोलन में भी प्रतिबिम्बित होती है। मजदूरवर्गीय कुलीनों का पैदा होना और संशोधनवाद का प्रकट होना मजदूर आन्दोलन में साम्राज्यवाद की परजीवी प्रकृति के ही प्रतिबिम्बन हैं। लेनिन ने कहा था : ''सूदखोर देश परजीवी और सड़नशील पूंजीवादी देश हैं। यह स्थिति इन देशों की सभी सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों और खासतौर से मजदूर आन्दोलन की दो बुनियादी कार्यवाहियों पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती''।[3] एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग अधिकाधिक एकाधिकारी मुनाफा कमाने के लिए अपने उपनिवेशों, पिछलग्गू देशों और स्वयं अपने देशों के सर्वहारा वर्ग को सुनियोजित ढंग से लूटता और शोषित करता है। और मेहनतकश जनसमुदायों के विरोध को दबाने के लिए, वह अपने विशाल एकाधिकारी मुनाफे का एक छोटा सा टुकड़ा मजदूरों के एक ऊपरी छोटे हिस्से को घूस के रूप में देकर उन्हें एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग का एजेण्ट बना लेता है। ये ही मजदूर वर्गीय कुलीन हैं जो ऊंची तनख्वाहें लेकर और बुर्जुआ वर्ग की भांति जीते हुए एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग की सेवा करते हैं। वे मजदूरों में घुलमिलकर मजदूर वर्ग के हितों का सौदा कर डालने में महारत हासिल कर लेते हैं तथा मजदूर आन्दोलनों को लक्ष्यभ्रष्ट कर देते हैं। ये मजदूर वर्गीय कुलीन साम्राज्यवादी देशों के एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग के स्वामिभक्त पालू कुत्ते होते हैं।

एकाधिकारी पूंजी से होने वाला अधिकाधिक मुनाफा ही मजदूर आन्दोलन में संशोधनवाद का आर्थिक आधार है। साम्राज्यवादी परिस्थितियों में और मजदूर वर्गीय कुलीनों के अस्तित्व में आ जाने पर ही साम्राज्यवादी शासन की रक्षा करने के लिए एक संशोधनवादी सिद्धान्त और कार्यनीति का उदय होता है। ये मजदूर वर्गीय कुलीन बुर्जुआ तत्व ही होते हैं जो मजदूरों का छद्मावरण ओढ़े रहते हैं। अतः संशोधनवाद मार्क्सवाद का लबादा ओढ़े एक बुर्जुआ वर्गीय सिद्धान्त ही है। मजदूर वर्गीय कुलीन और संशोधनवादी मजदूर आन्दोलन के सबसे विश्वासघाती भितरघाती शत्रु है, और उन्हें जिस्म का नासूर ही समझना चाहिए। यदि इन नासूरों को पूरी तरह खत्म नहीं किया गया तो साम्राज्यवाद अपनी सड़नशील दशा को लम्बे समय तक बनाये रखा जा सकता है। लेकिन जैसा कि लेनिन ने कहा था, ''अवसरवाद का तीव्र और दुश्चक्री विकास ही इसकी विजय को सुनिश्चित नहीं कर देता।''[4] लेनिन ने और आगे कहा कि ''यदि साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष अवसरवाद के विरुद्ध संघर्ष के साथ घनिष्ठ रूप से नहीं जुड़ता, तो यह बस खोखली शब्देबाजी बनकर रह जाता है।''[5]

सम्पूर्ण राजनीतिक प्रतिक्रियावाद के रुख और सामाजिक संकटों की प्रचण्डता में तेजी से बढ़ोत्तरी

पूंजीवादी मुक्त प्रतियोगिता के दौर में तो बुर्जुआ वर्ग अपने बुर्जुआ अधिनायकत्व की असलियत पर पर्दा डालते रहने के लिए ''जनतंत्र'', ''स्वतंत्रता'' और ''सार्वभौमिक प्रेम'' का राग अलापता रहता है, परन्तु साम्राज्यवाद की अवस्था में आकर, ये झीने ''मुखौटे'' भी तेजी से उतर जाते हैं। तब स्थिति यह हो जाती है कि जो कोई भी उत्पीड़न और शोषण का विरोध करता है, उसे निर्ममतापूर्वक दबा दिया जाता है। लेनिन ने कहा था : ''इस नयी व्यवस्था यानी एकाधिकारी पूंजीवाद (अर्थात साम्राज्यवाद) की राजनीतिक अधिरचना जनतंत्र से बदलकर राजनीतिक प्रतिक्रियावाद का रूप ले लेती है। जहां मुक्त प्रतियोगिता को जनतंत्र की दरकार होती है, वहीं उसके विपरीत, एकाधिकार को राजनीतिक प्रतिक्रियावाद की दरकार होती है।''[6] संयुक्त राज्य अमेरिका में, केवल हिंसा का विरोध करने वालों का ही दमन नहीं किया गया है, बल्कि जिन लोगों ने अहिंसा की मुहिम चलायी, उनका भी कत्लेआम किया गया है। 1968 में, अमेरिका में अश्वेत नेता मार्टिन लूथर किंग की हत्या अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने इसीलिए कर दी थी कि वह नस्लवादी भेदभाव का विरोध करते थे और नागरिक अधिकारों के लिए लड़ते थे। इस तरह सम्पूर्ण प्रतिक्रियावाद की नीति पर चलते हुए, साम्राज्यवाद अपनी विचारधारा और संस्कृति में भी अधोगामी हो चुका है। साम्राज्यवादी देशों में, हिंसा और सेक्स से जुड़े प्रकाशनों और फिल्मों ने बाज़ार को पाट दिया है। कैलीफोर्निया में, तीस ऐसी

कम्पनियां हैं जो सेक्स फिल्में ही बनाती हैं। पूंजीवादी दुनिया में, विचित्र पहनावे, नृत्य और संगीत अब आम हो चुके हैं तथा बन्दरमार्का "छायावादी" चित्रकला का फैशन जोरों पर है। एक वर्ष से कम उम्र के बच्चों को लेकर "रोते हुए" और घिघियाते हुए दौड़ लगाने वाली महिलाओं की अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं की भी खबरें मिल रही हैं। साम्राज्यवाद के तले संस्कृति और कला भीतर तक सड़ चुकी है। चोरी, डकैती, गुण्डागर्दी और मादक औषधियों के दुरुपयोग की गतिविधियां बेपनाह बढ़ चुकी हैं।

ऐसे सड़े हुए समाज को देखकर, बहुतेरे नौजवान एक नैतिक शून्यता की स्थिति महसूस कर रहे हैं और मानने लगे हैं कि जीवन खोखला और निरर्थक है और कि उसका कोई भविष्य नहीं है। कुछ अमेरिकी इतिहासकार यह सोचने लगे हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका "एक ऐसी स्थिति में पहुंच गया है कि लोगों का अपने आदर्शों, अपनी व्यवस्था और अपने भविष्य पर से ही विश्वास उठने लगा है" और वे "असंख्य संकटों से घिर गये हैं।" कुछ तो और भी खुले तौर पर कह रहे हैं : "हमारे संकटों की प्रकृति नैतिक है, और इसकी जड़ें स्पष्टतः हमें अपनी स्वतः फैलती जा रही पूंजीवादी प्रणाली में ही खोजनी होगी" (न्यूजवीक, 6 जुलाई, 1970) लेकिन साम्राज्यवाद के इन्हीं गम्भीर अन्तरविरोधों के बीच, थोड़े से प्रगतिशील तत्व भी धीरे-धीरे उठ खड़े हो रहे हैं, मार्क्सवाद को स्वीकार कर रहे हैं तथा मार्क्सवादी पार्टी और संगठन को पुनः स्थापित करते हुए जनसमुदायों को संगठित कर रहे हैं, और साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरुद्ध कड़ा संघर्ष छेड़ रहे हैं।

साम्राज्यवाद की यह परजीवी सड़नशील प्रकृति, जो साम्राज्यवाद की बुनियादी अभिलाक्षणिकता, अर्थात, एकाधिकार से पैदा हुई है, यही जाहिर करती है कि साम्राज्यवाद महज एक कागजी बाघ भर है। यह देखने में खूंखार तो लगता है, पर वास्तव में इसके पास कोई खास ताकत नहीं है। असली ताकत तो जनसमुदायों के पास है, न कि साम्राज्यवाद या प्रतिक्रियावादियों के पास। जैसाकि माओ ने ठीक ही सुझाया है, "एक रणनीतिक या सुदूरवर्ती दृष्टि से, या इनकी अन्तर्वस्तु को देखते हुए, हमें निश्चय ही साम्राज्यवाद और सभी प्रतिक्रियावादियों को कागजी बाघ ही समझना चाहिए।"[7]

साम्राज्यवाद मरणासन्न पूंजीवाद है

साम्राज्यवादी देशों के भीतर सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच अन्तरविरोध का तीव्र होना

स्तालिन ने कहा था : "लेनिन ने साम्राज्यवाद को मरणासन्न पूंजीवाद कहा। क्यों? इसलिए कि साम्राज्यवाद में पूंजीवाद के जो अन्तरविरोध निहित हैं वे उसके लिए अन्तकारी ही हैं। मतलब क्रान्ति की शुरुआत होनी ही होनी है"।[8] जब पूंजीवाद एकाधिकारी अवस्था ग्रहण कर लेता है, तब भी सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच के बुनियादी अन्तरविरोध और समाज की पूंजीवादी प्रकृति में कोई बदलाव नहीं होता। बहरहाल, इस साम्राज्यवादी अवस्था में आकर, एकाधिकार ने सिर्फ इतना ही नहीं किया है कि सामाजिक उत्पादन को पहले से अधिक व्यापक पैमाने पर ला दिया है, बल्कि यह भी किया है कि उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व और भी अधिक घनीभूत कर दिया है। इसके चलते पूंजीवाद के बढ़ते हुए बुनियादी अन्तरविरोध साम्राज्यवाद के सभी बाहरी और भीतरी अन्तरविरोधों को भी तीव्र करते जा रहे हैं। माओ ने कहा है, "इन दो वर्गों (सर्वहारा और बुर्जुआ) के बीच बढ़ता अन्तरविरोध, औपनिवेशिक स्वामी और उपनिवेशों के बीच बढ़ता अन्तरविरोध तथा साम्राज्यवादी देशों के असमान विकास के चलते उनके बीच तीखा होता आपसी अन्तरविरोध, ये ही पूंजीवाद को एक विशिष्ट अवस्था, यानी साम्राज्यवाद की अवस्था में ले जाते हैं।[9] साम्राज्यवादी देशों में सभी भीतरी और बाहरी अन्तरविरोधों के गम्भीर रूप से तीव्र होते जाने के कारण ही, साम्राज्यवाद मरणासन्न पूंजीवाद बन जाता है, और सर्वहारा समाजवादी क्रान्ति की पूर्ववेला निकट आ जाती है।

अधिकाधिक एकाधिकारी मुनाफा कमाने के चक्कर में, बुर्जुआ वर्ग मजदूरों को शोषित करने और लूटने के प्रयासों को दिन दूना रात चौगुना बढ़ाता जाता है और इस तरह लाखों-लाख मेहनतकश लोगों को भुखमरी के कगार पर ढकेलता जाता है। एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग तरह-तरह की हाड़तोड़ श्रम-प्रणालियां इजाद करता रहता है, श्रम की गहनता को बढ़ाता रहता है, कार्यदशाओं को अधिकाधिक खराब करता जाता है, तथा मजदूरों के शोषण को बेहिचक और बेरोकटोक बढ़ाता जाता है। बुर्जुआ वर्ग वास्तविक उजरतों को घटाने और क्रयशक्ति को कम से कम करते जाने की गरज से सचेत तौर पर मुद्रास्फीति का भी सहारा लेता है। उदाहरण के तौर पर, 1963-1970 के दौरान, मुद्रास्फीति के चलते, ज्यादातर पूंजीवादी देशों में कीमतों और जीने के खर्चों में हर साल बढ़ोत्तरी होती रही। इस अवधि में, संयुक्त राज्य अमेरिका में जीने का खर्च 25.8 प्रतिशत बढ़ गया। ब्रिटेन में यह बढ़ोत्तरी 35.3 प्रतिशत हुई, फ्रांस में 30.9 प्रतिशत, पश्चिम जर्मनी में 20.6 प्रतिशत और जापान में 44.4 प्रतिशत। लेकिन उजरतें इतनी अधिक नहीं बढ़ीं कि मुद्रास्फीति और बढ़ते जीवन खर्च को पूरा कर सकें। मेहनतकश लोगों का जीवन तो और भी बदतर हो गया। एकाधिकारी पूंजी ने सरकार के मार्फत अधिकाधिक कर लादकर मेहनतकश जनसमुदायों की ओर भी अधिक लूट की। 1940 से 1970 तक की अवधि के दौरान, अमेरिका में कर राजस्व छह गुना बढ़ा, यानी जहां यह 1940 में 16.5 अरब डालर (राष्ट्रीय आय का 20 प्रतिशत) था, वहीं 1970 में बढ़कर 278 अरब डालर (राष्ट्रीय आय का 35 प्रतिशत) हो गया । इस तरह, इस भारी कराधान ने मेहनतकश आबादी की कमर तोड़ दी।

अपने आर्थिक हितों की रक्षा में, एकाधिकारी पूंजी राज्य मशीनरी का सहारा लेकर मजदूरों का अधिकाधिक दमन करने हेतु, अनिवार्यतः फासिस्ट तानाशाही भी लागू करती है। वस्तुतः इसका समूचा राजनीतिक प्रतिक्रियावाद एक एकाधिकारी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का ही एक स्वाभाविक राजनीतिक प्रतिबिम्बन है। फासिस्ट तानाशाही लागू करने और जनता का दमन करने की गरज से, साम्राज्यवाद प्रतिक्रियावादी सरकारी मशीनरी को भयानकता की हद तक विस्तारित कर डालता है। संयुक्त राज्य अमेरिका का ही उदाहरण लें, जहां हर बीस लोगों में से एक आदमी प्रतिक्रियावादी राज्य मशीनरी का कर्मचारी है।

एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग द्वारा किया जाने वाले निर्मम आर्थिक शोषण और खूनी प्यास से भरा राजनीतिक दमन सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच के अन्तरविरोध को और तीव्र कर देता है। लेकिन उत्पीड़न जितना ही बढ़ता है, उसका प्रतिरोध भी उतना ही बढ़ता है। इसीलिए सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदायों के लाखों लोग रोजाना उठ खड़े हो रहे हैं और इस पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध लगातार क्रान्तिकारी संघर्ष छेड़ रहे हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से ही, और खासतौर से हाल के वर्षों में, सशक्त और जनव्यापी मजदूर आन्दोलन अस्तित्व में आये हैं। साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष प्रचण्ड होता जा रहा है। अमेरिका के स्पष्टतः कम करके पेश किये गये सरकारी आंकड़ों के अनुसार भी, 1970 में, अमेरिकी मजदूरों ने 5,600 बार हड़तालें कीं, जिनमें 33 लाख मजदूरों ने भाग लिया। 1971 में, 500,000 टेलीफोन मजदूरों की राष्ट्रव्यापी हड़ताल हुई और इसी वर्ष 160,060 रेलवे मजदूरों ने भी राष्ट्रव्यापी हड़ताल की। इन हड़तालों में मजदूरों के संघर्ष का नारा था : "(आक्रामक) युद्ध बन्द करो, गरीबी खत्म करो, उत्पीड़न बन्द करो", और उन्होंने आर्थिक संघर्ष को राजनीतिक संघर्ष के साथ ज्यादा से ज्यादा संयुक्त किया। ब्रिटेन के सरकारी आंकड़ों के अनुसार (और वे भी कम करके ही पेश किये गये हैं), 1970 में, 3,888 हड़तालें हुईं जिनमें 16.5 लाख मजदूरों ने हिस्सा लिया। 1971 में इन हड़तालों से जुड़े मजदूरों को अपने 135 लाख कार्यदिवस गंवा देने पड़े। जापानी मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष भी तीव्र हो चले हैं। जापान के सरकारी आंकड़ों के अनुसार, तथा कथित "श्रम-पूंजी विवादों" (दरहकीकत मजदूर बनाम पूंजीपति वर्ग के संघर्षों) की संख्या, जो 1955 में 1,345 थी, बढ़कर 1969 में 5,283 हो गयी। यह बढ़ोत्तरी 2.9 गुनी थी। इसी अवधि में, इसमें भाग लेने वालों की

संख्या लगभग तीन गुनी बढ़ गयी, अर्थात 37.48 लाख से बढ़कर 144.83 लाख हो गयी।

मजदूर आन्दोलनों का यह उफान वस्तुतः साम्राज्यवाद के ही एक जीवन्त अंग का विद्रोह है। इससे पूंजीवादी आर्थिक और राजनीतिक संकट और तीव्र होता जा रहा है जो एकाधिकारी पूंजी के शासन को निरन्तर अधिकाधिक गम्भीर झटके दे रहा है। अब साम्राज्यवाद का भविष्य अधिकाधिक अनिश्चित होता जा रहा है।

साम्राज्यवाद और उत्पीड़ित राष्ट्रों के बीच अन्तरविरोध बढ़ता जा रहा है

"बारूद और तलवार के जोर पर उपनिवेशों पर कब्जे किये गये"[10] उपनिवेशों और अर्द्धउपनिवेशों पर जबरिया कब्जा कर लेने के बाद, साम्राज्यवाद निर्ममतापूर्वक इन क्षेत्रों का शोषण और अधीनीकरण करता है। अपना राजनीतिक प्रभुत्व कायम करने की गरज से, यह अपनी कठपुतली राज्यसत्ताओं का समर्थन करता है, सशस्त्र सेनाएं तैनात करता है, और सैनिक अड्डे स्थापित करता है। अपने आर्थिक शोषण को सुगम बनाने के लिए, यह व्यापारिक बन्दरगाहों को जबरिया खुलवा देता है, कस्टम और विदेशी व्यापार पर नियंत्रण कायम कर लेता है, मुद्रा और वित्त पर एकाधिकार जमा लेता है, तथा जोर-जबर्दस्ती करके दूसरे देश के भीतर खान-खुदाई करने, फैक्टरी चलाने और जलमार्गों में नौचालन करने का अधिकार हासिल कर लेता है। ज्यादा से ज्यादा एकाधिकारी मुनाफा हासिल करने के लिए, साम्राज्यवादी देश उपनिवेशों और अर्द्ध उपनिवेशों की जनता का निर्मम शोषण और उत्पीड़न करते हैं। और इस प्रकार, साम्राज्यवाद और उत्पीड़ित राष्ट्रों के बीच संघर्ष अभूतपूर्व रूप से तीव्र हो उठते हैं। साम्राज्यवाद उपनिवेशों और अर्द्धउपनिवेशों की आर्थिक नब्ज को अपने अधीन किये रहता है, तथा स्थानीय सामन्ती शक्तियों और दलाल पूंजी के साथ सांठगांठ करके उनकी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के विकास को अवरुद्ध कर डालता है। साम्राज्यवाद उपनिवेशों और उर्द्धउपनिवेशों की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को "सरलीकृत" होने, अर्थात विदेशी एकाधिकारी संगठनों के लिए आवश्यक महज कुछ मालों को ही पैदा करने के लिए मजबूर करने हेतु तरह-तरह के हथकण्डे अपनाता है, और इस प्रकार, उनके आर्थिक विकास को एकांगी और असामान्य बना देता है। नतीजतन, इन क्षेत्रों की अर्थव्यवस्थाएं स्वतंत्र या आत्मनिर्भर होने से दूर, केवल साम्राज्यवाद पर ही निर्भर हो जाती हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध से लेकर अबतक एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के लगातर नये-नये जनउभार उठते रहे हैं। बहुतेरे देशों और क्षेत्रों ने अपने आपको साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की बेड़ियों से मुक्त किया है और अपने स्वतंत्र रास्ते पर चल पड़े हैं। फिर भी साम्राज्यवाद एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के व्यापक क्षेत्रों से कभी अपने-आप पीछे नहीं हटने वाला। कारण कि वह अपने आप औपनिवेशिक हथकण्डों के अतिरिक्त लगातार अधिकाधिक नव उपनिवेशवादी हथकण्डे अपनाता जा रहा है और आर्थिक "सहायता" के छद्मावरण में इन नवोदित स्वतंत्र देशों पर अपना दुश्चक्री शिकंजा और कसते जाने की असफल कोशिशें भी करता जा रहा है। "सहायता" के जरिये ये पूंजीवादी अपने फालतू मालों से इन देशों को पाट देने की युक्ति करते रहते हैं और इस प्रकार, "सहायता" को अपने माल बेचने के एक हथकण्डे के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसी "सहायता" के जरिये वे सहायता प्राप्त देशों की आर्थिक नीतियों पर नियंत्रण कायम कर लेते हैं तथा इन देशों की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के विकास पर भी नियंत्रण कायम कर लेते है। और जब कुछ देश इस साम्राज्यवादी सौदेबाजी से मुकरने की कोशिश करते हैं, तब ये साम्राज्यवादी उन पर आक्रमण और तख्तापलट की कार्रवाइयां करते हैं, और इन्हीं के तहत उन्होंने प्रतिक्रियावादी शक्तियों को उकसा कर उन प्रगतिशील सरकारों को उखाड़ फेंकने का काम किया भी है जिन्होंने साम्राज्यवाद का विरोध करने और अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता पर जोर देने की जुर्रत की।

इस प्रकार, साम्राज्यवाद द्वारा की जाने वाली निर्मम लूट और पैदा की जाने वाली रक्तरंजित दासता ने साम्राज्यवादियों और उत्पीड़ित राष्ट्रों एवं उनके जनगण के बीच अन्तरविरोधों की खाई को और अधिक चौड़ा और प्रचण्ड बना दिया है। साम्राज्यवादी डाकुओं ने जिस दिन एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका की धरती पर अपने पांव रखे, उसी दिन से उत्पीड़ित राष्ट्र और उनके जनगण अपनी बेशकीमती स्वतंत्रता और स्वाधीनता की रक्षा में पत्थरों, तीर-कमानों, भालों-बर्छी और गोला-बारूद से साम्राज्यवाद पर प्रहार करते आये हैं। साम्राज्यवाद द्वारा शोषण और उत्पीड़न का शिकंजा जितना ही बढ़ता और कसता गया है, उतना ही उत्पीड़ित राष्ट्रों और उनके जनगण का प्रतिरोधी संघर्ष भी प्रचण्ड होता गया है। अक्तूबर क्रान्ति के बाद से ही राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन एक नये ऐतिहासिक युग में पदार्पण कर गये, और सर्वहारा समाजवादी विश्व क्रान्ति का अंग बन गये। आज राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और सर्वहारा क्रान्तिकारी आंदोलन साम्राज्यवादी देशों के भीतर परस्पर सम्बद्ध और एक-दूसरे के सहयोगी बन चुके हैं। उपनिवेश और अर्द्धउपनिवेश, जो कभी साम्राज्यवाद की सुरक्षित फौज हुआ करते थे, अब सर्वहारा विश्व क्रान्ति की सुरक्षित फौज बन चुके हैं। जैसाकि चेयरमैन माओ ने ठीक ही कहा है, "आज जो क्रान्तिकारी तूफान एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका में चल रहे हैं वे निश्चय ही समूची पुरानी दुनिया को एक निर्णायक और ध्वस्तकारी झटका देकर रहेंगे।"[11]

साम्राज्यवादी देशों के बीच अन्तरविरोधों का प्रचण्ड होना

दुनिया को आर्थिक रूप से तथा क्षेत्रीय रूप से विभाजित कर देने के साम्राज्यवादी संघर्ष ने स्वयं साम्राज्यवादी देशों के बीच ही अन्तरविरोधों को प्रचण्ड बना दिया है। वर्चस्व और क्षेत्राधिकार प्राप्त करने के उनके संघर्ष और उनके आपसी टकराव और नरसंहार वस्तुतः उत्पीड़ित और शोषित राष्ट्रों को उठ खड़े होने और विद्रोह करने में ही मददगार साबित होंगे।

इसके अतिरिक्त इस साम्राज्यवादी अवस्था में स्वयं पूंजीवादी देशों के भीतर आर्थिक और राजनीतिक विकास की बढ़ती असमानताएं स्वयं साम्राज्यवादी देशों के आपसी अन्तरविरोधों को और भी तीव्र बनाती जा रही हैं।

लेनिन ने कहा है, "असमान आर्थिक और राजनीतिक विकास पूंजीवाद का निरपवाद नियम है"।[12] पूंजीवादी दुनिया में, कुछ देश तेजी से विकास करते हैं, तो कुछ धीमी गति से। यहां तक कि कुछ कालखण्डों में कुछ देश छलांग लगाकर आगे बढ़ जाते हैं। पूंजीवादी देशों का असमान आर्थिक विकास अपरिहार्यतः असमान राजनीतिक विकास को जन्म देता है। दूसरे शब्दों में, असमान आर्थिक विकास साम्राज्यवादी देशों की परस्पर सापेक्षिक ताकतों में निश्चय ही बदलाव कर डालता है।

असमान आर्थिक और राजनीतिक विकास के इस नियम ने पूंजीवाद के समूचे इतिहास में अपनी भूमिका अदा की है। लेकिन साम्राज्यवाद के काल में आकर, पूंजीवाद का यह असमान विकास और भी प्रचण्ड हो उठता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, इंग्लैण्ड जो एक पुराना पूंजीवादी देश था, ढेर सारे उपनिवेशों पर काबिज हो चुका था तथा सारी दुनिया पर अपना एकछत्र राज्य कायम कर चुका था। परन्तु दुनिया भर के अपने उपनिवेशों से अधिकाधिक मुनाफा बटोर लेने की अपेक्षतया इसी सुगम स्थिति ने उसे सुस्त बना कर तकनोलाजी और उत्पादन के क्षेत्र में ठहरावग्रस्त भी कर दिया, जबकि इसी बीच, नयी तकनोलाजी से लैस होकर, बाद में पूंजीवादी बने देश खासतौर से संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी ने अपने विकास को तीव्रतर कर लिया। *1880* के दशक में तो अमेरिका इंग्लैण्ड की बराबरी में आ गया तथा बीसवीं शताब्दी का आरम्भ आते-आते औद्योगिक उत्पादन में दुनिया का अग्रणी देश बना गया। इसी तरह, जर्मनी भी इंग्लैण्ड से आगे निकल गया और औद्योगिक उत्पादन में दुनिया का दूसरे नम्बर का अग्रणी देश बना गया। आर्थिक ताकत की सापेक्षिक स्थितियों के इस बदलाव ने राजनीतिक ताकत की स्थिति में भी बदलाव ला दिया। शक्ति संतुलन के इस बदलाव के

फलस्वरूप, ये देश अपने प्रभाव क्षेत्रों और उपनिवेशों को पुनर्विभाजित करने के लिए आपस में संघर्ष करने लगे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से ही, साम्राज्यवादी देशों के बीच असमान आर्थिक और राजनीतिक विकास का यह नियम अपनी भूमिका अदा करता आ रहा है। इसकी अभिलाक्षणिक विशेषताएं ये रही हैं : संयुक्त राज्य अमेरिका की अवनति, इंग्लैण्ड की अवनति का लगातार जारी रहना, पश्चिम जर्मनी और जापान का तेजी से अग्रणी बनना, तथा इटली और फ्रांस की भी भारी उन्नति 1949 से लेकर 1969 तक बीस वर्षों के दौरान, इन देशों के राष्ट्रीय उत्पाद की औसत वार्षिक वृद्धि दरें इस प्रकार रही है : संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रथम 10 वर्षों में 3.9 % और शेष 10 वर्षों में 4.3 %, इंग्लैण्ड में प्रथम 10 वर्षों में 2.5 % और शेष 10 वर्षों में 3 %, पश्चिम जर्मनी में प्रथम 10 वर्षों में 7,4 % और शेष 10 वर्षों में 5.2 %, फ्रांस में प्रथम 10 वर्षों में 4.5 % और शेष 10 वर्षों में 5.9 %, इटली में प्रथम 10 वर्षों में 6.1 % और शेष 10 वर्षों में 5.6 % और जापान में पूरी अवधि में 10 % से अधिक। ये नयी और असमान दशाएं अपनी सापेक्षिक ताकत के रूप में औद्योगिक उत्पादन, पूंजी और माल निर्यात तथा अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय स्थितियों में प्रकट हुई। साम्राज्यवादी देशों के बीच आर्थिक और राजनीतिक विकास की इस बढ़ती असमानता ने, अपरिहार्य तौर पर, उनके बीच बाजारों और आपूर्ति आधारों के लिए तथा कच्चे मालों एवं पूंजी निर्यात के रास्तों के लिए संघर्षों को भी तीव्र कर दिया।

असमान आर्थिक और राजनीतिक विकास के इस नियम ने अपरिहार्यतः साम्राज्यवादी देशों के बीच युद्धों और नरसंहारों को भी जन्म दिया, और इस प्रकार उनकी कमजोर कड़ियां भी उजागर हो गयीं। तब ये ही वे अनुकूल दशाएं बनीं जिनका लाभ उठाकर सर्वहारा और क्रान्तिकारी जनगण साम्राज्यवाद को दफन कर सकता था। इसीलिए लेनिन इस महत्वपूर्ण नतीजे पर आ पहुंचे थे कि उनके इस असमान आर्थिक और राजनीतिक विकास के कारण ही साम्राज्यवादी युद्ध मोर्चे को उसकी सबसे कमजोर कड़ी के बिन्दु पर कुचला जा सकता है। और कि समाजवादी क्रान्ति किसी एक या कई देशों में विजयी हो सकती है। लेनिन ने हमारी विजय के लिए केवल एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त ही नहीं दिया, बल्कि उन्होंने एक ज्वलन्त उदाहरण भी प्रस्तुत कर दिया कि क्रान्ति को कैसे आगे बढ़ाया जाये। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान, रूस उस समय के साम्राज्यवाद के सभी अन्तरविरोधों का केन्द्रबिन्दु था और साथ ही साम्राज्यवादी श्रृंखला की सबसे कमजोर कड़ी भी था। लेनिन ने इस कड़ी को पकड़ा और महान समाजवादी अक्टूबर क्रान्ति का अभियान छेड़ने, क्रान्तिकारी हिंसा के द्वारा रूसी बुर्जुआ अधिनायकत्व को उखाड़ फेंकने, और खासतौर से, सर्वहारा अधिनायकत्व के अर्न्तगत दुनिया का पहला समाजवादी राज्य कायम करने तथा इस प्रकार मानव इतिहास के एक नये युग में पदार्पण करने के लिए, रूसी सर्वहारा का नेतृत्व किया। और दूसरे विश्वयुद्ध के बाद, चीन और एशिया एवं यूरोप के अन्य देशों के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों की महान विजयों ने तो लेनिन के इस वैज्ञानिक सिद्धान्त की सच्चाई को और भी पुष्ट कर दिया।

दो विश्वयुद्धों के विस्फोटों, सर्वहारा समाजवादी क्रान्तियों के विजय अभियानों और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के जनउभारों ने साम्राज्यवाद के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संकटों को और भी बढ़ा दिया।

लेकिन भले ही दुनिया में भारी बदलाव हो चुके हैं, फिर भी साम्राज्यवाद का युग अभी समाप्त नहीं हुआ है। इसीलिए माओ बार-बार हमें बताते हैं : कि हम अभी भी साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्ति के ही युग में हैं, कि साम्राज्यवाद के बारे में मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धान्तों पर आधारित लेनिन का वैज्ञानिक विश्लेषण पूरी तरह सही है, कि लेनिनवाद का बुनियादी सिद्धान्त पुराना नहीं पड़ गया है, और कि यह हमारी विचारधारा का अभी भी बुनियादी आधार बना हुआ है।

साम्राज्यवाद का जीवन अब लम्बा नहीं है। यह परजीवी और मरणासन्न पूंजीवाद है, जो कि सर्वहारा समाजवादी क्रान्ति की पूर्वबेला है। लेकिन यह स्वयं अपनी मर्जी से इतिहास के रंगमंच से नीचे नहीं उतरेगा। साम्राज्यवाद की प्रकृति ही यह बताती है कि जैसे-जैसे इसके जीवन का अन्त निकट आता जायेगा, वैसे-वैसे यह अधिक निराशोन्मत्त होकर अपने जीवन के लिए संघर्ष करेगा। अतः हमें यह अवश्य समझना होगा कि साम्राज्यवाद बुनियादी तौर पर कमजोर हो चुका है, एक कागजी बाघ बनकर रह गया है। हमें निश्चय ही अपनी चेतना को निर्भीक बनाना होगा, ताकि संघर्ष का साहस कर सकें और संघर्ष में खरे उतर सकें। और हमें साम्राज्यवाद के खात्मे के लिए संघर्ष छेड़ने हेतु निश्चय ही सारी दुनिया के क्रान्तिकारी जनगण को एकबद्ध करना होगा। "मुसीबत खड़ी करो, चूक जाओ तो फिर मुसीबत खड़ी करो, और बार-बार मुसीबत खड़ी करते रहो, तबतक ऐसा करते रहो जबतक कि बेड़ा गर्क न हो जाये -- यही वह तर्क है जिसे साम्राज्यवाद और दुनिया के सारे प्रतिक्रियावादी समूह जनउभारों से निपटने में अपनाते हैं। वे अपने इस तर्क से कभी विचलित नहीं होंगे।"[13] वस्तुतः मुसीबत खड़ी करना साम्राज्यवाद के निराशोन्मुख संघर्ष की ही एक अभिव्यक्ति है; और अन्ततः बेड़ा गर्क करते हुए समाप्त हो जाना ही साम्राज्यवादी विकास की अपरिहार्य नियति है। इतिहास के इस नियम को कोई भी बदल सकता।

प्रमुख अध्ययन सामग्री

लेनिन, *साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था* अध्याय, *7-10*

लेनिन, *साम्राज्यवाद, और समाजवादी आंदोलन में पड़ी फूट*

माओ, *"अमेरिकी पत्रकार अन्ना लुई स्ट्रांग से बातचीत"*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. हम क्यों कहते हैं कि साम्राज्यवाद और सारे प्रतिक्रियावादी कागजी बाघ हैं?

2. हम क्यों कहते हैं कि साम्राज्यवाद सर्वहारा समाजवादी क्रान्ति की पूर्वबेला है?

टिप्पणियां

1. साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था

2. वही 3. वही 4. वही 5. वही

6. "आन द रिडिक्यूल आफ मार्क्सिज्म एण्ड 'इम्पीरियलिज्म इकॉनमिज्म'", लेनिन : कम्प्लीट वर्क्स, खण्ड 23, पृ. 34

7. "अमेरिकी पत्रकार अन्ना लुई स्ट्रांग से बातचीत", माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड 4

8. "आन द बेसिस ऑफ लेनिनिज्म", स्तालिन, कम्प्लीट वर्क्स, खण्ड 6, पृ. 65

9. "अन्तरविरोध के बारे में", माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड 1,

10. "समाजवाद और युद्ध" लेनिन, संकलित रचनाएं, खण्ड 2,

11. माओ, "ए कंग्रेच्यूलेटरी टेलिग्राम टु द फिफ्थ कांग्रेस आफ द लेबर पार्टी आफ अल्बानिया, 'पीपल्स डेली', नवम्बर 4, 1966 में उद्धृत।

12. "आन द स्लोगन आफ यूरोपियन एलायन्स," लेनिन कम्प्लीट वर्क्स, खण्ड 21, पृ. 321

13. "कास्ट अवे इल्यूजन्स एण्ड प्रिपेअर फार स्ट्रगल", माओ त्से-तुङ संकलित रचनाएं, खण्ड 4

(चीन में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान तैयार की गयी पुस्तक **'फंडामेंटल्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनमी'** (*शंघाई टेक्स्ट बुक* नाम से प्रसिद्ध) का हिन्दी रूपान्तर। *जार्ज सी. वाङ* द्वारा सम्पादित तथा M.E. Sharp Inc. North Broadway, White Plains, New York 10603 से प्रकाशित अंग्रेजी संस्करण से हिन्दी अनुवाद : **विश्वनाथ मिश्र**)

(पिछले अंक में हमने इस बार **राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** के दो अध्याय प्रकाशित करने की घोषणा की थी। लेकिन अन्य विशेष सामग्री बढ़ जाने के कारण हम एक अध्याय ही प्रकाशित कर पा रहे हैं। — सं)

रूसी क्रान्ति की ७५वीं वर्षगांठ के अवसर पर

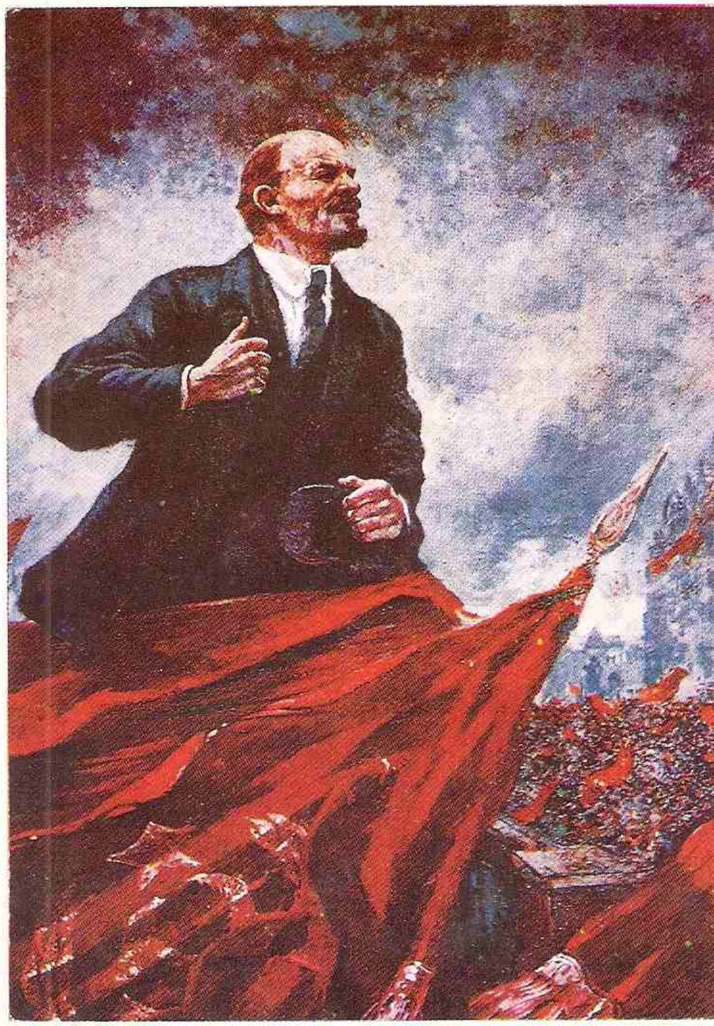

...पैरों से रौंदे गये आजादी के फूल
आज नष्ट हो गये है
अंधेरे के स्वामी
रोशनी की दुनिया का खौफ देख
खुश है
मगर उस फूल के फल ने
पनाह ली है जन्म देने वाली मिट्टी में,
मां के गर्भ में,
आंखों से ओझल गहरे रहस्य में
विचित्र उस कण ने अपने को जिला रखा है
मिट्टी उसे ताकत देगी, मिट्टी उसे गर्मी देगी
उगेगा वह एक नया जन्म लेकर
एक नई आजादी का बीज वह लायेगा
फाड़ डालेगा बर्फ की चादर वह विशाल वृक्ष
लाल पत्तों को फैलाकर वह उठेगा
दुनिया को रौशन करेगा
सारी दुनिया को, जनता को
अपनी छांह में इकट्ठा करेगा।

● लेनिन

यह कवितांश लेनिन की जिस लम्बी कविता से लिया है, वह संभवतः उनकी एकमात्र काव्य रचना है। यह कविता उन्होंने 1905–07 की रूसी क्रान्ति के कुचल दिये जाने के बाद के काले अंधकारमय दिनों में लिखी थी। यह कविता सर्वहारा की उस वैज्ञानिक दृष्टि को मूर्त करती है जो पराजय के सबसे कठिन दिनों में भी समाजवाद की अंतिम विजय के प्रति अविचल विश्वास बनाये रखती है। प्रस्तुत कवितांश आज के कठिन समय के इतना अनुकूल लगता है जैसे कि आज के लिए ही लिखा गया हो। – संपादक

अंधकार को क्यों धिक्कारें
अच्छा है एक दीप जलाएँ
एक एक भी अगर पढ़ाएँ
सारे अनपढ़ पढ़ लिख जाएँ

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन